

नोंदणी क्रं. एफ.१६०९४(मुंबई)





महाराष्ट्र शासन
मराठी भाषा विभाग
राज्य मराठी विकास संस्था
एल्फिन्स्टन तांत्रिक विद्यालय, ३, महापालिका मार्ग,
धोबीतलाव, मुंबई - ४००००१ दूरध्वनी : (०२२) २२६३१३२५ / २२६५३९६६
संकेतस्थळ https://rmvs.marathi.gov.in इ-पत्ता rmvs_mumbai@yahoo.com

निवेदन

महाराष्ट्र राज्याचे सांस्कृतिक धोरण २०१० अंतर्गत मराठी भाषेतील प्रतिमुद्राधिकाराची (कॉपीराइटची) मुदत संपलेले दुर्मिळ ग्रंथ महाजालावर उपलब्ध करून द्यावे असे म्हटले आहे. त्यानुसार मराठी भाषा विभागाच्या आदेशाप्रमाणे (शासननिर्णय क्र. रासांधो १०१२/ प्र. क./२०१२/भाषा-३ दि. २८ मार्च २०१३) राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे असे ग्रंथ आणि नियतकालिके महाजालावर उपलब्ध करून देण्याचा प्रकल्प राबवण्यात येत आहे. त्याच बरोबर प्रतिमुद्राधिकाराच्या कक्षेत येणारी काही साधनेही प्रतिमुद्राधिकारधारकांची उचित अनुमती प्राप्त झाल्यास संस्थेद्वारे संगणकीकृत करून अभ्यासकांसाठी उपलब्ध करून देण्यात येत असतात.

चित्रकार दीनानाथ दलाल ह्यांनी सन १९४७ ते १९७१ दरम्यान प्रसिद्ध केलेल्या दीपावली ह्या नियतकालिकाच्या अंकांचे संगणकीय स्वरूपात जतन करण्याबाबतचा प्रस्ताव चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे राज्य मराठी विकास संस्थेस प्राप्त झाला होता. सदर प्रस्तावानुसार दुर्मिळ मराठी ग्रंथांचे संगणकीकरण ह्या प्रकल्पांतर्गत दीपावली नियतकालिकांचे अंक संगणकीकरण करून ते सार्वजनिकरीत्या आणि विनामूल्य उपलब्ध करून देण्यासंदर्भात राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे सहमती दर्शविण्यात आली.

चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे सदर अंक संगणकीकरणासाठी उपलब्ध करून देण्यात आले. सदर संस्थेच्या सहकार्यामुळेच आपल्याला ही सामग्री संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध होत आहे.

या अंकांच्या पीडीएफ प्रती आपण विनामूल्य उतरवून घेऊ शकता. असे करताना खालील सूचना लक्षात घेऊन त्यांचे पालन करावे.

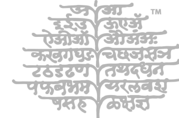
१. सदर ग्रंथांच्या पीडीएफ प्रती या वैयक्तिक वापरासाठी विनामूल्य उतरवून घेता येतील तसेच इतरांनाही विनामूल्य देता येतील. पण कोणत्याही कारणासाठी त्याचा व्यावसायिक वापर करता येणार नाही.
२. सदर ग्रंथांचे दुवे इतरांना देताना त्यासाठी कोणतीही रक्कम आकारता येणार नाही.
३. पीडीएफ प्रतींवर असलेली राज्य मराठी विकास संस्था, मुंबई व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांची मुद्रा आपणास काढता येणार नाही.
४. आपल्या अभ्यासासाठी, संशोधनासाठी या सामग्रीचा उपयोग करताना आपण योग्य तो श्रेयनिर्देश केला पाहिजे.

वरील अटींचा भंग झालेला आढळल्यास कायदेशीर कारवाई करण्यात येईल.

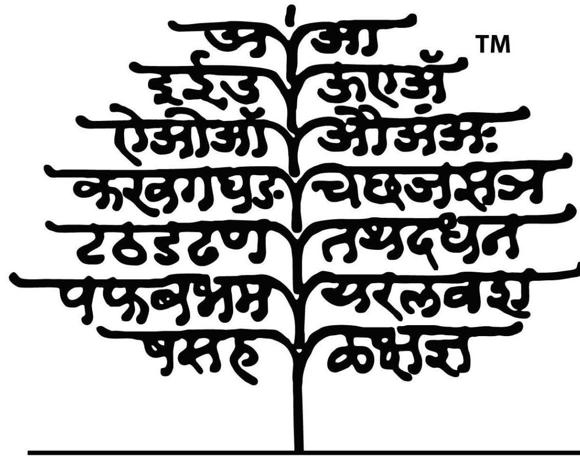
स्पष्टीकरण : सदर सामग्री ही केवळ ऐतिहासिक दस्तऐवज म्हणून उपलब्ध करण्यात आली असून या सामग्रीतून व्यक्त होणारी मते, विचारसरणी इ. त्या त्या लेखक, संपादक इ. कर्त्यांची आहे. त्यांपैकी कोणतेही मत, विचारसरणी इ. यांचा पुरस्कार महाराष्ट्र शासन, मराठी भाषा विभाग, राज्य मराठी विकास संस्था व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांपैकी कुणीही करत नसून त्या त्या मताचे वा विचारसरणीचे दायित्व उपरोक्त विभागांवर/ संस्थांवर असणार नाही.

सदर अंक केवळ अभ्यासकांच्या सोयीसाठी संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध करण्यात येत असून अंकांतील सामग्रीचे (लेखन, मांडणी, छायाचित्रे, रेखाचित्रे इ.) प्रतिमुद्राधिकार त्या त्या लेखकांकडे अथवा प्रकाशकांनी त्या त्या वेळी केलेल्या व्यवस्थेनुसार आहेत ह्याची नोंद घेण्यात यावी. त्या सामग्रीसंदर्भातील कोणतेही अधिकार वा दायित्वे राज्य मराठी विकास संस्था, मराठी भाषा विभाग किंवा महाराष्ट्र शासन ह्यांच्याकडे असणार नाहीत.

अनुक्रमणिका







मराठीचा विकास : महाराष्ट्राचा विकास

राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत

दीपावली

हिन्दी वार्षिक १९६० : रु.३

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका



अनुक्रमणिका

राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत



दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट

अनुक्रमणिका









राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक

वर्ष आठवाँ : १९६०

श्रेयनामावलि

कलाकृतियाँ :

- शृंगार : उषा-अनिरुद्ध
- वीर : सैरंध्री
- करुण : सीता-त्याग
- रौद्र : शिवशक्ति
- अद्भुत : नळ-दमयंती
- वात्सल्य : नंदकिशोर
- शांत : षड्रिपु-दमन
- भक्ति : उर्मिला
- साम : नादलुब्धा
- नाट्य : निपुणिका

उपन्यास :

- पु. भा. भावे : 'दुश्मन'

कहानियाँ :

- विष्णु प्रभाकर
- कृशन चंदर
- अमृता प्रीतम
- महीप सिंह
- वि. द. घाटे
- अनंतकुमार 'पाषाण'
- पु. ल. देशपाण्डे
- मोहन सिंह सेंगर
- आनन्द प्रकाश जैन
- अच्युत बर्वे
- कुमार योगी
- मार्कण्डेय
- सुखवीर
- तारकेश्वर मैतिन

कविताएँ :

- बच्चन
- सत्यकाम विद्यालंकार
- महेंद्र भटनागर
- नरेन्द्र शर्मा
- श्रीरंजन सूरिदेव
- नीरज
- अनिलकुमार
- व्रज किशोर 'नारायण'
- शैवाल सत्यार्थी
- उदयभान मिश्रा

ललित लेख :

- दुर्गा भागवत
- रतनलाल जोशी
- अनन्त काणेकर
- स. आ. जोगळेकर
- बाळ सामन्त

दलाल आर्ट स्टुडिओ प्रकाशन.

संपादक : दीनानाथ दलाल

कार्य. संपादक : सुधाकर लोरणे





अनुक्रमणिका



हृद्गत !

दीपावली–राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक के इस आठवें संकलन को हमारे रसिक पाठकों के सामने प्रस्तुत करते समय हमें असीम आनन्द हो रहा है।

'दीपावली नवनवोन्मेष शालिनी हो' यही हमारे प्रिय पाठकोंकी इच्छा है और उनकी इच्छा के अनुसार दीपावली का सौंदर्य बढाने का भरसक प्रयत्न इस वर्ष भी हमने किया है। इस प्रयत्नमें हमें सफलता मिली या नहीं इस बातका निर्णय पाठक ही देंगे।

इस वर्ष कहानियोंका एक सुन्दर संकलन हम प्रस्तुत कर रहे हैं। हिंदी साहित्य संसार के श्रेष्ठ कहानिकारों द्वारा यह संकलन सजाया गया है।

और एक विशेषता है हमारा उपन्यास ! मराठी कहानी संसार के सम्राट और हमारे मित्र श्री. पु. भा. भावे लिखित 'दुश्मन' नामक एक अपूर्व उपन्यास हम इस अंकमें प्रस्तुत कर रहे हैं। एक अबोध बालकका मनो-विश्लेषणात्मक तथा अनूठा चरित्र इस उपन्यास में अंकित हुआ है।

प्रतिवर्ष के अनुसार ही भारत विख्यात ऑफसेट मुद्रक श्री शिवराज फाईन आर्ट अ‍ॅण्ड लिथो वर्क्स, नागपूर के संचालक और हमारे मित्र श्रीमन्त बाबूराव धनवटे तथा धनवटे बंधू और जगदीश्वर प्रिंटिंग प्रेस के संचालक तथा हमारे स्नेही भाई भालचंद्र पाठक आदि ने इस वर्ष की चित्रमाला सुन्दर पद्धति से छपवायी है। वैसे ही मुद्रण की जिम्मेदारी इस वर्ष भी जय गुजराथ प्रिंटिंग प्रेस के श्री. खळे तथा अन्य सेवक साथियों पर थी। इन्होंने अपना काम बेहद लगन से किया है इसका यह अंक साक्ष देगा। हम उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

मेसर्स टॉम अ‍ॅण्ड बे के श्री. गणेशराव ताम्बेजी तथा भाई दाभोळकर का बहुमूल्य सहयोग प्रति वर्ष हमें मिलता है, और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हमारे पास काफ़ी शब्द भी नहीं हैं।

दीपावली की सहायता करते हुए विभिन्न भाषा–भाषी लेखकों ने हमारी सहायता की है, उनके हम कृतज्ञ हैं। विशेषरूपसे हम श्री. रतनलाल जोशीजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं।

बॉम्बे प्रोसेस के संचालक साथी कामत तथा प्रभात प्रोसेस के संचालक साथी कडव आदिने ही अंक की शोभा दुगुनी की है।

सम्पादक कार्य में साथी वीरेन्द्र मोहन, साथी मनोहर चंदावरकर तथा कु. सुरेखा तोर्णे इनकी सहायता बहुमोल है। हम इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें तो शायद उन्हें नहीं जँचेगा। यह दीपावली तथा नूतन वर्ष हमारे रसिकों, पाठकों, लेखकों, विज्ञापन-दाताओं, विक्रेताओं तथा हितैषियों को सुखप्रद हो।

— सम्पादक

प्रकाशन स्थळ :
दलाल आर्ट स्टुडिओ
४०।४२ केनेडी ब्रिज
बम्बई ४.

मुद्रण स्थळ :
जय गुजरात प्रिंटिंग प्रेस,
गांवदेवी, बम्बई ७.

ऑफसेट प्रिंटिंग :
शिवराज फाईन आर्ट लिथो वर्क्स,
नागपूर
तथा
जगदीश्वर प्रिंटिंग प्रेस
बम्बई ४

रंगीन ब्लॉक :
बॉम्बे प्रोसेस स्टुडिओ
सादे ब्लॉक :
प्रभात प्रोसेस स्टुडिओ

Printed by V. B. Khale at Jai Gujerat Printing Press, Gamdevi, Bombay - 7, and Published by D. D. Dalal from Dalal Art Studio. 42, Kennedy Bridge, Bombay - 4.

अनुक्रमणिका

इन्सान और कुत्ते

—बच्चन

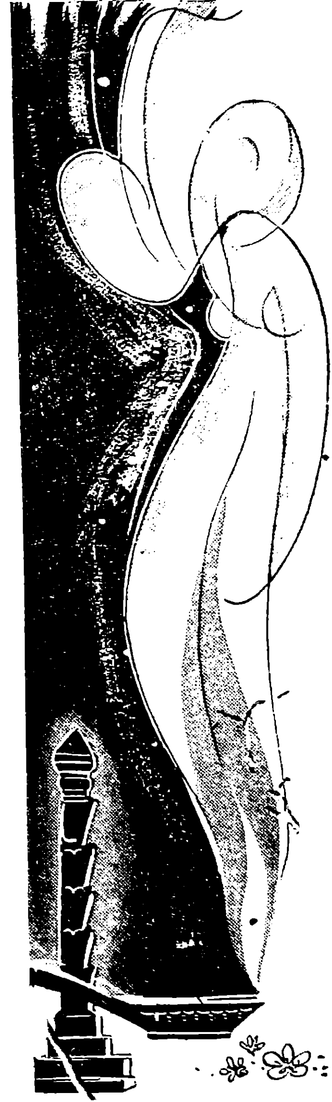
शहर की मैली-किचैली
और बदबूदार गलियों-बस्तियों से
दूर, सबसे अलग,
चौड़ी, खुली सड़कें
सिविल लाइन कही जातीं;
और इनपर बने बंगले,
अलग बिल्कुल दूसरे से,
व्यक्तिगत स्वातंत्र्य-सत्ता के,
इकाई के किले हैं;
और जो इनके निवासी,
आत्म-सीमित-संभरित, संकीर्ण,
अपने आपमें ही बंद,
बुसंती, विकृत
पश्चिम की मशीनी
सभ्यता के पूतले हैं।
सात बजकर दस मिनट पर चाय पीते,
वक्त छोटी हाज़िरी का आठ पचपन,
नौ छियालिस छोड़ते घर,
ठीक दस दफ्तर पहुंचते,
पांच पैंतिस लौटते हैं; --
घड़ी जो चाहे मिला ले --
चाय पीकर क्लब पहुंचते,
पेग चढ़ाते, खेलते ब्रिज,
लौटकर घर डिनर खाते
और सिरहाने अलार्म घड़ी लगाकर
लेट जाते, ठीक ग्यारह बजे,
मिनट न कम, न ज्यादा।
ये किसी से दोस्ती या दुश्मनी
रखते नहीं,
संपृक्त अपने से, विरक्त समस्त जग से;
यदि पड़ोसी के यहां हो मौत-चोरी,
तो इन्हें लगता पता अखबार पढ़कर;
हर्ष और विषाद और संवेदना के
भिक्षुकों को
ये फटकने ही नहीं देते हृदय की देहरी पर;
बिना परिचय के किसी से बोलना-मिलना
महान असभ्यता है;
शान के और मान के विपरीत भी है।

* * *

छः महीने से बराबर देखता हूँ
इस तरह के दो नमूने
घूमने जाते सुबह को,
साथ जाते दुम हिलाते हुए कुत्ते,
कीमती, नस्ली, बताते
हैसियत भी मालिकों की।
वाक़या यह है कि इनके लिए कुत्ते
दुर्निवार विभाव-स्रावों की निकासी
की सुपासी नालियां हैं;
सेफ़्टी का वाल्व जिनको बोलते हैं।
इन्हें दुलराने-मल्हाने से
किसी को प्यार करने की ज़रूरत
रफ़ा होती रहे,
बचते ये रहें अभिव्यक्तियों से
जिन्हें कहते व्यक्ति की कमज़ोरियां ये।

* * *

एक आता है उधर से,
एक जाता है इधर से,
पास होकर निकल जाते
किंतु ऐसी ध्यान-मुद्रा हैं बनाते
कौन निकला पास से इनको पता क्या --
कांट, आइंस्टीन की भी
देखती-अनदेखती आँखें
अगर इनके दृगों को
देख लेतीं,
चपल अपने को बतातीं।
ठोंक जूतों की ध्वनित-प्रध्वनित होती-



अनुक्रमणिका

'तुम अगर शाहब,
नईं अम बी अशाहब।'
किंतु कुत्ते
दूर से ही देख कुत्ते को
उमंग-भरे उछलते-कूदते
आ पास जाते,
सूंघते हर अंग,
मुंह से मुंह मिलाते,
गंध-गति की
रहस भाषा में
प्रणाम-जुहार करते,
हाल कहते-पूछते,
घर में कुशल सब ?
बाल-बच्चे तो मज़े में ?
शाम खाना क्या मिला था ?
रात खटका तो नहीं ज्यादा हुआ था ?
और झगड़ा तो नहीं कोई ठना था
बीच मालिक-मालकिन के ?
नौकरों के बीच खटपट तो नहीं थी ?
फिर झपटते हुए चक्कर काट
सहसा बैठ-उठकर,
कभी ऊपर, कभी नीचे से
छलांग, फलांग,
तन को झाड़-झहरा,
व्यक्त करते हैं कि सब
आनंदमय प्रभु की दया है।
तब अचानक
दो दिशाओं से
कड़े, अधिकार सूचक, भर्त्सना के
शब्द आते,
'कम हियर यू डैम व्हिस्की।'
'कम हियर यू डेविल फ्रिस्की।'
(श्वान भी तो मानता है
रोब अंग्रेजी ज़बां का।)
और व्हिस्की और फ्रिस्की
सोचते, आश्चर्य करते,
'क्या किया हमने कि मालिक
यों बिगड़ते।'—
दुम दबाए मालि॰॰ के साथ जाते —
फेरकर मुंह क॰॰ पीछे देखते भी
बेबसी से।
औ, नहीं इन बेहयाओं को अखरती,
श्वान की यह श्वानियत
इंसान की इंसानियत पर व्यंग्य करती।

•••

जब तक पुरुष है तब तक वेश्यावृत्ति है। दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति शरीर और आत्मा का मोल चाहता है। यही वेश्यावृत्ति है। मेरे पास रूप है, यौवन है। मैं किसी अेक की होना चाहती हूँ। पर दुनिया कहती है- 'छीः तुम अनाथ हो, तुम्हें घर में लाना पाप है।' लेकिन..................

[illegible]

वि ष्णु प्र भा क र

जो नहीं दिखाई देता उसी की बात कहता हूँ।

यदि एक युवती तुम्हारे सामने हो जो सुन्दरी हो और [illegible] हो तो पता लगाइए :

(१) यौवन और सौन्दर्य में क्या भिन्नता है ?

(२) सौन्दर्य और वेश्या में क्या समानता है ?

(३) विवाह का माँ से क्या सम्बन्ध है ?

(१)

माँ को गए महीनों बीत गए। नयनतारा अपने रूप को लेकर निपट अकेली है। शरण भौंरा नहीं है। फिर भी आना-जाना रहता है। इसीलिए नयनतारा एक दिन पूछ बैठी – " मैं जीना चाहती हूँ। "

" यह क्या पूछने की बात है। "–शरण ने कहा।

" तभी तो पूछती हूँ। मेरे पास जीने के साधन कहाँ हैं ? "

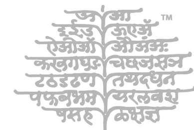
" तुम्हारे पास जीने के साधन नहीं हैं ? तुम स्त्री हो, युवती हो और उस पर सुन्दर हो। तुम्हें ... "

" रहने दो। रहने दो। मुझसे कौन विवाह करेगा ? "

" विवाह ! " शरण अट्टहास कर उठता है – " तुम समझी क्या खाक ! हमारे देश में विवाह का लड़की से क्या सम्बन्ध ?"



अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





" और किससे सम्बन्ध है। "

" माँ-बाप, कुल-मर्यादा और धन-सम्पदा से। "

" और रूप से नहीं ? "

" ना, ना। "

" तो मैं किस योग्य हूँ। "

" तुम एक फूल हो और फूल का उपयोग जानना चाहती हो तो भौंरों से पूछो। "

नयनतारा काँप उठती है, पर दूसरे ही क्षण शरण से उसकी दृष्टि मिल जाती है। और एक दूसरे को चकित करते हुए दोनों हँस पड़ते हैं।

(२)

सवेरे शरण से भेंट हुई और सन्ध्या को त्रिलोकीनाथ नयनतारा के मकान के सामने आ खड़े हुए। दस्तक देने पर पाया कि किवाड़ खुले हुए हैं। निस्संकोच अन्दर चले गए। देखा, सामने के दालान में मिट्टी के तेल की डिबिया धुआँ उगल रही है। उसके काले प्रकाश में एक खाट है और खाट पर हाथों में मुँह छिपाए, पैरों को पेट में समेटे एक लड़की लेटी है। एक क्षण ठिठके। फिर अचानक यंत्रवत् पुकार उठे-" नयनतारा ! "

सहसा नयनतारा चौंक कर उठ बैठी-" कौन ? "

-" मैं हूँ। "

नयनतारा ने नेत्र विस्तारित कर कुतूहल और अचरज से देखा, फिर मुस्करा कर कहा- " तो आप आ गये। मैं अभी-अभी सोच रही थी। न जाने कहाँ अटक गए थे ? "

धोती को ठीक करती-करती वह उठ खड़ी हुई। रात की काली रोशनी में उसे कोई मैली नहीं कह सकता। निर्भीकता के कारण उसका आकर्षण और भी मोहक हो आया। त्रिलोकीनाथ घबरा कर बोले-" तुमने मुझे कब बुलाया था ? मैं तो अपने आप ही आया हूँ। "

लड़की हँस पड़ती है- " झूठे कहीं के। फूल भौंरों को बुलाने के लिए आदमी थोड़े ही भेजता है। उसकी सुगन्ध ही सबको खींच लेती है। "

" नयनतारा तुम क्या कह रही हो ? "

" कह रही हूँ कि मैं आपकी राह देख रही थी। किवाड़ इसी-लिए तो खुले थे। रोशनी का प्रबन्ध शायद ठीक नहीं है। देखती हूँ दो चार दिन में कहीं और चले जाना पड़ेगा। "

त्रिलोकीनाथ और भी हतप्रभ हुए, कहा - " तारा तुम शायद भूल रही हो। तुमने एक दिन पूछा था ? ...... "

" तभी तो राह देख रही थी। आप पुरुष हैं और मैं स्त्री। स्त्री जब पुरुष से कुछ पूछती है तो... आपको पसीना आ रहा है। न, न घबराइए नहीं, मैं अभी किवाड़ बन्द कर लेती हूँ। "

" लड़की। "

" विश्वास कीजिए। मैं आपसे प्रेम करूँगी। आप शायद सोच रहे हैं कि आप जवान नहीं हैं। आप भूलते हैं। पुरुष का यौवन पैसा है। वह आपके पास प्रचुर मात्रा में है। तब भला कौन अभागी नारी होगी जो आपसे प्रेम न करेगी ? "

निर्भीकता और व्यथा की सीमा रेखा बहुत ही क्षीण है। एकाएक त्रिलोकीनाथ खाट पर बैठ गए। बोले — " नयनतारा ! मैं वह नहीं हूँ जिसकी तुम राह देख रही थी। शरण ने जब मुझसे तुम्हारी बात कही, तब मैंने उत्तर दिया था — सोचूँगा। "

यह क्या हुआ। नयनतारा तो काँप उठी — " आप सोच रहे थे। "

" डरती हो ? "

" नहीं, नहीं, डरने की बात नहीं है। "

" जो सोचता है उससे डरा ही जाता है ! "

त्रिलोकीनाथ चौंके तो, पर दूसरे ही क्षण मुस्करा कर बोले, मैंने अपनी पत्नी और लड़की से इस बारे में सलाह की थी। लड़की कॉलेज में पढ़ती है। सुन कर बोली, " दुनिया में सबको जीने का अधिकार है। " पत्नी ने कहा, " तुम्हारे पास तो पैसा है, क्यों नहीं उस लड़की की पढ़ाई का प्रबन्ध कर देते। "

कह कर दृष्टि उठाई तो पाया कि नयनतारा की आँखें सहसा रक्तवर्ण हो आयी हैं। क्रुद्ध स्वर में बोल उठी—" तो आप इसलिए आए हैं ! "

" तुम्हें कोई एतराज न हो तो बात कुछ बुरी तो नहीं है। "

" एतराज ! " नयनतारा कम्पित कण्ठ बोली-"यह आप कैसे सोच सकते हैं कि मुझे एतराज हो सकता है। मैं अनाथ हूँ लेकिन... "



रस्किन ने कहा है, मैं बगुले को तीर का निशाना बनाने के बजाय उसे उड़ते देखना चाहता हूँ, किसी मछली को खा जानेकी अपेक्षा उसे तैरते देखना चाहता हूँ !

" लेकिन क्या ? "

" लेकिन यही कि मुझे डर लगता है। आप चले जाइए। "

त्रिलोकीनाथ अतिशय उद्विग्न हो उठते हैं। न उठ सकते हैं, न जा सकते हैं। केवल नयनतारा को देखते रहते हैं। उसकी आँखों में क्रोध उमड़-घुमड़ आया है। स्वर तार सतक से ऊपर है – " आप देख क्या रहे हैं ? चले जाइए। मैंने समझा था आप पुरुष हैं। स्त्री से पुरुषों जैसी बातें करेंगे लेकिन आप तो निरे बुजदिल हैं। दम्भी कहीं के ! आप चाहते हैं कि मैं आपकी बनूँ, केवल आपकी। इसी से इतना बड़ा प्रलोभन देना चाहते हैं–"

त्रिलोकीनाथ अब न सह सके। चीख कर कहा – " लड़की ! तुम कृतघ्न हो। तुम ... "

नयनतारा उसी आक्रोश में जोर से हँस पड़ी। – " ओहो ! क्रोध आ गया। मैं आपकी प्रशंसा करती हूँ। आप मुझे पढ़ाते, किसी स्कूल में अध्यापिका बना देते। न होता तो अपना ही स्कूल खोल देते। फिर धीरे-धीरे अपना उपकार मुझ पर जताते। मैं कृतज्ञता से दब जाती और कहती, – " तुम देवता हो। तुम महान हो। " तुम कहते, – " तुम देवी हो। तुम्हारा साहस अद्भुत है। तुम्हारी प्रतिभा अनुपम है। ... "

" लड़की ! " त्रिलोकीनाथ तीव्र वेग से उठ खड़े होते हैं। " तुम इसी योग्य हो। तुम नरक में सड़ो। मैं जा रहा हूँ। "—

" जा रहे हो। लेकिन सुनते जाओ। फिर क्या होता ... लेकिन जाने दो तुम सब कुछ जानते हो। तुमने तो सोचा है। "

त्रिलोकीनाथ तेजी से चले जाते हैं। नयनतारा तीव्रता से किवाड़ बन्द कर लेती है और वहीं कच्चे फर्श पर गिर पड़ती है और फूट-फूट कर रोने लगती है और मिट्टी के तेल की डिबिया स्नेह-हीन होकर बुझ जाती है और खाली बत्ती दुर्गन्ध फैलाती रहती है।

(२)

आज भी सन्ध्या है और नयनतारा दालान में बैठी फटे कपड़े सी रही है। सहसा आहट पाकर देखती है कि खद्दर के वस्त्र पहने उसके दरवाजे पर एक युवती खड़ी है। आँचल खिसक कर कंधे पर आ गया है। चकित मृगी-सी इधर-उधर देख रही है। नयनतारा बोल उठी–" आओ बहन। "

मृणाल ने सहसा कहा–" आप ही नयनतारा हैं ? "

" और आप त्रिलोकीनाथ की पुत्री। "

कई क्षण के लिए फिर गहन मौन छा जाता है। आखिर नयनतारा पूछती है–" कुछ कहना चाहती हो बहन। "

मृणाल बोली–" मेरा नाम मृणाल है। बुरा न मानें तो किवाड़ बन्द कर दूँ। "

नयनतारा सर्वज्ञ-सी मुस्करा कर बोली—" आप निस्संकोच कहें, आप पुरुष नहीं हैं। "

" पुरुष से डरती हो। लेकिन स्त्री तो पुरुष से कहीं खतरनाक होती है। "

नयनतारा ने उत्तर दिया—" जानती हूँ। लेकिन यह भी जानती हूँ कि स्त्री ही स्त्री के हृदय को समझ पाती है। इसी कारण वह खतरा बहुत दुखदायी नहीं। "

मृणाल हठात् कह उठी—" इतना जानकर भी तुम पाप करना चाहती हो। "

" पाप ? "

" तुम्हारे जैसी युवती का अकेला रहना पाप ही तो है। "

" पाप पुण्य तुम जानो। मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि मेरे लिए ईमानदारी से जीने का एकमात्र रास्ता वेश्या बनकर जीना है।"

मृणाल काँप-काँप उठी। कई क्षण बाद जब इस दुस्साहस का वेग हल्का हुआ तो उसने धीरे-धीरे कहा—" वेश्या-वृत्ति तो, सब कहते हैं, बन्द हो चुकी है। "

नयनतारा शान्त भाव से बोली—" जब तक पुरुष है तब तक वेश्यावृत्ति है। दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति शरीर और आत्मा का मोल चाहता है। यही वेश्यावृत्ति है। मेरे पास रूप है, यौवन है। मैं किसी एक की होना चाहती हूँ। पर दुनिया कहती है, ' छीः तुम अनाथ हो, तुम्हें घर में लाना पाप है। ' लेकिन वही दुनिया आँख की ओट करके मेरे तलवे चाटने को तैयार है। मैं कहती हूँ, तलवे चाटने हैं तो आओ सबके सामने चाटो। जिससे मैं चाहूँ तो सिर पर लात तो मार सकूँ। यह सीधी-सी बात है। इसमें पाप-पुण्य कहाँ है। शरीर को तो मैं बचा कर नहीं रख सकती।"

नयनतारा इतनी शान्त थी कि मृणाल बुरी तरह उद्वेलित हो उठी। जवाब देने को कुछ सूझता नहीं। इतना ही कहती है– " शरीर को बचाना असम्भव तो नहीं। "

नयनतारा दृष्टि उठाती है—" शरीर को बचा लूँगी, पर मन को... न, न, सब ग़लत है। भूख तो भोजन मिलने पर ही शान्त होती है।"

" लेकिन यह भी क्या भूख है ? "

" तो क्या प्यास है ? " वह तो और भी भयंकर होती है।

मृणाल साहस बटोरना चाहती है पर वह है कि बिखर-बिखर जाता है। कई क्षण बाद बोल पायी–" बहन तुम्हारी बात में शक्ति है लेकिन फिर भी क्या दुनिया में सब एक-से होते हैं ? "

" तुम क्या कहना चाहती हो ? "

" यही कि कुछ लोग तुम्हारी सहायता कर सकते हैं "

" लेकिन उनकी सहायता का जो बदला मुझे चुकाना पड़ेगा उसकी कल्पना करती हूँ तो काँप उठती हूँ। जाने दो बहन, तुम

इन बातों को क्या जानो। कॉलेज में पढ़ती हो। युवकों की मीठी मीठी बातें मोहक लगती हैं। किन्तु ..." कहते – कहते सहसा नयनतारा का चेहरा तमतमा आया, "तुम क्या यही कहने आयी थी? कृतज्ञ हूँ। परन्तु सब लोग मुझे असहाय क्यों समझते हैं? मुझ पर अपनी कृपा और दया क्यों बिखेरना चाहते हैं। आखिर मैं भी इन्सान हूँ। मुझ में बुद्धि है, विवेक है। तो फिर ...?"

आगे नहीं बोल पाती। रो पड़ती है। मृणाल एकाएक घबरा जाती है। चाहती है कि नयनतारा को छाती में भर ले। लेकिन साहस नहीं होता। नयनतारा फिर कहती है —"तुम चली जाओ और फिर कभी भूल कर इधर मत आना।"

मृणाल एकदम बोली – "जाऊँगी या नहीं यह मैं नहीं जानती पर इतना कहे जाती हूँ कि तुमने जो समझा है कि स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष है यह गलत है। स्त्री माँ भी है, बहन और बेटी भी है। मृणाल तुम्हें अपनी बहन मान सकती है।"

और वह लौट पड़ती है। नयनतारा दृढ़ होकर कहती है—"स्त्री स्त्री को कितने दिन संभालेगी। स्त्री का भार तो पुरुष ही उठा सकता है और वह भी उसका होकर।"

मृणाल ने सुना, पर रुक न पायी। नयनतारा कई क्षण खड़ी–खड़ी उसे जाते देखती रही।

(४)

नयनतारा का पत्र मृणाल के नाम।

बहन,

तुम्हारा पत्र आया। तुमने मेरा साहस छीन लिया। पुरुष की बात समझती हूँ पर तुमको नहीं समझ पाती। काश! कि तुम न आयी होती। डरने लगी हूँ कि न जाने कब माँ, बहन मुझ पर आक्रमण कर दे और मेरा रूप व्यर्थ चला जाए। ओह! तुमने कब का बदला चुकाया? न, न, मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी। एक से लाख, न आऊँगी।

नयनतारा।

नयनतारा का पत्र शरण के नाम।

शरण,

तुमने क्या किया? आप तो आए नहीं, किस किस को भेज दिया। सुनो मैं डरने लगी हूँ। कहीं पूंजी न गँवा बैठूँ। तुम आओ और उसे स्वीकार करो। मैं परम शुद्ध हूँ। आओगे न?

नयनतारा।

मृणाल का पत्र नयनतारा के नाम।

बहन,

शरण ने अपना पत्र भी मुझे दे दिया। दोनों का उत्तर लो। हम दोनों लग्न-बंधन कर रहे हैं। इसी पूर्णिमा को

साक्षी–उत्सव है। तुम्हारा स्वागत होगा। पिताजी तुम्हें मेरे स्थान पर लेंगे। आओगी न !

मृणाल।

ठीक साक्षी–उत्सव के दिन यह पत्र डाक घर की कुशलता का प्रमाण देता हुआ, मृणाल के पास लौट आया। बहुत देर तक आँखें फाड़–फाड़ कर देखती रही, फिर उसे फाड़ कर फेंक दिया। जैसे छिगुनी को काट फेंकते हैं।

(५)

ऐसा लगा जैसे बात समाप्त हो गयी। पर कहानी का क्या कभी अन्त होता है। लगभग ६ साल बाद शरण को एक दिन चकित रह जाना पड़ा। राजधानी में डाक्टर है। खूब प्रॅक्टिस चलती है। पर्दे के पीछे जाने में उसे कोई एतराज़ नहीं क्योंकि वह मानता है कि इसी से समाज की शालीनता की रक्षा होती है।

एक दिन एक भले से खद्दरधारी बहुत देर तक बातें करते रहे। एक मंत्री महोदय के समीपी थे। मामला एक लड़की का था। बेचारी युवती है और उस पर सुन्दरी ! पैर फ़िसल गया। यौवन जब मुस्कराता है तो तार छू ही जाते हैं। लेकिन प्रारम्भिक अवस्था के मंत्री महोदय चाहते हैं कि बेचारी की लाज ढकी रहे।

बहुत वादविवाद के बाद शरण ने कहा—"सब कुछ कोठी पर होगा तो मुझे आने में कोई एतराज नहीं।"

आगन्तुक आश्वस्त होकर चले गए। कुछ घण्टे बाद एक युवक ने उसी एकान्त में मिलकर कहा "खबरदार जो उस लड़की को कुछ किया। मेरी मंगेतर है। गोली से उड़ा दूँगा।"

"आपकी तारीफ।"

"कोई चिन्ता नहीं। इतना ही कहने आया था।"

जाते वक्त इतना इशारा करना न भूला कि पिस्तौल जेब में है। डाक्टर जैसे खड़े थे वैसे खड़े रहे। आगत में क्या है कुछ जान न पाए। लेकिन सन्ध्या होते-होते आँखें फाड़–फाड़ कर क्या देखा कि सामने नयनतारा खड़ी है। गर्दन तक कटे–छटे लहर उठाते स्निग्ध केश, मदभरे नयन, मुस्काता मुखड़ा...।

"तुम।"

"हाँ।" नयनतारा भारमुक्त चंचला-सी बोली—"नहीं जानते मंत्री महोदय की निजी सचिव हूँ।"

पत्थर की मूर्ति डाक्टर ने चाहा कि नयनतारा को उठा कर पटक दे, चूम ले और फिर गला घोट दे। लेकिन नयनतारा बोल उठी—"जानती हूँ, नफ़रत से भरे हो। पर तुमने ही तो मुझे बल दिया है।"

"तो तुम ही वह माँ हो।"

"हाँ, हूँ, और लज्जित भी नहीं हूँ। मेरी आत्मा उस से मुक्ति पाने को मना करती है।"

"पर विवाह जो नहीं हुआ।"

"आह ! वह भी होगा। मातृत्व की राह में वह बस ढाल है। पहले हो, पीछे हो। मंत्री महोदय चाहते हैं मैं उनकी ही रहूँ। पर मैं चाहती हूँ बेटे को।"

रुखाई से डाक्टर ने कहा — "वही जो पिस्तौल से मुझे मारने की धमकी दे गया है।"

नयनतारा खूब हँसी, "सच। तब तो जादू चल गया। न, न, उसकी जरूरत न होगी। फ़िलहाल तुम कहीं चले जाओ।"

"अच्छी मुसीबत है–" डाक्टर शरण ने सोचा पर कुछ सूझा नहीं, आँखों में धुंध उठती रही। नयनतारा बोली—" न, नं, सोचो ना, गड़बड़झाला है। दो दिन बाद विवाह में आना। निमंत्रण छोड़े जाती हूँ।"

दृष्टि उठी तो पाया निमंत्रण मंत्री महोदय की तरफ से है। ऊपर देखा तो नयनतारा वहाँ न थी ! जैसे स्वप्न था। भाग कर बाहर आया। पूछा—"वे मेम साहब गयीं ?"

"कभी की गयीं। मंत्री महोदय की कार थी।"

सात दिन तक राजधानी से बाहर रहा। वहीं अखबार में पढ़ा कि मंत्री महोदय के सुपुत्र प्रणवीर वर्मा का शुभविवाह कुमारी नयनतारा के साथ बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। वर–वधू को आशीर्वाद देने के लिए राष्ट्र के कर्णधार, मंत्रीगण तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। ऐसी सुन्दर और सुघड़ वधू पाने पर सबने वर को विशेष रूप से बधाई दी। मंत्री महोदय स्वयं स्वागत में अतिशय व्यस्त थे।

सहसा चित्र पर दृष्टि गयी। देखा, भीड़ में लावण्यमयी वधु को घेर कर जो नारियाँ हँस रही हैं उनमें मृणाल भी है। एकाएक चीख कर उसने नौकर को पुकारा—"मैं अभी राजधानी लौटूँगा। टॅक्सी लाओ।"

•••

वर्षाऋतु के आखिर में फिर धूपछांव का खेल शुरू हुआ। बौछारें बंद हुआँ और इंद्रधनुकी कमान आसमान में झूलने लगी। फिर वही ठंडी हवा........। सुनहरी स्मित रेखा.........। चिड़ियाका मन हिल उठा और......



धूपछाँव

कु. दुर्गा भागवत

भादों के आखिरी दिन थे। नंगी बौछारें पड़ रही थीं। धूपकी कोमल लकीरें उन बौछारों को छेदकर उस पार जा रही थीं। धूपछाँव का एक सुहाना खेल हो रहा था। ये बौछारें क्षणभंगुर थीं लेकिन पंछियों की छोटी-सी दुनियामें उन बौछारोंने, इस कोमल धूप ने कितनी हलचल मचा दी ! यह देखो न इस पेड़ पर क्या चल रहा है ! फूलोंसे लदे हुए इस पेड़ पर दो चिड़ियाँ खूब अच्छी तरह भोजन कर रही हैं। बड़ी सावधानी से पहले तो उन्होंने मधुकोष पर हमला किया और फिर दलोंको कुतरने लगीं। कुछ थोड़ा सा खाना, बाकीको बिखेर कर चल देना तो तोतों का काम है। चिडियों को यह बात कैसी पसंद आये ? उन्होंने तोते की तरफ नजर फेर कर देखा और मुँह मोड़ लिया। लो, फिर शुरु हुआ उनका भोजन ! फिर वही चह चह — वही मादक मधुगंधी फूलोंपर आक्रमण ! इस दुनियामें आकर इन चिड़ियोंको सिर्फ तीन महीने हुए। तब से आज तक उन्होंने घने बादल ही देखे थे। अंधियारे की याद उनके मन में अब भी ताजा थी। रोजाना रातको उन्हें अपने बचपन की याद आती थी। किंतु अब वह छोटासा घोंसला नहीं था — नन्हे-नन्हे परोंका मुलायम बिछौना नहीं था। माँ के परोंका आसरा नहीं था —

अब मानों कुछ अनोखी घटना घट रही थी। उनके मनमें हल्के-हल्के कुछ परिवर्तन हो रहा था। वे नहीं जानते थे कि क्या हो रहा है। अब बचपन बीत गया था। नई-नई उमंगें उठ रही थीं-उठ क्या रही थीं, उन्हें अपनी तरफ खींचती थीं। वे दोनों एक दूसरे को चिमटकर उन नई उमंगों का सामना कर रहे थे।

बचपन में तो उन्हे अंधियारा ही भाता था। माँ दाने चुगने जाती और ये रो-पीट कर उसकी नाक में दम लाते थे। मांस के चार पिण्ड एक दूसरे के अंगपर सिर रख के सो जाते थे। वर्षाऋतुमें जलधाराओं का संगीत उन्हें बहुत पसंद था। ऐसी वर्षा में उनकी माँ उन्हे गोद में दबा कर चुपचाप बैठी रहती थी। पानी का जोर कम हुआ और उसे खाना ढूँढ़ने जाना पड़ा। भादों के अंत में पानी का जोर कम हुआ और प्रकाश-रेखाएँ तीव्र होने लगीं। शुरू-शुरू में प्रकाश के डर के मारे वे सब अपनी छोटी-छोटी आँखें मूँद लेते थे। अब कहीं धूपकी जान-पहिचान होने लगी। अब ठंडी हवा भी उनमें तरावट लाने लगी। सच पूछो तो इस हवाने ही जीवन का एक अनोखा दरवाजा खोल दिया। उनके विरल परोंपर अब पंख खिल उठे। पंख हिलने लगे। वे चारों बच्चे अब उड़ने की तैयारी करने लगे। उनमें से एक पेड़परसे नीचे गिरकर मर गया। माँ ने चहक-चहक कर सीना फाड़ लिया। दूसरे ही दिनसे उन तीन बच्चों को उड़ने की बाकायदा तालीम दी गयी। तीनमें से एक जरा दुबला-पतला था। माँ इस बच्चे पर विशेष ध्यान देती थी। उन दोनोंको अपने दुबले भाई पर गुस्सा आता था। माँ की नजर न होनेपर ये दोनों उसे नोचना पसंद करते थे।

एक दिन उनकी अपने भाईसे खूब लड़ाई हुई। अपनी माँको और भाई को छोड़कर वे दोनों इस पेड़ पर आ बसे। अब बगैर माँके उनका कोई नुकसान नहीं होने-वाला था। अब वे बड़े हो गये थे। चिड़िया तो मानों अपनी माँकी नकल ही थी। परों की चोली अब उसके सीनेपर ठीक हो रही थी। आवाज भी अपनी माँ जैसी ही कुछ कड़ी कुछ कोमल ! वही तीखी नजर और वही नोकीली चोंच। माँ का रौब उसके नस-नसमें समाया था। चिड़िया यही नोकीली चोंच अपने भाईके परोंमें घुसाती थी। वह खुशीके मारे फूला नहीं समाता था। झटसे वह चिड़िया की गोद में घुस जाता था। वह एक

कु. दुर्गा भागवत :

आप मराठी की सर्वश्रेष्ठ लेखिकाओंमें से हैं। आपकी 'ऋतुचक्र' पुस्तक का हिंदी-अनुवाद हाल ही में प्रकाशित हुआ है। आपकी रचनाओं से पाठक अनभिज्ञ नहीं।





दूसरे के साथ आँख-मिचौनी खेलते थे। फूलोंको चबा कर एक दूसरे के मुँहमें देनेका खेल भी शुरू हुआ। चहक-चहक कर वे खुशियाँ मनाते थे। अब वे बड़े हो गये थे।

पशुओंकी शादी रचानेवाली एक धूप-छाँव आयी और इसीने इन पंछियों को यौवन की राह दिखायी। अपनी अधमुँदी आंखोंसे उन्होंने एक दूसरे को जी भरके देख लिया। बचपन की दुनिया अब दूर जा बैठी थी बारिश से बचने के लिये उनको अब पर्णों का आसरा किस काम का था? सिर्फ एक दूसरे के सहारे की चाह अब बाकी थी। जलधाराओं से उनके पंख जरूर थर्राते थे, पानी की बूँदे मोतियों की तरह परोंसे छिटक रही थीं। उन्होंने आँखें मूँद लीं और निश्चल हो बैठे। यकायक हवा की ठंडी-सी लकीर ने उन्हें कुछ अनोखी बात सुलझाई। जीवन का यह यौवन-रहस्य खोलकर हवा चली गयी। वे एक दूसरे को चिपट गये। नर ने अपनी चोंच चिड़िया के मुँह मे डाली।

बस उसी दिन से उनका जीवन एक दूसरे के जीवन में पूरा मिल गया। जीवन में नया रंग आया, नया साज चढ़ा। खाना-पीना, कूदना-फुदकना, सारा खेल दूसरे के लिए ही होने लगा। चिड़िया की वह नोकीली चोंच, वह पीले रंगकी चोली, वह मुरकने वाली गर्दन नर को मन-ही-मन न सुख देती थी। ऐसे तो नर चिड़िया से अधिक खूबसूरत था। अच्छा मोटा तगड़ा था। उसके चितकबरे अंग पर गुलाबी झलक थी। चोंच काली स्याह थी। आँखे भोली भाली थीं। काली कंठमाला उसकी छाती को उठाव देती थी।

चिड़िया बड़ी अजीब थी। नई-नई जगहों की तलाशमें रहने का उसे बहुत शौक! नर तो उस पेड़ को छोड़ कहीं दूर जाने को तैयार नहीं था। वह चाहता था कि हम दोनों का प्रेम इस पेड़ के हरे रंगमें ही रंग जाये। चिड़िया को एक अज्ञात विश्वका दर्शन दिखाना था। दिन-पर-दिन चिड़ियाका नाचना, मुरकना बढ़ रहा था। नर उसकी तरफ जोरों से खींचा जारहा था। दूसरी चिड़ियों को छोडकर यह चिड़िया अपनेही पास ठुमकती है-इस बात की उसे बहुत खुशी थी।

एक दिन एक मकान की खिड़की में से चिड़िया कमरे में घुसी। नर भी उस के पीछे गया। जमीन पर बिखरे हुए चावल दोनों ने खाये। रोजाना वे मकान में जाते रहे। रसोईघर में धुले हुए दाल-चावल वे भरपेट खाने लगे। दो महीने तक उनका यह क्रम जारी था। अब वे अच्छे तन्दुरुस्त हो गये। बसंत ऋतु आयी, चिड़िया एक नये उमंग से फूल उठी। आत्मसमर्पण की लगन लगी। फिर भी बेचारी कुछ डरी-डरी-सी थी। अकारण अपना अंग नरके अंगसे घिसने लगी। वासंतिक प्रणयो-न्माद नर को भी चैन लेने नहीं देता था।

उस कमरे में एक शीशा था। एक दिन धूपकी तिरछी लकीर शीशेमें पड़कर दीवारपर परावर्तित हुई। बस, उसी लकीर पर अब चिड़िया की धुन सवार हो गई। वह लकीर पकड़ने की कोशिश में चिड़िया खुद को खो बैठी। अचानक उसकी नजर शीशेकी तरफ गई। शीशेमें एक दूसरी चिड़िया थी। उसे देखकर यह चिड़िया चकरा गई। नर भी उसके साथ था। उस को शीशेमें नर दिखाई दिया किंतु वह पागल नहीं हुआ। शीशे की चिड़िया से उसे कोई सम्बंध नहीं था। चिड़िया तो खाना-पीना सब छोड़कर शीशेके पास ही पंख फड़फड़ाती थी। नर बेचारा दाने लाता था और चिड़िया को खिलाता था।

चिड़िया शीशेके सामनेसे हटना नहीं चाहती थी। हफ्ता बीत गया, दो हफ्ते हो गये, महीना होने आया उसका पागलपन बढ़ता ही गया। नर चिड़िया के आगे-पीछे कूदता-फांदता था। चिड़िया की बिनती करते-करते अब वह हैरान हो गया। चिड़िया उसकी भावुकता को ठुकरा देती थी। नर भी कुछ कम नहीं था। उसका प्रियाराधन जारी ही था। दिन डूबने पर शीशेकी चिड़िया गायब हो जाती थी। चिड़िया उसे ढूंढ़-ढूंढ़कर थक जाती और जोरोंसे चिचियाकर पेड़पर वापस लौटती थी। नर उसे समझाता था, तसल्ली देता था।

सवेरा होते ही फिर वही बात शुरु होती। शीशेकी चिड़ियाके लिए वह दाने, कीड़े, मकोडे वगैरे लाती थी। शीशेकी चिडियाको किसी चीज की चाह नहीं थी। शीशेके पास जो कागजके फूल थे वह कुतर-कुतरकर इसने बिखेर दिये। खिड़की के पर्दों के डोरे नोंच डाले। एक दिन सवेरे उठकर चिड़िया खिडकीमेंसे अंदर जाना चाहती थी तो खिड़की की जालीसे टकरा गई। उसने जाली को धक्के मारना शुरु किया। जाली टूट नहीं सकी। लो! अब आई आफत। अब वे आइने के सामने कैसे जायेगी। अब वह





मनोहारी आत्मरूपदर्शन कहाँ होने वाला था ? इस दुःख के मारे वह बेचैन हुई इसी बातपर नर खुश था। वह चिड़ियाके पास पहुँचा। उसे कोमल स्वर में तसल्ली दी। उसने भी अपना स्वर नर के स्वरों में मिला दिया। किंतु नर के स्वर में कुछ संदेशा था, कुछ हठ था, कुछ जुल्म था। उस खिड़की के पास वह सूने मनसे बैठी रही। दूसरे ही दिन वह अपना दर्द भूल गई। आखिर इन पंछियों को याद कहाँ तक रह सकती है। सृष्टि का एक प्रणयतंत्र होता है। विस्मृतिसे खिलने वाला। नर की तपस्या सुफलित हुई। चिड़िया अब उसकी हो बैठी।

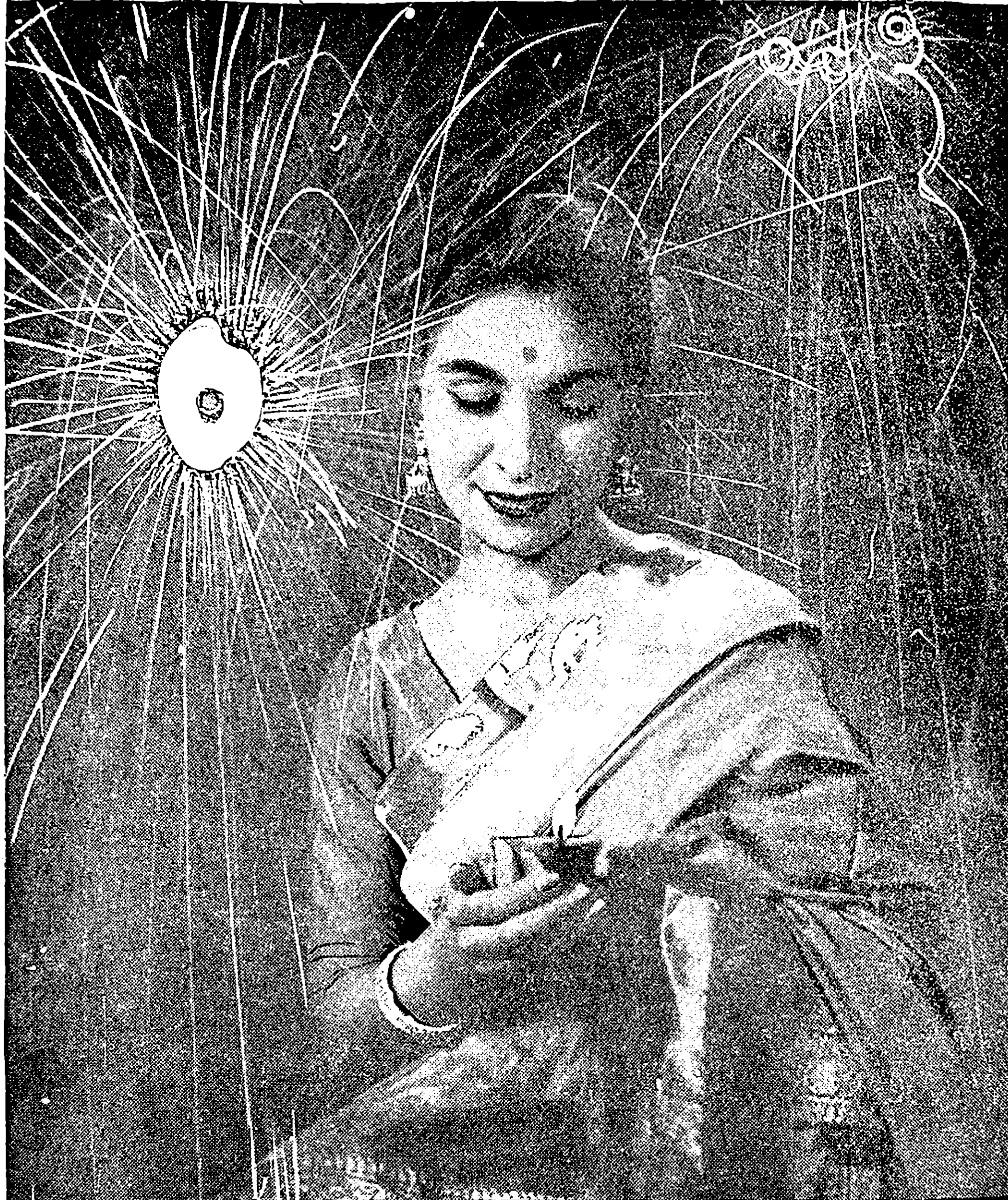
वे आठ दिन तो स्वर्ग सुख के नशीले दिन थे। एक दिन सवेरे-सवेरे बगीचे के तार पर वे दोनों धूप में बैठे थे। इतनेमें पीछे से एक बिल्ली आई और नर को पकड़ लिया। चिड़िया दूर उड़ी। चिड़िया बच गई–नर बेचारा मर गया। दुखके मारे चिड़िया व्याकुल हो उठी।

दोपहर को भूख की ज्वाला उठी। चिड़िया जमीन में खाना ढूँढ़ने लगी। एक नर उसके पास आया सुंदर नवयौवना को देखकर नर हर्षित हुआ। चिड़िया ठिठुर गई। यह नर कोई सीधा-सादा नहीं था। उसने दुनिया के अनेक रंग देखे थे। चिड़िया उड़ती थी, यह भी उसके पीछे-पीछे उड़ने लगा। चिड़िया स्तब्ध हो गई। प्रतिकार-शक्ति अब नष्ट हो गई थी। नर के बिना जीवन व्यतीत करना अब मुश्किल था। अब किसीके सहारेकी चाह थी। उसने दूसरे नर को वरमाला पहनाई। अब वह घोंसला बनाने वाली थी। गृहस्थी का साज सजानेवाली थी। नर भी घोंसला बनाने में मग्न रहा। चिड़ियाने इस छोटे से घोंसलें में पांच अंडे रखे। बस! अब तो चिड़ियाकी एक ही लगन – दिनभर अंडोंपर बैठना। अब वह बच्चोंकी माँ होनेवाली थी।

एक दिन वह दाने लाने गई इतनेमें एक कौवेने एक बच्चा उठा लिया। वह रोई– खूब रोई। दूसरे बच्चोंके अब पर फूट रहे थे इतने में ही नर दूसरी चिड़िया के पास भाग गया। चिड़िया तो बच्चोकी माँ थी। वह भला कैसे उन्हें छोड़ सकती थी ? उन बच्चोंमें से एक खासा तगड़ा था। उसकी कंठमाला काली–स्याह थी। बिलकुल पहले नर के जैसी। वही मीठी बोली, वही भोली आँखें! चिड़िया पागल हो गई।

बस! इसी बच्चे में उस की जान अटक गई। उसने अपने प्राणों का हार इस नर को पहनाया। वर्षाऋतु के आखिर में फिर धूपछांव का खेल शुरू हुआ। नंगी बौछारें बंद हुई और इंद्रधनु की कमान आसमान में झूलने लगी। फिर वही नटखट ठंडी हवा चली। घने बादल ढल गये। रिक्त मेघमाला-ओं पर सुनहरी स्मित रेखा खिल उठी। ऐसे ही एक सुनहरे दिन चिड़िया का मन हिल उठा। पुरानी बातें वह भूल गई। नियति का हुक्म जारी हुआ। नौजवान नर भी प्रणय-भावनासे बेहोश हुआ। उसकी काली कंठमाला फूल गयी...... ●●●

रूपा : **निर्मला देशपाण्डे**



अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका



फिर यक़ायक वह उस क़ब्रपर गिर पड़ी और उसके दोनों हाथों की उँगलियाँ क़ब्रपर इस तरह तड़पने लगीं, जिस तरह बहुत ही पतले पानी में मछलियाँ तड़पती हैं। ... फिर वह उँगलियां भी शान्त हो गयीं और यक़ायक बेरियों में गहरा सन्नाटा हो गया।

पत्नी

क्रिशनचंदर

थानेदार नियाज़ अहमद मेरे पिताजी का बहुत दोस्त था। देखने में वह मेरे पिताजी से भी सुन्दर था। मेरे पिताजी की सूरत–शक़्ल बड़ी अच्छी थी और उन का कद भी पाँच फुट ग्यारह इंच था और रंग भी गेहुँवा और साँवले के बीच का था और वह हर एक से बड़ी नर्मी और मिठास से बात करते थे और जिससे बात करते थे उस का दिल मोह लेते थे।

मगर थानेदार नियाज़ अहमद की बात और ही थी, वह कुछ इस तरह का ख़ूबसूरत था, जैसे लोग तस्वीरों में ख़ूबसूरत होते हैं। ऊँचा पूरा, कद छः फुट तीन इंच का जवान, पतली कमर, चौड़ी चकली छाती, दाँत सफ़ेद और सुन्दर, छोटी–छोटी बल खाती हुई मूँछें। चौड़े मस्तक पर किसी पुराने घाव का दाग़ था, जो उसकी पेशानी पर एक स्थायी त्योरी की तरह मालूम होता था इस लिये जब वह मुस्कुराता था, तो ऐसा मालूम होता था, जैसा कोई सोच में डूबा हुआ आदमी मुस्कुरा रहा है, उस की यह अदा स्त्रियों को बहुत पसंद थी।

थानेदार नियाज़ अहमद बहुधा दौरे पर रहता, मगर जब दौरे से वापस आता तो मेरे पिताजी से मिलने के लिये हररोज़ शाम को आता, उन दिनों मेरे पिताजी बहुत रात गये नीचे घर में आते, ऊपर बाग़में ही अस्पताल के स्पेशल वार्ड में जो अक्सर ख़ाली रहता था और अक्सर ख़ाली नहीं रहता तो ख़ाली करवा लिया जाता था। वहाँ पर मेरे पिताजी और थानेदार नियाज़ अहमद की बैठक जमती थी, क्यों कि घर में माँजी का हुक्म चलता था, इसलिये घर मेंशराब पीने और मांस खानेकी मनाही थी और मेरे पिताजी दोनों से कभी-कभी शौक़ फर्माते थे, इसलिये जब थानेदार नियाज़ अहमद दौरे से वापस आ जाता तो उनके दोनों शौक़ पूरे हो जाते थे। दोनों दोस्त मिल कर स्पेशल वार्ड में बैठकर खुद मुर्ग़ भूनते, तरह-तरह के



मेरे भाइयो, अहंकारी और शक्तिशाली के सामने अपनी सादगी की सफ़ेद पोशाक पहिनकर खड़े होने में शर्माओ मत।

मसाले गोश्त में डाल कर तजुर्बे करते, बातें करते, गाते। बहुत रात गये तक उनके क़हक़हों की आवाजें बाग में आतीं! मेरी माँ का चेहरा उस दिन फ़क़ और उड़ा-उड़ा-सा रहता और वह देर तक बरामदे के चोबी स्तम्भ से लगी इश्कपेंचाँ की बेल के करीब खड़ी मेरे पिताजी का इन्तजार किया करतीं। रात के कोई ग्यारह-बारह बजे कभी-कभी एक बजे के लगभग मेरे पिता बाग़ के नीले टायलों वाली रौस पर झूमते-झामते घर आते हुए दिखाई देते और उन के होठोंपर यह गीत होता —

'फटी जब कान इस बन में'

मेरी माँ को इस गीत से बड़ी चिढ़ थी, गीत क्या था बस वही एक पद था, जिसे मेरे पिता अक्सर शराब के नशे में और शराब के नशे के बाहर भी जब वे सोच में होते तो गाया करते।

'फटी जब कान इस बन में'

और मेरी माँ झल्ला कर पूछतीं-"आखिर इस गीत का मतलब क्या है? जब देखो इसे गा रहे हो, जब देखो..."

"भली...मानुस!" मेरे पिता स्कूल के मास्टर की तरह एक उँगली उठा कर कहते —"इस गीत का मतलब है फटी जब कान इस बन में, यानी जब कान इस बन में फट गई, कान नहीं जानती हो? कान यानी लोहे की खानि, नमक की खानि, पत्थर के कोयले की खानि: कोई भी एक खानि, जिसमें बारूद भर कर उड़ाया जाता है, कान से आशय तुम्हारा कान नहीं, जिस में सोने की बालियाँ झूम रही हैं। भगवान् की सौगन्ध जानकी! आज तुम बहुत अच्छी लग रही हो, यह रंग रूप तुम कहाँ से लाई? तुम्हारी माँ तो बड़ी कुरूप थीं।"

"वाह! कहाँ कुरूप थीं?" मेरी माँ क्रोध से चिढ़ कर कहतीं... "ऐसी तो सुन्दर थीं वह, कुछ भी हो तुम्हारी माँ से अच्छी थीं!—ए काका! तुम यहाँ खड़े क्या सुन रहे हो, तुमसे दस बार कहा है—जाओ—भागो—सो जाओ—"

"यह अभी तक जाग रहा है!" मेरे पिताजी हैरान होकर मेरी तरफ़ देखकर मेरे सर के बालों से खेलते हुए पूछते।

"बाप बारह बजे तक शराब पियेगा, तो बेटा कैसे सोयेगा?" मेरी माँ गुस्से से भड़क कर असली मतलब पर आ जातीं, वह लड़ना चाहती थीं, बाप तरह देना चाहते थे। नियाज अहमद से बैठक के बाद हमेशा इसी तरह होता था, मगर इस लड़ाई से पहले मुझे बिस्तर में भेज दिया जाता था, फिर दोनों पति-पत्नी बरामदे की कुर्सियों पर बैठ कर लड़ा करते थे, यह अच्छी और उम्दः लड़ाई होती थी, क्योंकि मेरे पिताजी पीकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाते थे और बड़ी जीदारी से मेरी माँ की बातों का उत्तर देते थे। हवा के हल्के-हल्के झोंके आते। दूर ढलवानों से परे नदी का पानी चाँदी के तार की तरह चमकता और इश्कपेंचाँ के फूलों की महक से बरामदा सुगन्धित हो जाता। इसलिये इस निथरी-निथरी बहार में लड़ाई भी बहुत उम्दः सुथरी और सलीक़े से होती थी। शतरंज के खेल की तरह इस लड़ाई के भी नियम थे। पहले माँ ऊँचा बोलने लगती थीं। अन्त में मेरे पिताजी तरह देते थे, फिर बीच में मेरे पिताजी ऊँचा बोलने लगते थे। अन्त में मेरी माँ रुआँसी हो जातीं और धीरे-धीरे सिसकने लगतीं। यह एक सिगनल था कि अब सुलह होगी। इस के बाद फिर मेरे पिता अपनी आराम-कुर्सी से उठकर आते और बड़े प्यार से नर्मी से और बहुत ही अत्युक्ति से मेरी माँ का हाथ पकड़ कर मुआफ़ी माँगने लगते। इस के बाद मैं कुछ न देखता, खुशीसे लिहाफ़ में दुबक कर सो जाता!—जितने दिन नियाज अहमद से बैठक रहती थी, यही कुछ होता था।

नियाज अहमद की बीवी मर चुकी थी, लेकिन उसने दूसरी शादी नहीं की थी। पहली शादी से एक लड़का था, जो बड़े शहर में पढ़ता था। नियाज अहमद की उम्र पैंतीस वर्ष से कम न होगी, लेकिन देखने में वह मुश्किल से पच्चीस वर्ष का दिखाई देता था। वह बड़ा कसरती जवान था, और जब वह सुबह सवेरे अपने क़िलानुमा थाने की सीढ़ियाँ उतर कर घोड़ा दौड़ा कर नदी किनारे जाता और लँगोट बाँधकर नदी किनारे कसरत करता तो सुबह की आनन्ददायक सुनहरी धूप में उसका गोरा बदन कुन्दन की तरह चमकता था और राह चलती स्त्रियाँ सर पर घड़े रखे उसे कनखियों से देखती जातीं, घबरा कर नजर झुका लेतीं, फिर देखनेपर मजबूर हो जातीं, फिर घबरा कर नजर झुका लेतीं और एक गहरी आह भर कर अपने रास्ते पर चली जातीं। नियाज अहमद को मालूम था कि उस पर एक हजार एक लड़कियाँ, ब्याहता भी और अविवाहित दोनों किस्म की औरतें मरती हैं। अच्छे-अच्छे खान्दानवाले घरों से उस के लिये शादी के सन्देश आते थे, मगर वह शादी न करता था, क्यों नहीं करता था, यह भी एक रहस्य था, जो केवल मेरे पिता को ज्ञात था।

कुछ अर्से से नियाज अहमद की रीति में परिवर्तन हो चुका था पहले तो वह लम्बे-लम्बे दौरे किया करता था और महीने में सिर्फ़ चार छः रोज के लिये वापस सदर मुकाम पर आता था, इस लिए चार छः रोज की बुरी सोहबत तो मेरी माँ मेरे पिताजी के लिये किसी न किसी तरह रो-पीट कर गवारा कर लेती थीं।

लेकिन अब एक साल से यह हो रहा था कि नियाज़ के दौरे कम होते जा रहे थे। पहले वह महीने में सिर्फ चार छः रोज के लिए आता था, अब वह आठ दस रोज के लिए सदर में ठहरने लगा, फिर बारह पन्द्रह रोज के लिये, फिर बीस रोज के लिए कयाम करने लगा, अब गत चार माह से वह यहीं सदर मुकाम पर पड़ गया। इन चार महीने में वह एक बार भी दौरे पर नहीं गया था, यह मेरी माँके लिए बड़ी मुसीबत का वक्त था।

फिर एक दिन रात में बड़ी भगदड़ मची। फ़ौज ने हमारे बँगले को घेर लिया, न सिर्फ़ हमारा बँगला बल्कि जहाँ भी दूसरे आफ़िसर लोग रहते थे उन सबके बँगले फ़ौज के घेरे में ले लिये गये, और उन सबके घरों की तलाशी ली जायेगी। सारे सदर मुक़ाम में जगह – जगह मशालें-सी जलती हुई मालूम होती थीं और लोग घबरा कर इधर – उधर जा रहे थे और पुलिस के दस्ते गश्त कर रहे थे और भिन्न – भिन्न मकानों की तलाशियाँ ले रहे थे, जहाँ – जहाँ उन्हें कोई किसी तरह का सन्देह था।

पूछने से मालूम हुआ कि राजाजी ने थानेदार नियाज अहमद की गिरफ़्तारी के आज्ञापत्र जारी किये हैं और इनाम भी रखा है। जो कोई नियाज अहमद को राजाजी के सामने ज़िंदा या मुर्दा पेश करेगा उसे दस हज़ार रुपये का इनाम दिया जायेगा। इसी सिलसिले में मंत्री से लेकर डाक्टर तक हर बड़े आफ़िसरके मकानकी तलाशी भी ली जा रही थी, क्यों कि थानेदार नियाज़ अहमद आफ़िसरों में बहुत पसंद किया जाता था। पुलिस ने रातोंरात तमाम बँगले चप्पा–चप्पा छान डाले, मगर नियाज़ अहमद का कहीं पता न चला।

फ़ौज के चले जाने के बाद देर तक मेरी माँ और बाप बिस्तरों पर पड़े खुसुर–फुसुर करते रहे। उन के ख्याल के मुताबिक मैं सो रहा था, फिर भी मुआमला ऐसा गम्भीर था कि वे लोग बहुत धीरे स्वरों में बातें कर रहे थे। वास्तव में किस्सा यह था कि नियाज़ अहमद हमारे ही घर में छिपा बैठा था। मेरी माँने उसे अपने खास कमरे में यानी पूजा के कमरे में राम और सीता की मूर्ति के पीछे छिपा दिया था। फ़ौज के लोगों ने यद्यपि पूजा का कमरा भी खुलवा के देखा था, मगर वे लोग कमरे के अन्दर नहीं घुसे थे, दर्वाज़े से अन्दर झाँक कर ही सरसरी नज़र से देख कर चले गये थे, क्यों कि वह पूजा का कमरा था और सब लोग मेरी माँ के कठोर स्वभाव से परिचित थे, उन्हें यह भी मालूम था कि मेरी माँ अपने धर्म के सिद्धान्तों को कितनी दृढ़ता से पालन करती हैं, इस लिए उन्हें इस बात का सन्देह तक न हो सकता था कि मेरी माँ एक मुसलमान को अपने पूजा–गृह में घुसने देंगी और उसे अपने पवित्र इष्टदेव की मूर्ति के पीछे छिपा देंगी।

और, मेरी माँ सचमुच यह कभी न करतीं, अगर मेरे पिता लड़–झगड़ कर मेरी माँ को इस के लिए मजबूर न कर देते। मेरी माँ तो तब भी उसे न मानतीं, लेकिन मेरे बाप ने गुस्से में आकर नदी में डूब जाने की धमकी दी थी, इस पर मेरी माँ राज़ी हो गयीं, मगर फ़ौज के जाने के बाद वह फिर धीरे-धीरे मेरे बाप से झगड़ने लगीं।



सोमसुधा

— सत्यकाम विद्यालंकार

भूत भविष्यत वर्तमान का
जो प्रभु है सर्वस्वामी।
गगन व्योम में, वही हृदयमें,
सब का है अन्तर्यामी।
अविकारी आनन्द रूप जो,
गुणातीत निर्मल सुखधाम।
उस महान जगदीश्वर को है,
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम॥

कोटि कोटि योजन युग फैली,
पृथ्वी जिसके चरण प्रमाण।
मध्य भाग में अन्तरिक्षको
रखता है जो उदर समान।
शीर्ष तुल्य जिसके है शोभित,
ये नक्षत्र लोक अभिराम
उस महान जगदीश्वर को है
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम।

"मैं तुमसे कहे देती हूँ, इसका परिणाम अच्छा न होगा, तुम अपनी नौकरी से हाथ धो बैठोगे।"

"और वह जो बेचारा अपनी जान से हाथ धो बैठेगा? उसका कुछ ख्याल नहीं है?"

"जैसे उसके करतूत, वैसा वह फल पायेगा, क्यों उसने ऐसा किया?"

"उसने कहाँ कुछ किया था? जब राजाजी की बहन ही उसपर आशिक़ हो गयी, तो वह क्या करता?"

"क्या करता?" मेरी माँ गुस्से से बोली – "उसे मना कर देता, राजा राजा है, नौकर नौकर है, फिर वह हिन्दू वह मुसलमान! इस का परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता था, इससे दोनों का धर्म भ्रष्ट होता है।"

"मुहब्बत धर्म नहीं देखती है।"

"तुम तो नास्तिक हो, मैं समझती थी तुम आर्य-समाजी हो। तुम एक मुसलमान को तो अपने घर में शरण न दोगे, मगर तुम तो आर्य-समाजियों से भी गये गुज़रे हो, तुम तो ठेठ नास्तिक हो।"

"दोस्ती भी तो कोई चीज है।"

"और धर्म कोई चीज नहीं है? अपने धर्म का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है। उसकी यह हिम्मत कि तुम्हारे राजा की बहन से प्यार करने चला है और तुम्हारी यह निर्लज्जता कि उसे घर में पनाह दे रहे हो।"

"जानकी!" मेरे बापने अपने बिस्तर से उठ कर जोर से मेरी माँ की बाँह पकड़ ली और उसे समझाते हुए बोले—

"तुम नहीं जानती हो, दोस्ती भी तो एक धर्म है, वह खुद एक मजहब है, उसके अपने सिद्धान्त हैं, जिस तरह तुम्हारे धर्म के सिद्धान्त हैं।"

मेरी माँ ने अपनी बाँह छुड़ाते हुए कहा — "होंगे! मगर इस का यह मतलब नहीं है कि तुम अपने धर्म के सिद्धान्तों को मेरे धर्म के सिद्धान्तों पर लादो, जिस मन्दिर में मैं तुम्हें बिना स्नान किये नहीं जाने देती थी उस मन्दिर में मैंने तुम्हारे मुसलमान दोस्त को छिपा लिया है, न जाने भगवान् मुझे इस की क्या सज़ा देंगे? क्यों कि मैंने उन का मन्दिर भ्रष्ट कर दिया है, जिन्दगी में जो काम मैं ने कभी नहीं किया था तुमने वह भी मुझसे करवा लिया।"

मेरी माँ रोने लगीं।

पिताजी उन्हें दिलासा देने लगे—"कुछ दिनों की बात है, इस के बाद जब मुआमला ज़रा ठंडा पड़ेगा, पुलिस और फ़ौज की दौड़ धूप कम होगी तो वह खुद ही हमारा घर छोड़ देगा और इस इलाके से भाग जायेगा, यहाँ रह कर तो उसकी जानको भी ख़तरा है।"
"उस की जान ही को नहीं तुम्हारी जान को भी खतरा है। यह मत भूलो कि तुम भी राजाजी के नौकर हो और नौकर होते हुए छिपकर उन से गद्दारी कर रहे हो, मैं अब तुम से ज़्यादा नहीं कहती, बस इतना कहती हूँ, अपने दोस्त से कह दो संक्रान्ति से पहले वह यहाँ से अपना मुँह काला कर जाये... संक्रान्ति के दिन मैं इस मन्दिर को अपने हाथों से गंगाजल से धोकर साफ़ करूँगी और मिश्रजी को बुलाकर इक्कीस दिन की कथा रखूँगी, यज्ञ करूँगी,





हवन करूँगी, प्रायश्चित्त का भोग इक्कीस ब्राम्हणों को खिलाऊँगी, तब जाके कहीं मेरे दिल को शान्ति मिलेगी। "

दूसरे कमरें में कुछ आहट सी हुई। मेरे पिताजी ने घबरा कर कहा — " आहिस्तः बोलो, आहिस्तः बोलो, कहीं वह सुन न ले। "

" सुन ले तो अच्छा है। " माँ और भी झल्ला के ऊँची आवाज में बोलीं।

" शिश्। " कहकर मेरे पिता ने मेरी माँ के मुँह पर हाथ रख दिया, फिर उन्होंने फूँक मारकर लैम्प बुझा दिया।

साथवाले कमरे में जो पूजा का कमरा था, जिसमें नियाज़ अहमद को छिपाया गया था, उस कमरे में फिर ज़रा-सी आहट हुई, फिर चारों तरफ़ खामोशी छा गई। इन दोनों कमरों के मध्य का दरवाजा दूसरी तरफ़ से बन्द था, रोशनदान ज़रा-सा खुला था। पिताजी ने माँ से कहा —

" कल सुबह इस रोशनदान के काँचपर स्याही फेर कर इसे भी बन्द कर देना। "

" बहुत अच्छा। " मेरी माँने कानाफ़ूसी में कहा। फिर वह सोने से पहले मुँह ही मुँह में कोई जप करने लगीं, यह उनका प्रतिदिन का नियम था।

दूसरे दिन मेरी माँ सब से पहले सुबह में उठ गयीं, अभी नौकर लोग सोये पड़े थे कि उन्होंने नियाज अहमद के लिए चाय और नाश्ते का सामान तैयार कर लिया और सब कुछ एक ट्रे में सजाकर पूजा के कमरे में ले गयीं, मगर फिर तुरन्त ही लौट आई। जल्दी-जल्दी बेडरूम में आकर उन्होंने मेरे पिताजी को जगाया और उन से कुछ कहा। दोनों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। मेरे पिता जल्दी-जल्दी बिस्तर से बाहर निकले और पायजामें का ईजारबंद खोंसते हुए बोले – " किधर ? कहाँ ? कैसे ? "

मेरी माँ बोलीं —" तुम खुद चल के देख लो। "

पिताजी भागे-भागे पूजा के कमरे में गये, मगर वहाँ कोई न था। पूजा के कमरे में नियाज़ अहमद कहीं न था, कमरे के पीछे की एक खिड़की खुली थी। रात के अन्धकार में वह खिड़की खोल कर कहीं फ़रार हो गया था।

उस दिन सुबह आठ बजे के लगभग क़िलानुमा थाने की सीढ़ियों के नीचे, कच्ची सड़क पर जो नदी को जाती थी नियाज अहमद की लाश पाई गई। किसी ने उसे मार कर उसकी लाश के चार टुकडे कर दिये थे और कोई जिन्दा या मुर्दा उसकी गिरफ्तारी का इनाम लेने के लिए भी न आया था।

मेरे पिता उस समय नहा धोकर कपड़े बदल कर नाश्ता कर रहे थे, जब अस्पताल के अर्दली ने उन्हें आकर इत्तिला दी कि थानेदार नियाज अहमद की लाश पोस्टमार्टम के लिए लाशघर में आ चुकी है। पिताजी ने दुखभरी नजरों से मेरी माँ की तरफ़ देखा

और माँ ने भयभीत और पश्चात्ताप से अपनी निगाहें झुका लीं। पिताजी नाश्ता खाये बिना कमरे से बाहर निकल गये और माँ के हाथ से चाय का प्याला गिर कर फ़र्श पर टूट गया और वह कुर्सी पर झुक कर रोने लगीं।

दो दिन तक तो मेरे पिताजी ने खाना नहीं खाया और कई दिन तक उन्होंने मेरी माँ से बात नहीं की। फिर संक्रान्ति हो गयी और मैं पहले के अनुसार सतनजे में तुला और मेरी कोरी धोती मिश्रजी को दे दी गयी और माँ मुझे गुरुद्वारे ले गयी। फिर गुरुद्वारे के बाहर के मंदिर में हम ने घण्टे बजाये और फिर हम वहाँसे शाह मुराद के मजार की तरफ चल दिये, लेकिन आज मेरी माँ बहुत उदास थीं और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद न जाने क्या ख्याल कर के अश्रुपूर्ण हो जाती थीं।

जब हम टक्की उतर कर शाह मुराद के मज़ार के पास पहुँचे तो क्या देखा कि मज़ार के क़रीब की सुनसान पगडंडी पर शाही महल की एक पालकी रखी है और उसके चारों तरफ चार कहार खड़े हैं।

मेरी माँ शाही डोली को देखकर वहीं ठिठुक गयीं, वह मुझे लेकर चखरी के एक पेड़ की ओट में हो गयीं और देर तक चुपचाप खड़ी रहीं। अन्त में उन्होंने मुझसे कानाफूसी में कहा—"तू बच्चा है, तुझे शाही महल के कहार जाने देंगे, जाके देखो तो सही मजार पर क्या हो रहा है?"

माँ वहीं चखरी के पेड़ की ओट में छिपी खड़ी रहीं, मैं उनकी आज्ञा पाते ही सरपट भागा और पाँव से कंकर उड़ाता, पत्थरों को टोकरें मारता हुआ मजार की तरफ़ दौड़ता हुआ चला गया, जिधर घनी बेरियों का झाड़ था। कहारों ने तो मुझ से कुछ नहीं कहा, लेकिन जर्रे ने मुझे दूर से देख लिया और उसने मुझे देखते ही इशारे से वहीं रुक जाने को कहा। मैं वहीं एक झाड़ी के करीब दुबक गया। मैंने समझा यह भी जर्रे का कोई नया खेल है। चुपकेसे जर्रा मेरे पास आकर धीरे से बोला—

"मज़ार पर कोई नहीं जा सकता इस वक्त।"

"क्यों?" मैंने धीरे से पूछा।

जर्रे ने मेरी बातका कोई उत्तर न दिया, इतना कहा— "मगर मैं तुम को ले चलूँगा।"

"कैसे?" मैंने फिर पूछा।

मगर जर्रे ने फिर मेरी बात का कोई जवाब न दिया, वह मुझे हाथ से पकड़कर सन्थे की झाड़ियों के पीछे-पीछे से घुटनों के बल चलकर, कहीं दौड़कर, कहीं दुबक कर बेरियों के झाड़ के अन्दर ले आया, वहाँपर हम दोनों दुबक कर बैठ गये और बेरियों की शाखें परे कर के देखने लगे।

चाचा रमजानी मज़ार के क़रीब बैठे थे, उन के सामने सुफ़ेद बुर्के में एक औरत खड़ी थी, उसने अपना बुर्का उल्टा नहीं दिया था बल्कि बुर्का पहने ही खड़ी थी।

"शाही महल की रानी होगी?" मैंने धीरेसे कहा और मेरी आँखें फटी-की-फटी रह गईं, क्योंकि हमारे यहाँ बुर्का सिर्फ़ मुसलमान स्त्रियाँ ही पहनती हैं और वह भी काला बुर्का पहनती हैं। सुफ़ेद बुर्का सिर्फ़ शाही महल की हिन्दू स्त्रियाँ पहनती हैं और वह भी सिर्फ़ वे स्त्रियाँ जो शाही परिवार से सम्बन्ध रखती हैं।

चाचा रमजानी की घिग्घी बँधी हुई थी और वह फटी-फटी निगाहों से सुफ़ेद बुर्केवाली स्त्री की तरफ़ देख रहा था और उसका माला वाला हाथ काँप रहा था।

बुर्केवाली औरत ने कड़े स्वर में उस से कहा—"और तुम मेरे यहाँ आने का किसी से जिक्र नहीं करोगे?"

रमज़ानी ने इन्कार में सर हिलाया।

"और तुम सब नजर नियाज दोगे?"

रमज़ानी ने हाँ में सर हिलाया।

"और तुम कब्र पर रोज दिया जलाओगे? फूल चढ़ाओगे? और वह सब काम करोगे जो इस सिलसिले में किये जाते हैं?"

रमज़ानी ने फिर हाँ का सर हिलाया।

सुफ़ेद बुर्केवाली औरत देर तक बुर्के के अंदर से रमज़ानी को घूरती रहीं, फिर बुर्के के एक कोने से दो तीन पतली नाजुक महीनसी उँगलियाँ पल भर के लिए बाहर निकालीं और फिर बुर्के में छुप गयीं, और सौ-सौ के कई नोट रमज़ानी की झोली में गिर पड़े।

रमज़ानी जल्दी-जल्दी से तस्वीह (माला) फेरने लगा।

"क़ब्र कहाँ है?" उस स्त्री ने उसी तरह कड़े स्वर में पूछा। चाचा रमजानी आँख के एक कोने से सिर्फ़ एक इशारा ही कर सका, मगर उस औरत ने सब कुछ समझ लिया और वह बड़े मजबूत कदमों से चलती हुई मज़ार की सीढ़ियाँ उतर कर कब्रस्तान में चली गयी, जहाँ एक कच्ची कब्र की तरफ़ चाचा रमजानी ने आँखसे इशारा किया था, अब मैं और जर्रा भी मुँह मोड़कर इधर उधर कब्रस्तान की तरफ़ देखने लगे, जिधर वह औरत गयी थी।

वह औरत उस कच्ची कब्र के करीब जाकर रुक गयी। देर तक वह वहीं चुपचाप खड़ी रही, फिर यकायक वह उस कब्रपर गिर पड़ी और उसके दोनों हाथ कब्रपर फैल गये और उन हाथों की उँगलियाँ कब्रपर इस तरह तड़पने लगीं, जिस तरह बहुत ही पतले पानी में मछलियाँ तड़पती हैं।

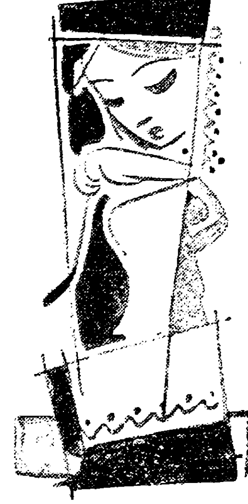
फिर वह उँगलियाँ भी शान्त हो गईं और यकायक बेरियों में गहरा सन्नाटा हो गया। मज़ार पर अँधेरा-सा हो गया। और चाचा रमजानी की माला के दाने काँपने लगे और मैं और जर्रा हैरत और डर से एक दूसरे का चेहरा देखने लगे।

एक लम्बे सन्नाटे के बाद वह स्त्री वहाँ से उठी, लेकिन अब उसके कदम लड़खड़ा रहे थे, और उसका सुफ़ेद बुर्का भूरी मिट्टी में सना हुआ था और वह तेज-तेज कदमों से चलती हुई कब्रसे पलट आयी। हाँफती-काँपती, दौड़ती-भागती हुई वह झाड़ियों, चट्टानों से उलझती हुई मज़ार के ऊपर की पगडंडी पर पहुँच गयी। और किसी से कुछ कहे बिना उस पालकी में बैठ गयी।

कहारों ने पालकी का पर्दा गिरा दिया और डोली उठाकर चल दिये और कुछ क्षणों में हमारी दृष्टिसे ओझल हो गये। •••

नारी जहाँ शील सहिष्णुता और करुणा की अजस्र स्रोत है वहाँ वह विद्रोह की ज्वालामुखी भी है। नारीके लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपोंके संघर्ष का पर्यवसान त्याग एवं करुणामें होता है जहाँ वह अपनी समस्त सीमाओंसे ऊपर उठकर एकदम वंदनीय बन जाती है।

प्रसाद की साहित्य-सृष्टि में नारी



—रतनलाल जोशी

प्रसादजी मूलतः नारी आत्मा के कवि हैं। नारी के अन्तर-प्रदेश का जितना सजीव और संश्लिष्ट चित्रण उन्होंने किया है वैसा इन पिछले पचास वर्षों में तो शायद ही कहीं मिले। नारी को अपने निरपेक्ष महत्व में व्यक्त करना उनकी समस्त साहित्य-साधना का मूलभूत मंतव्य प्रतीत होता है। उनके काव्य, उपन्यास, कहानी और नाटकों के विन्यास का प्राणसूत्र नारी ही है पुरुष का महत्व तो केवल अपेक्षाकृत ही है। नारी के नैसर्गिक महत्व की पूर्ति के हेतु ही उसकी सार्थकता है। पुरुष जड़ है और नारी चेतन। पुरुष में कर्मप्रेरणा का आवेग नहीं। वह आत्मभ्रांत है। नारी संचालिका शक्ति है। पुरुष को वह प्रेरणा देती है। जीवन के गौरव की अनुभूति जगाती है और उसे निश्चित पथ पर आगे बढाती है। प्रसादजी के नारी-चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यही है। उनके पुरुष पात्रों की व्यक्त रेखाओं को जोड़कर जो व्यक्तित्व हम बनाते हैं वह अपने अंतिम रूप में ओजहीन एवं अधूरा ही है। नारी के संबल के अभाव में उनका व्यक्तित्व अत्यंत दुर्बल और अस्थिर है; किन्तु नारी का व्यक्तित्व पुरुष से अधिक तेजस्वी एवं जाग्रत है। उस में जितनी व्यापकता है उतनी ही विविधता भी। प्रसादजी की नारी भीरु, संकीर्ण-हृदया एवं आत्मनिष्ठ नहीं है। वह अपने सशक्त व्यक्तित्व की ममत्वमयी परिधि में पुरुष को लक्ष्यभ्रांत एवं पतित होने से बचाने की चेष्टा करती है। सहिष्णुता के साथ उस में स्वाभिमान भी कम नहीं। उपन्यासों की अपेक्षा नाटकों में प्रसादजी का नारी-चित्रण अपेक्षाकृत अधिक निखरा हुआ है।

प्रसादजी मूलतः कवि थे। उनका गद्य भी काव्य की आत्मा का ही स्पर्श करता हुआ चलता है। यही कारण है कि उपन्यासकार के रूप में उन्हें वांछित सफलता नहीं मिली है। नाटक और काव्य ही अंततः उनकी अभिव्यक्ति के अभीष्ट माध्यम प्रमाणित हुए। नारी-चरित्र-चित्रण की विशेषता का नारी के अंतःकरण के साथ विशेष सामीप्य है। नारी-विषय स्वयं एक काव्य है अत्यंत अगम्य और रहस्यमय।

प्रणय और निराशा का संघर्ष प्रसादजी का मूल विषय है। उनके पुरुष पात्रों में इस संघर्ष के उद्दीप्त चित्र नहीं मिलते। उनके पुरुष पात्र जीवन से उदासीन अस्पष्ट दार्शनिक ही प्रतीत होते हैं। नारी पात्रों की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। वे अनुरक्ति की प्रतिमूर्तियाँ हैं। प्रेम और निराशा का जितना व्यापक द्वंद्व उनके चित्रण में व्यक्त मिलता है उसका शतांश भी पुरुष चरित्र में नहीं मिलता। प्रसादजी की नारी में जहाँ समर्पण का दैन्य नहीं है वहाँ उस में आत्मघात का मर्मविस्फोटक भी नहीं है। प्रेम का नैराश्य अंततः विषाद में रूपांतरित नहीं होता है। प्रसादजी विषाद के चित्रकार नहीं हैं। विषाद उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं पड़ता है। अतः उन्होंने इस अंतर्द्वंद्व के आवेग को एक सर्वथा नवीन दिशा में प्रवृत्त कर दिया है वह गंतव्य है करुणा का। प्रणय के नैराश्य में डूबी प्रसादजीकी नारी अपने समस्त आवेगों का पर्यवसान करुणा में कर देती है। यही उसकी अंतिम गति है।

युग निर्माता

नारी-आत्मा के चित्रण की दृष्टि से हिंदी-साहित्य संस्कृत-साहित्य की अपेक्षा अभी तक भी अपूर्व ही है। वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति ने नारी के व्यक्तित्व का जो अनुपम उद्घाटन अपने ग्रंथों में किया है उसकी परम्परा उनके बाद अकस्मात् अवरुद्ध हो गयी है। अशांत और निरन्तर संघर्षमय वातावरण से उत्पन्न अतल सामाजिक

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अवसाद में पली हिंदी को तो सदियों तक यह अवकाश ही नहीं मिला कि वह क्षण भर रुक कर मानव–हृदय की सूक्ष्म ग्रंथियों का अवलोकन करे। हिंदी की इस इतिहास–परम्परा में जब हम प्रसादजी की चरित्र-प्रधान कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो उनका महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य और आधुनिक हिन्दी-साहित्य के बीच वे सेतु बांधने का दायित्व अनायास ही अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं। अपने समय की उथली भावुकता और शुष्क इतिवृत्त से ऊपर उठकर उन्होंने मानव-हृदय के व्यापक तत्वों की मार्मिक झलक देखी और जहाँ नारी-चरित्र-सृष्टि का प्रश्न है वहाँ तो वे युग–निर्माता ही हैं। साहित्य के धरातल पर जो सांस्कृतिक धारा अभी तक सूखी पड़ी थी प्रसादजी ने अपनी तपस्या से उसे फिर अक्षय सलिला बना दिया। उनकी नारी जहाँ शील, सहिष्णुता और करुणा की अजस्र स्रोत है वहाँ वह विद्रोह की ज्वालामुखी भी है। नारीके लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों के संघर्ष का पर्यवसान त्याग एवं करुणा में होता है जहाँ वह अपनी समस्त सीमाओं से ऊपर उठकर एकदम वंदनीय बन जाती है। प्रेम का मांगलीकरण करके वह और भी तेजस्वी हो उठती है।

विश्वव्यापी करुणा

भारतीय संस्कृति में नारी चिन्मयी आद्या शक्ति है। उसके अलौकिक रूप की सर्वत्र पूजा होती है। साहित्य भी इसका अपवाद नहीं रहा। आदि कवि वाल्मीकि की रामकथा राम–राज्याभिषेक पर समाप्त हो सकती थी किन्तु इससे राम की जीवन परिचालिका शक्ति सीता का चरित्र अविकसित ही रह जाता। वाल्मीकि के बाद भवभूति तो सर्वांशतः नारी आत्मा के ही कलाकार थे। नारी अंतःकरण का परिपूर्ण चित्र देने के लिए ही उन्होंने उत्तर रामचरित नाटक की रचना की थी। वासंती एवं सीता के रूप में भवभूति ने नारी हृदय के दोनों पक्षों को बड़ी कुशलता से मूर्तिमान किया है। यहाँ भवभूति और प्रसादजी की पथ–रेखाएँ बिलकुल समानांतर प्रतीत होती हैं। भवभूति की सीता के साथ प्रसाद की देवसेना और कामायनी का बड़ा सादृश्य है। यही कारण

अनुक्रमणिका

है कि प्रसाद की कृतियाँ पढ़ते समय सहसा भवभूति का स्मरण हो आता है। भवभूति की सीता की भाँति देवसेना भी मान, सहिष्णुता और आत्मत्याग की तपोपुंज प्रतिमा है। उसके अधरों पर क्रोध और विषाद नहीं। जहाँ उसमें आत्मा का मूक क्रंदन है वहाँ पग पग पर उसका आंतरिक संकल्प एवं विश्वास की शक्ति भी उत्तरोत्तर निखरती जाती है। भवभूति की सीता का जब हम चरम विकसित रूप देखते हैं तो हमारे अंतर्चक्षु उसके अगाध औदार्य और त्याग की झांकी से चकित रह जाते हैं। प्रसाद की देवसेना और मल्लिका के चरित्रों में भी हमें विश्वव्यापी करुणा और अन्य उदात्त भावनाओं का ऐसा ही प्रखर प्रकाश मिलता है। अपने सर्वोच्च मूल्य में नारी यहाँ मूर्तिमान हो गयी है।

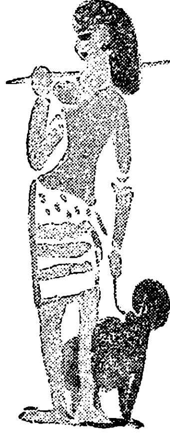
प्रसादजी के पुरुष-पात्र कर्तव्य प्रेरणा और दायित्व-निर्वाह की दृष्टि से जितने क्षीण प्राण हैं उनके नारी पात्र अपने स्वतंत्र चिंतन और संकल्प में उतने ही प्रखर और प्राणवान् हैं। उनके पुरुष पात्रों के सम्मुख जीवन की अनिवार्य जटिलतायें जब आती हैं तो वे थोथी दार्शनिकता का आवरण ओढ-कर पलायन का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। उनका आंतरिक पौरु बाह्य विश्व में अपनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए कोई आग्रह नहीं दिखलाता। चन्द्रगुप्त में भी कुछ आत्म-विश्वास की चिनगारियाँ दृष्टिगत नहीं होती हैं। सामने के प्रश्नों के समुचित उत्तर देने की क्षमता और तत्परता का पुरुषों के भीतर जो अक्षम्य अभाव प्रसादजी के चरित्र चित्रण में है उससे अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। फलतः उनकी कृतियों में मानवीय सम्बन्धों का जो निराला वातावरण मिलता है वह असाधारण रूप से उलझा हुआ प्रतीत होता है और इसीलिए प्रत्यक्षतः कोई समस्या न होते हुए भी सारी कृति अत्यन्त गहरी समस्या में उलझ गयी है। यह वस्तुस्थिति नारी चरित्र-विकास के अधिक अनुकूल है और प्रसादजी की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी इसी ओर रहती है। इसी से उनकी कृतियाँ नायक-प्रधान न होकर नायिका-प्रधान हैं क्योंकि पुरुष पात्रों के संतुलन में उनके नारी पात्र ही अपेक्षाकृत अधिक दृढ़, आत्म प्रेरित और स्थिर निश्चयवाले हैं। पुरुष की कर्तव्य-हीनता से उत्पन्न समस्याओं से नारी जूझती है और पुरुष को उनके समाधान की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि प्रसादजी की नारी और रहस्यात्मकता परस्पर पर्यायवाची हो गये हैं।

संसार के क़रीब क़रीब सभी प्रसिद्ध कवियों ने नारी-आत्मा का इसी प्रकार चरित्र विधान किया है। दांते ने अपने महाकाव्य की निर्देशिका शक्ति अपनी प्रेयसी बीटिस को ही माना है। दांते की मूल प्रेरक शक्ति नारी ही है। फौस्ट में नारी की आत्मा की उपासना का बड़ा सुन्दर प्रमाण मिलता है। मारग्रेट की आन्तरिक प्रेरणायें ही फौस्ट का परित्राण करती हैं। ब्राउनिंग की पम्पिलिया भी एक ऐसा ही उदाहरण है। जार्ज इलियट के चरित्र में भी हमें नारी हृदय की अत्यंत उदार अनुभूतियों के दर्शन होते हैं। प्रसादजी की कामायनी भी विश्व-साहित्य के इन्हीं अमर

नारी-चरित्रों की समता का चरित्र है। जीवन के विराट् सत्य से भयभीत मनु का परित्राण कामायनी ही करती है। समरस अखंड आनंद के प्रतीक शिव तक पहुँचने के लिए मनु नारी का ही सहारा माँगते हैं :

यह क्या हमको बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिस में जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल !'

•••



एक गीत

—महेन्द्र भटनागर

आँगन-आँगन दीप जलाओ,
दीपों का त्यौहार मनाओ !

स्वर्णिम आभा घर-घर बिखरे
मनहर आनन, कन-कन निखरे
ज्योतिर्मय सागर लहराये
काली-काली रात सजाओ !
आँगन-आँगन दीप जलाओ,
दीपों का त्यौहार मनाओ !

निशि अलकों में भर-भर रोली
नाचें जगमग किरनें भोली
आलोक घटा घिर-घिर आये
सारी सुधबुध भूल नहाओ !
आँगन-आँगन दीप जलाओ,
दीपों का त्यौहार मनाओ !

हर उर अभिनव नेह भरा हो
युग-युग रोई धन्य धरा हो,
चलो सुहागिन, थाल उठाओ
नभ-गंगा में दीप बहाओ !
आँगन-आँगन दीप जलाओ,
दीपों का त्यौहार मनाओ !



उन दोनों के मनकी चमकती हुई धूप में जीवन ने सैकडों बादलों को चीर डाला था। पर फिर एक दिन ऐसा आया जब मौत का अंधकार इस प्रकाश के पीछे पड़ गया।...

एक सीटी तो बजा..

अमृता प्रीतम

सुंदर और पारो का विवाह हुए कितने ही वर्ष हो गये थे, पर प्यार का पता नहीं यह कैसी धूप उनके मनों में चमकती थी कि वे किसी भी उलाहने का बादल अपने शरीर पर सहन नहीं करते थे। बादल कभी गहरे भी हो जाते, पर धूप के शरीर को पता नहीं कैसी जलन लग जाती कि वह हाथ-पाँव मार कर उन बादलों को फाड़ देती।

बादल छा जाने के क्षणों में भी न उनके शब्द रूठते और न कोई काम रुकता। सुन्दर अपने खेतों में काम करता हुआ पारो के पाँवों की आहट लेता रहता और पारो उस दिन के भोजन में खास तौर पर कोई अचार, मुरब्बा रखकर सुन्दर के खेतों में पहुँच जाती

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसको रोटी खानी है खा ले।"

अनुक्रमणिका

शराब की कड़वाहट और शराब का नशा, दोनों एक बारगी सुन्दर के मुँह में घुल जाते।

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसे हमें लस्सी पिलानी है पिला दे।" आगे से सुन्दर कहता।

यह गुस्सा कभी लम्बा भी हो जाता। रात पड़ जाती। "न हम किसी से बोलते, न कोई हमें बुलाये, हमने खटिया डाल दी है, जिसको सोना है, सो जाये।" पारो कहती।

"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसको हमारे पांव दबाने हैं, दबा दे।" सुन्दर कहता।

और इस प्रकार न कभी रोटी का मुख मैला होता, न किसी बिछौने की चद्दर में सिलवट पड़ती और न कभी टांगें दबाने का नियम टूटता। —"न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये, जिसको हमारे पास......" कहने का भी समय हो जाता।

ऐसे शिखर पर खड़ा प्यार बस जरा-सा ध्यान चूका नहीं कि धक्का लगा नहीं।

पड़ोसियों के घर एक के बाद एक जन्मी दो लड़कियाँ थीं। बिल्कुल ही बच्चियाँ। एक के पास लाल रंग की कमीज थी और दूसरी के पास हरे रंग की। सुन्दर कभी इन बच्चियों से प्यार करता तो कहता, "यह है मेरी लाल मिरच, और यह है मेरी हरी मिरच।

सुनकर पारो के मुख से निकल जाता—"मिरचें ज्यादा न खाना, मुँह जलेगा..."

सुन्दर अपनी घोड़ी के शरीर पर हाथ फिराता तो पारो के शरीर में जैसे ईर्ष्या की जलन शुरू हो जाती... "तुम्हें किसी औरत से नहीं, किसी घोड़ी से ब्याह करना था।" और शिखर पर खड़े प्यार को, छोटा-सा धक्का लग जाता। पर कभी कोई धक्का इससे बड़ा नहीं हुआ था... "न हम किसी से बोलते हैं, न कोई हमें बुलाये...।"

विवाह के शरीर पर वर्षों की तह जम गई, पर सुन्दर और पारो के यहाँ कोई बच्चा न हुआ। शाम के समय अगर सुन्दर खटिया की अदवाइन कस रहा होता तो कोई पड़ोसन आवाज देती, "रात के समय अदवाइन नहीं कसा करते, लड़कियाँ जन्म लेती हैं..." और आगे से कभी मजाक में सुन्दर कह देता, "भाभी, तुम लड़की कहती हो, हमारे घर तो दही भी नहीं जमता..." और इस प्रकार की हँसी पारो के मुँह में नीम घोल देती। बात फिर वहीं पहुँच जाती, "न हम किसी से बोलते हैं, न कोई..."

अन्त में बादल फट जाते, पारो के मन की धूप और ज्यादा चमकती। एक लोकगीत की दो पंक्तियाँ रह-रह कर पारो के होठों को छेड़तीं... "मोड़ पर आकर भूल गई हूँ, एक सीटी तो बजा।"

"तू बड़ी जालिम है।"

"तू बड़ा जालिम है!"

"देख, तू मुझे जालिम कहती है और मैं तुझे। हमें सलाह करके एक ही बात कहनी चाहिये।"

"अच्छा, हम दोनों कहते हैं जालिम तू..."

और दोनों जब तू-तू कहने लगते तो उन्हें 'मैं' भूल जाती।

रोज मोड़ों पर भूलती और किसी को सीटी बजाने के लिए कहती पारो एक दिन मोड़ पर सीटीवाली बात कहना भूल गई। उस दिन कहीं सुन्दर ने कह दिया, "लोग परदेस जाकर रुपयों की थैलियाँ भर लाते हैं, अगर मैं भी इस बार रामेशाह के सिवान चला जाऊँ..."

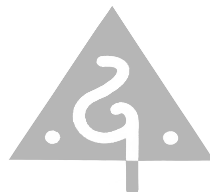
और जब तक पारो के शब्द खोये रहे जब तक सुन्दर ने यह न कहा, "तेरी जगह अगर और औरत होती, सीधी सादी, ऐसी जादूगरनी नहीं, तो कहती कि जा कमा कर ला, कुछ पशु और खरीदेंगे।"

और पारो चमक कर बोली, "कुछ पशु और खरीदेंगे और फिर खुद पशुओं में पशुओं की तरह बँध जायेंगे..."

सुन्दर और पारो के मन की चमकती हुई धूप में जीवन ने सैंकड़ों बादलों को चीर डाला था। पर फिर एक दिन ऐसा आया, जब मौत का अन्धकार इस प्रकाश के पीछे पड़ गया। पारो बीमार हो गई। गाँव का वैद्य दवाइयाँ देता था। पारो कड़वी दवाइयों से ऊब गई। जब कभी दवाई का घूँट अन्दर उलट कर मुँह फेर लेती तो वैद्य नाराज होता। सुन्दर एक विश्वास से कहता—"वैद्य जी, बाकी की दवाई मुझे पिला दो, इसे आराम आ जायेगा।" वैद्य हंस पड़ता।

पारो के अन्दर गयी हुई दवाइयाँ और सुन्दर के अन्दर पल रहा विश्वास—दोनों हार गये। जीवन का प्रकाश पल-पल घटता जाता था; पर पारो की अंतिम दृष्टि में भी प्यार की धूप उसी प्रकार चमक रही थी।—और अन्त में चमकती हुई धूप में भी जीवन का प्रकाश समाप्त हो गया।





अनुक्रमणिका



बिना आकाश के ?

— नरेन्द्र शर्मा

क्या तुम्हारा दम नहीं घुटता बिना आकाश के ?

घोर पार्थिव बन रहे हो किसलिए हर श्वास में ?
ले रही है श्वास पृथ्वी भी विशद आकाश में !
यंत्रवत् तुम कर्मरत हो क्यों बिना अवकाश के ?

क्षितिज के बंदी, तुम्हें क्या बस यही उपलब्ध है ?
बंद दोनों मुट्ठियों में व्यक्तिगत प्रारब्ध है !
तृप्त हो क्यों भूल कर तुम कल्प अपनी प्यास के ?

कमल – दल पर हिमकनी के चिह्न को पहचान लो,
खोल कर मुट्ठी हथेली पर गगन का दान लो,
जगमगाएँ पँखरियों पर गीत फिर हिमहास के !

गई अँधियारी निशा, दृग दिशा के खुलने लगे !
ज्योति – बूँदों से तिमिर के दाग़ सब धुलने लगे !
नयन मूँदे जियोगे कब तलक, पुत्र प्रकाश के ?

धरा को कर सके धारण इसलिए आकाश है,
पाँच प्राणों के अधीश्वर का वहाँ आवास है;
दूर जो कुछ है, उसी से साज हैं सब पास के !

और फिर अकेले रह गये सुन्दर के शरीर पर वर्ष जम गये। कोई बेटा होता, लोग सुन्दर को उसका पिता कह कर बुलाते। सुन्दर के जवान भतीजे उसे ताऊ कहते थे। लोगों ने सुन्दर के बुढ़ापे में आदर मिलाने के लिये उसे ताऊ कहना शुरु कर दिया।

सुन्दर की दृष्टि पारो के मुख पर से कभी नहीं हटी थी, पर जब पारो चल बसी थी, सुन्दर की दृष्टि कभी किसी स्त्री के मुख की ओर नहीं गई थी।...वह किसी भी मोड़ पर नहीं भूला था।

सुन्दर के भतीजे का विवाह था। किसी की मदमाती जवानी ने सोचा–"इस बार अगर शहर से कोई गाने वाली ले आयें..."

और गाँव में कितनी ही और मदमाती जवानियाँ थीं। इस विचार को रंग चढ़ता गया और अन्त में तीन चार युवक प्रबन्ध करने के लिए शहर चल दिये। सुन्दर के जिम्मे भी शहर से कुछ चीजें खरीदने का काम लगा हुआ था। वह भी उनके साथ हो लिया।

दूसरी रात जब युवक पता लगाकर गाने वाली की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे तो ताऊ भी साथ था। वे हँस कर कहने लगे–"ताऊ, तुम यहाँ नीचे ही रहो, ये बड़ी जालिम होती हैं, दीन ईमान छीन लेती हैं ..."

"अरे छोड़ो।" ताऊ हँसा।

इसके दूसरे दिन गाँव में महफ़िल लगी। शहर की 'जीनत' पता नहीं गाँव की कितनी आँखों की रौनक बनी। रात आधी से ऊपर बीत गई। "वाह ... वाह ..." के साथ रुपयों की वर्षा गाने की आग को ठंडा नहीं होने दे रही थी।

अचानक किसी ने देखा। ताऊ सुन्दर सबसे पीछे उस गाने वाली की ओर पीठ किये बैठा हुआ था।

"क्यों ताऊ क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं ..."

"फिर भी, आख़िर हुआ क्या ?"

"कुछ नहीं..."

"यह तो ठीक नहीं, मैं तो पूछ कर ही रहूँगा।"

"देख न, मुझे चक्कर ही चक्कर आ रहे हैं !"

"कुशल तो है ? किसी को बुलाऊँ ?"

"नहीं, यह बात नहीं !"

"फिर ?"

"तू कहता था न, ये बड़ी जालिम होती हैं, दीन ईमान छीन लेती हैं। शायद मेरा–दीन ईमान ही छीना जाने वाला है..."

सुनकर उस व्यक्ति की हँसी बस में नहीं आ रही थी। वह सुन्दर के पास बैठा बेतहाशा हँसे जा रहा था।

कुछ समय और बीता। वह व्यक्ति घूम फिर कर फिर सुन्दर के पास आया। —"ताऊ, तुम भी कोई फरमाइश करो–कोई रुपया उसके सिर पर से न्यौछावर करो...इधर मुँह तो फिराओ..." और वह ताऊ को जबरदस्ती गा रही जीनत के सामने ले गया।

बूढ़े सुन्दर की आँखों में जवान पारो का पता नहीं कौन–सा रूप काँपा, कि उसने एक नहीं, इकट्ठे पांच रुपये जीनत की ओर बढ़ा दिये।

"तूने बहुत गाने गाये हैं जीनत। एक मेरे मन का गाना भी गा दे।"

"कहो ताऊ। एक नहीं दस गा दूँगी।" जीनत ने रुपयों के बदले हँसी लौटा कर कहा।

"एक ही...बस एक ही...मैं मोड़ पर आकर भूल गई हूँ, एक सीटी तो बजा...।" किसी मोड़ पर भूल गये सुन्दर को अपने कानों में पारो की सीटी सुनाई दे रही थी और उसकी बूढ़ी आँखों में जवान आँसू काँप रहे थे।

•••

स्वतंत्रता ही पक्षियों का प्राण है। पिंजडे के पक्षी को देखना निर्जीव पक्षियों के चित्र देखने जैसा है। इसीलिये पक्षी हर हमेशा आसमानके सर्वोच्च तथा स्वच्छंद वातावरण में विहार करते हैं, और शायद यही कारण है कि ये पक्षी शुद्ध व निर्मल मन के मनुष्यको बिलकुल ठीक पहचानते हैं।



जिसे पखेरू निज कहता

—अनन्त काणेकर

साहित्यकारोंकी जानकारी देनेवाली एक मासिक पत्रिका के प्रकाशकने कुछ दिन पूर्व मेरे पास एक प्रश्नपत्रिका भेजी थी। उस प्रश्नपत्रिकामेंसे 'आपका जन्म कब हुआ ?' 'आपकी शैक्षणिक योग्यता क्या है ?' इन सभी प्रश्नोंके उत्तर मैंने तुरंत ही लिख डाले पर 'आपका कोई विशेष शौक' — इस प्रश्नकी ओर जब मैं मुड़ा तब मेरा हाथ रुक-सा गया। किसी को डाक-टिकटें करनेका शौक होता है तो किसीको पुराने सिक्के जमा करनेका। किसी को विविध प्रकार के बेंत खरीदकर रखनेका शौक तो किसीको पुरानी अप्राप्य पुस्तकोंको जमा करनेका। यों देखा जाय तो मेरा खास कोई शौक है ही नहीं। हाथ की पेन्सिल से सर खुजलाते सोचने लगा कि लिखूँ भी तो क्या लिखूँ ? 'मुझे किसी प्रकार का शौक नहीं है।' यही लिखनेका इरादा कर रहा था कि इतनेमें दो चिड़ियाँ चहचहाती मेरे टेबलके सामने की खिड़कीमें आयीं। मेरी नजर उनकी ओर उठी ही नहीं कि उन्होंने चहचहाना बंद कर दिया। मेरे कमरेकी दीवारमें एक घड़ी टँगी हुई है। उसी दीवार और घड़ी के बीच जो खाली जगह है, उसमें चिड़ियाँ हमेशा अपने घोंसले बनाती हैं। तिनुका, घास, सूतके टुकड़े, रुई के रेशे,–जो कुछ मिले, उन्हें चोंचोंमें भरकर वह नर और मादा पक्षी यहाँ आ रहे थे और न जाने किस के लिए जोर जोर से झगड़ते भी थे। पर खिड़कीसे अंदर प्रवेश करते समय मुझे देखते ही उनका झगड़ा थम गया। किंतु एक की चोंचसे एक तिनका मुझसे करीब दो-तीन हाथकी दूरीपर गिरा। उन दोनोंने उस तिनके की ओर और फिर मेरी ओर उलट-पलटकर निहोरा और आपसमें वे दोनों अपनी बोलीमें कुछ बोलने लगे थे। कदाचित् मेरे ही बारेमें उनमें कुछ गंभीर चर्चा चली होगी।

नर पक्षीने कहा होगा,– "कूदकर, झट ले लूँगा वह तिनका ! शायद वह कुछ करेगा नहीं !"

"नहीं जी ! क्या भरोसा उस मुएका। माथेपर कुछ पटक भी दे। वह तिनका भी क्या है ? उसके खातिर इतना खतरा क्योंकर मोल लें ? तिनके तो और चाहे जितने मिल सकेंगे हमको !" मादा पक्षी कहती होगी।

आपस में कुछ बोले हां, उन का कुछ फ़ैसला भी हुआ हो मुझपर भरोसा रखने के बारे में या चाहे मादा के कहनेपर ध्यान न देने का नर पक्षीने सोचा हो, तथापि झट वह नीचे आया और उस तिनके को उठाकर घड़ी की ओर उड़ गया। उसके पीछे चहचहाती हुई मादा भी गयी।

मैं शांत चित्तसे आपनी जगह से हिले-डुले बिना यह सब देख रहा था और एक प्रकार के निर्मल आनंदमें मैं डूब गया था। कुछ समय तक वह काग़ज, वे प्रश्न सब कुछ भूल गया था मैं। चिड़ियोंकी ओर देखते रहने में मुझे ऐसा ही आनंद मिलता है। ये चिड़ियाँ ही क्यों, हर प्रकार के सुंदर पक्षी मुझे भाते हैं। उन्हें जी भर के देखने का मुझे बड़ा शौक है, पर बम्बई में दूसरे पक्षी तो ज्यादा नहीं हैं। इसलिये मैं इन चिड़ियों को ही बैठे-बैठे देखा करता हूँ, बस ! इतना ही करने में जो मुझे निस्वार्थ और निर्मल आनंद मिलता है, उसे ही शौक कहा जा सकता हो तो "पक्षियोंकी ओर देखनेका मुझे बड़ा शौक है" यही कबूल करना पड़ेगा। शौक सुन्दर-सुन्दर पक्षी देखने

श्री. अनंत काणेकर :

आपके नामसे दीपावली के रसज्ञ पाठक अरसे से परिचित हैं। आप कविताएं तथा नाटक भी लिखते हैं। आप की प्रवास-वर्णन लिखने की शैली अनूठी है। आपकी भाषा ओजपूर्ण और प्रभावी होती है।

अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



का। इस प्रकार उत्तर स्वरूप उस प्रश्न पत्रिकामें झट लिख दिया।

सचमुच मुझे यह शौक़ है। छोटे बच्चेको गुड़ियाकी दुकानें देखने में जो आनंद होता है, वही आनंद मुझे इसमें मिलता है। तब मैं कहाँ हूँ ? लोग क्या कहेंगे ? इसकी मैं तनिक भी परवाह नहीं करता। परसों सार्वजनिक वाचनालय के द्वारपर मैं खड़ा था। दुपहर का समय था। वह भवन आम रास्ते पर ही है। अतः बहुत लोग उस ओर से आते-जाते थे। इतनेमें भिन्न-भिन्न रंगके छोटे-छोटे पक्षियों के सात आठ पिंजड़ोंको ले जानेवाला पक्षी-विक्रेता गुजरते दिखाई दिया। लाल पेट, भूरी देह और काली चोंचवाले पक्षियोंको एक पिंजड़ेमें, रेशमी जैसी नीली देहपर चितकबरी बूँदोंवाले पक्षियोंको दूसरेमें और सुनहले अंग और गुलाबी रंगकी चोंचवाले बहुतेरे छोटे-मोटे पक्षियोंको अगल-अलग पिंजरेमें उसने रखा था। उसे बुलाकर इनकी कीमत वगैरह पूछकर न खरीदूँगा तो वह सब लोगोंके सामने मुझे गालियाँ बकता चला जायेगा, यह भली भाँति जानते हुए भी मैंने उसे बुलाया। दो–चार गालियाँ भले ही दे उन पक्षियोंको जी भर देखनेका सौभाग्य तो मिलेगा। सौभाग्यवश वह आदमी भला ही निकला। क्योंकि सबका दाम पूछकर मैंने जब कहा – "तुम तो कीमत बहुत ज़्यादा कहते हो !" तब वह चुपचाप चला गया।

ऐसे सुंदर पक्षियोंको जब मैं देखता हूँ तो उन्हें घरमें, पिंजड़ेमें ला रखनेका हमेशा मोह होता है चाहे उसे खरीदनेमें जो भी दाम देना पड़े। परंतु मैं शुक्राचार्यके मनोनिग्रह के समान हमेशा यह मोह टाला करता हूँ। मन चाहता है कि उन्हें पिंजड़ेमें रखकर देखता रहूँ। पर पिंजड़ेका बन्द पक्षी यह पक्षी ही नहीं। स्वतंत्रता ही पक्षियोंका प्राण है। पिंजड़े के पक्षीको देखना निर्जीव पक्षियोंके चित्र देखने जैसा ही है। पक्षियोंके रंग और रूप निरखने में आनंद है। पर वास्तविक आनंद उनको आकाशमें स्वच्छंदता से अपने रंगबिरंगी पंखोंसे उड़ान भरते हुए देखने में और हरे–पीले पत्रों के बीचमेंसे विचरण करते समय उनकी चहकार सुननेमें, स्वच्छंदतासे उनकी आँख-मिचौनीका खेल देखनेमें है।

स्वच्छंदतासे विचरनेवाले तथा सदा आनंदमें निमग्न छोटे बालकोंको देखनेमें मुझे जो आनंद होता है उससे दुगुना आनंद पेड़-पौधों के बीचमें अठखेलियाँ करते घूमनेवाले पक्षियों को देखकर होता है। बच्चे कभी रोते हैं, चिल्लाते हैं, दुखी दीख पड़ते हैं लेकिन पक्षी हरहमेशा खुश नज़र आते हैं। रोनेवाले, आहें भरनेवाले पक्षी को



अथाह चाह

—श्रीरञ्जन सूरिदेव

उनकी चाह अथाह बहुत है !
घूँघट में तिरती आँखों में
मधु का मदिर प्रवाह बहुत है !

पनघट की ठंडी छाया में
चंचल अंचल का मृदु नर्त्तन;
नर्त्तन में उमगी आशाका
उभरा भरा-भरा-सा यौवन;
यौवन में पलती साधों में
सिहरन-भरा उछाह बहुत है।

पलकों के भींगे कूलों पर
सुधिकी डरी-डरी-सी थिरकन
थिरकन में सजते सपनों से
खुल-खुल जाते मन के बन्धन;
बन्धन में सिमटी साँसों में
तरल प्रीति की छाँह बहुत है !

रिसती पीड़ा में घुलते-से
लाज-भरे भावों का गोपन;
गोपित भावों में घावों का
तीखा-तीखा-सा परिदंशन;
दंशन से दुखती नस-नस में
मीठा-मीठा दाह बहुत है !

कभी किसीने देखा भी है ? मुझे तो याद नहीं आती कि रोनेवाले पक्षीको कहीं देखा हो। और एक बात है। बालकोंको देखते-देखते एक विचार दिलको छुए बगैर नहीं रहता कि इनका बचपना अभी खत्म होगा, ये बडे होंगे, प्रौढ़ होंगे। इनका नटखटपन इनकी मासूमियत अभी छोड़ जायेगी इन्हें ! पर पक्षियों को देखते हुए ये विचार ही नहीं उठते। पक्षी इसका मतलब ही मानों चिर–यौवन। 'बूढा पक्षी' यह शब्द–प्रयोग ही नहीं जँचता। पक्षी बूढ़ा कभी होता ही नहीं, वह हमेशा 'तरुण' ही रहता है वर्ना उसका अस्तित्व ही नहीं होगा।

पक्षी हर हमेशा आसमानके सर्वोच्च तथा स्वतंत्र वातावरणमें विहार करते हैं, शायद यही कारण है कि ये पक्षी शुद्ध व निर्मल मनके मनुष्यको बिल्कुल ठीक पहचानते हैं। तिलकजीकी उग्रता के बारेमें मैंने बहुत कहानियाँ सुनी हैं। चायको कभी स्पर्श न करनेवाले एक सजन तिलकजी से मिलने आये थे। बातें करते-करते तिलकजी ने नौकर से चायके दो प्याले लाने के लिए कहा। 'मैं चाय नहीं पीता' तिलकजी के सम्मुख यह कहनेका साहस उस सजनको नहीं हुआ और वह चुपचाप पी गये। तिलकजी के उग्र, वज्रकठोर व्यक्तित्वके बारेमें लोग भले ही कुछ कहें पर तिलकजीका अंतकरण कुसुम से भी मृदु था। यह निस्सन्देह मैं कह सकता हूँ। इसके लिए दूसरा कुछ सबूत मुझे नहीं चाहिये। मेरा सबूत निर्विवाद है। पक्षियोंको तिलकजीके बारेमें किसी प्रकारका भय नहीं था। वे निस्संकोच तिलकजीके कंधेपर खेलते थे। मांडले के किलेमें तिलकजी राजबन्दी के नाते रखे गये थे। वहाँकी मधुर स्मृति उनके रसोइयेकी कही हुई है। वह स्मृति मेरे दिलमें हमेशा गुदगुदी पैदा करती है। तिलकजी तथा रसोइये के लिए जेल-अधिकारियों से अनाज मिलता था। उसमेंसे बहुत-सा अनाज बचता था। वह अनाज, भोजन करते समय तिलकजी उन चिड़ियों को दे देते थे। कितने ही पक्षी तिलकजी के इर्दगिर्द उन चावलों को चुगने आते। अचरजकी बात तो यह कि लोगोंको बहुत उग्र व वज्रकठोर दीखने वाले इस महापुरुष के कन्धोंपर वे पक्षी निर्भय हो खेलते थे, नाचते थे। रसोइया तो तिलकजीको महाराज कहता था। उसे वे देवपुरुष लगते थे। लेकिन एक दिन तिलकजी के भोजन करते समय जेल में युरोपियन अधिकारी आया और तिलकजी के अंगपर मजे में नाचने वाले उन पक्षियों को देखकर अश्चर्य-चकित हो गया। 'यह क्या मि. तिलक।' उसने कहा ! 'हम उन्हें खाते नहीं तो उन्हें हमसे काहे का भय ?' तिलकजीने गंभीरता से उत्तर दिया।

तिलकजीकी विश्व-विख्यात विद्वत्ता, उनका अप्रतिम धैर्य, उनकी महान देशसेवा आदिका मुझे किसी प्रकार ज्ञान न होता और उनके अंगपर निस्सन्देह खेलनेवाले पक्षियोंकी बात ही केवल मैं सुनता तो मैं तिलकजीको एक महान लोकोत्तर पुरुष मानता।

साधु-संतोंकी पहचान किस तरह करनी चाहिये, यह कहते समय महाराष्ट्र के संत तुका ने कहा है—

जो अनाथ को अपनाये,
औ' हरले पीर पराई।
वही संत पदका भागी है,
वही देवता, भाई॥

यह ठीक भी हो, पर दुःखी–पीड़ित के प्रति अपनापन तथा प्रेम प्रकट करनेका दिखावा कोई करेगा या उसकी सेवा करनेका बहाना भी करेगा और तब हम जैसे मामूली लोग धोखेसे उसे साधु पुरुष कह भी बैठेंगे। ऐसी हालत हो तो यही ठीक होगा कि हम पक्षियोंकी जन्मजात प्रवृत्तिपर ही अधिक यकीन करें। वे किसी ऐरे–गैरे के पास फटकेंगे तक नहीं। इसीलिए संत तुकाराम के शब्दोंमें ही थोड़ा-सा फेर-बदल करते हुए मैं कहूँगा—

जिसे पखेरू निज कहता,
औ' जिसके कंधे पर हिलता।
वही संत पद का भागी है,
वही देवता, भाई।

रूपा : **शिवानन्द गोकर्ण**

•••

" फिर, मनुष्य जो कुछ करता है, क्या दिल से पूछ कर ही करता है? पता नहीं दिल क्या चाहता रहता है और वह क्या किया करता है? और जिस दिन दिल की बातें उसे मालूम होती हैं, वह अपनी मंजिल से कितनी दूर चला गया होता है। आज पछताती हूँ...."

पिंजरा रोता है

म ही प सिं ह

मैं ने कहा— " अगले महीने मैं भिलाई जारहा हूँ। कितना बड़ा स्टील प्लाण्ट वहाँ लगा है। यह स्टील–युग है न? इस युग में सो से भी अधिक स्टील का मूल्य है। ... "

मैं शायद स्टील की महत्ता पर पूरा एक भाषण ही दे डालता किन्तु देखा, निशा का ध्यान बिल्कुल मेरी ओर नहीं है। वह खोई-सी, पलंग पर बिछी हुई रंगीन चादर की डिजाइन पर अपनी उँगलियां फेर रही थी।

" निशा। "

उसने जाग कर मेरी ओर देखा। नमी की हल्की-सी परत उसकी दोनों आँखों में व्याप गयी थी। ऐसी नमी मैंने उसकी आँखों में अनेक बार देखी है। ऐसे समय वह अपने दोनों होंठों को दबा लेती है और मुँह के अन्दर ही अन्दर दाँतों से नीचे के होंठ की बायीं ओर के हिस्से को चबाने लगती है।

" क्या हुआ? " मैं समझ गया था, भावोद्रेक की नहर का दरवाजा कहीं से खुल गया है।

" तुम भिलाई जा रहे हो? "

" हाँ...तो? "

" दिवाकर वहीं तो है आजकल। "

अनुक्रमणिका



मुझे मार्क्स क्या कहता है इससे, या सेंट ल्यूथर क्या कहता है इससे, किसी से मतलब नहीं। मेरा आदेश तो स्पष्ट यह है कि जीवनको अपनी आँखों से देखो और अपने निर्णय सरलभाषा में रख दो।

" दिवाकर ?...ओह...वह वहाँ कब पहुँच गया ? "

" विवाह के बाद वह कलकत्ता चला गया था, फिर उसे मिलाई में जगह मिल गई। "

मुझे मजाक सूझा—"पूरी खोज-खबर रखती हो। बम्बई से तो उसे भगा दिया...लगता है दिल से नहीं भगा सकी अभी तक। "

उसकी आँखों की नमी और गहरी हो गयी। होंठ चबाती हुई वह चादर की डिज़ाइन पर तेजी से उंगलियाँ फेरती रही, फिर बोली—" सच बताऊँ ? दिवाकर अभी भी मुझे बहुत याद आता है। और जब भी याद आता है...बस, तन-मन झकझोर के रख देता है। "

निशा सिर उठाकर एकटक छत की ओर देखने लगी। लगता था जैसे नमी आँखों से छलक कर बाहर निकल पड़ेगी। निशा छत की ओर देख नहीं रही थी। उसने छलक पड़ने के डर से आँखों की तिरछी कटोरियों को सीधा कर दिया था।

कुछ क्षणों तक हवा का दबाव नीचे की ओर दबता-सा लगा।

" मिलाई में दिवाकर से मिलोगे ? "

" हाँ-हाँ... क्यों नहीं। वह तो मेरा बड़ा अच्छा मित्र था। या यों कहो बन गया था। तुम तो जानती ही हो, तुम से उसके इतने सम्बन्ध बिगड़ जाने के बाद भी वह मुझसे गहरा मित्रवत् व्यवहार करता रहा। यद्यपि मेरा उससे परिचय तुम्हारे द्वारा ही हुआ था। "

मैं कुछ क्षण उसकी ओर एकटक देखता रहा। मुझे अपनी ओर एकटक देखता देखकर वह हँस पड़ी। आँखों की नमी में हँसी का स्वर मिला तो और छलछला आया।

" क्या देख रहे हो ? "

" देख नहीं, सोच रहा हूँ ... और सोच रहा हूँ कि शेक्सपियर ने तो कहा है —

Frailty thy name is woman यह किसने कहा है ?

Mystery thy name is woman..."

निशा उन्मुक्त होकर हँस पड़ी। मैं उसे उन्मुक्त हँसाना ही चाहता था। शायद उस हँसी से उसकी वह खिन्नता झर जाती जो दिवाकर की याद ने अनायास उसमें उत्पन्न कर दी थी।

" क्यों, मैं रहस्यमयी हूँ ? "

" रहस्यमयी ? शायद उस ब्रह्म से भी अधिक जो केवल हमारे लिए रहस्यमय है। तुम तो शायद अपने लिए भी रहस्यमयी हो। "

वह खिलखिलाकर हँसी। मुझे अच्छा लगा। मैं कहता गया—"इसी बिचारे दिवाकर को तुमने लाखों गालियाँ सुनायी थीं। उसके प्रति तुमने इतनी घृणा का प्रदर्शन किया जितना शायद कोई खजेले कुत्ते से भी नहीं करता। उस बिचारे ने पुरुष होते हुए भी सब कुछ ऐसे सहन कर लिया जैसे वह सब उसके प्रति नहीं, किसी निर्जीव पत्थर की मूर्त्ति के प्रति किया हो; और आज वही दिवाकर तुम्हें याद आ रहा है !"

मेरी बात बहुत अधिक तीखी हो गयी थी। निशा फिर उसी गहरे सागर में डूब गयी जिसमें से अभी दो क्षण पूर्व उसका सिर ऊपर दिखाई देने लगा था।

" मैंने उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया था। सचमुच बहुत बार मुझे यह नहीं पता लगता कि मैं क्या, क्यों और कैसे कर रही हूँ... और उसका परिणाम क्या होगा। फिर, मनुष्य जो कुछ करता है, क्या दिल से पूछ कर ही करता है ? पता नहीं दिल क्या चाहता है और वह क्या किया करता है। और, जिस दिन दिल की बातें उसे मालूम होती हैं, वह अपनी मंजिल से कितनी दूर चला गया होता है। आज पछताती हूँ। उसे खो कर जैसे मैंने सब कुछ खो दिया। " और लम्बी साँस लेकर वह चुप हो गयी।

" तुम्हारा उससे परिचय कैसे हुआ था ? " मैंने पूछा। मेरी जिज्ञासा भी थी और मैं बात का रुख भी बदलना चाहता था।

" तुम्हे मैंने बताया नहीं ?" निशा की मुद्रा में आश्चर्य भर गया। वह एक विशेष अंदाज से जब किसी बात पर अपना आश्चर्य प्रकट करती है तो उसके चेहरे पर भोलापन और लावण्य उभर आता है।

" कभी विस्तृत रूप से तुमने नहीं बताया। बस उड़ते-उड़ते जो कुछ भी पकड़ लिया हो।"

" तुमसे भला मेरी क्या बात छिपी है ? तुम्हीं मेरे एक ऐसे मित्र हो जिससे आज तक मैंने कुछ नहीं छिपाया। और जो मुझे पूरी तरह से जानकर भी मित्र बना रहा-केवल मित्र।"

" बस, एक यही छिपी है... और तुम्हारे रहस्यमय भंडार में क्या-क्या छिपा है, कौन जाने ?" मैंने मुस्कराते हुए कहा।

वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली—

" जब वह नीचे के फ्लेट में आया, उसका परिचय पहिले चक्रधर से हुआ..."

" अरे हाँ...चक्रधर का क्या हाल है...तुम्हारा फास्ट फ्रेण्ड ? " मैंने बात काटकर, अन्तिम शब्दों पर बल देते हुए व्यंग्यसे पूछा।

" खाक फास्ट फ्रेण्ड ! उसी ने तो हम दोनों के बीच में इतना भेद पैदा किया। उसी के बहकाने में आकर मैं दिवाकर की उपेक्षा करने लगी। खैर सुनो... "

" सुनाओ ! " मैंने कहा—" वैसे निशा और दिवाकर का मिलन कभी होता नहीं। और, रात दिन का यह चक्र ही उनमें मिलन नहीं होने देता।

" अच्छा सुनोगे या कविता ही करोगे ? "

" सुनाओ, सुनाओ। "

अनुक्रमणिका

" चक्कर (निशा चक्रधर को केवल चिक्कर ही कहती है) से ही उसे मालूम हुआ कि मैं एक परित्यक्ता हूँ, दफ्तर में काम करती हूँ और अकेली रहती हूँ। एक बार वह उसके साथ मेरे फ्लैट में आया भी। उस समय उसने मुझे बिल्कुल प्रभावित नहीं किया था। उसकी सूनी-सी डरावनी आँखें और गम्भीरता से पिचे हुए होंठ मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगे।...फिर वह दो-एक बार अकेला ही मेरे पास आया। देखने में वह जरा बुद्धू-सा लगता था। लगता था न ? " निशा मुझसे प्रश्न कर बैठी। मैंने कहा— " लगता तो वह बिल्कुल बुद्धू ही था। इसीलिए जब पहिली बार तुमने मुझे बताया था कि तुम उससे विवाह करने के विषय में सोच रही हो तो मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ था। सोचा, तुम्हारे जैसी औरत उस उजबुक में क्या देख कर रीझ गयी है। "

पहिले तो वह हँसी फिर संयत स्वर में भावनिमग्न होकर बोली— " देखने में वह चाहे जैसा हो, बातें बड़ी प्यारी-प्यारी करता था, बस। मन मोह लेने वाली। मुझे विश्वास है कि वह केवल अपनी बातों से ही किसी भी स्त्री को खुश रख सकता है।... खैर सुनो......एक दिन वह शाम को मेरे कमरे में आया। मैं दफ्तर से वापस आकर पलंग पर पड़ी थकान मिटा रही थी। इधर-उधरकी औपचारिक बातों के बाद उसने पूछा-" आप दफ्तर से आने के बाद क्या करती हैं ?"

" मैंने कहा-" कुछ नहीं। कभी-कभी कहीं घूमने चली जाती हूँ। नहीं तो यहीं पड़ी रहती हूँ और नौकर जब खाना बनाकर दे देता है, तो खा लेती हूँ और सो जाती हूँ।"

मेरी बात सुनकर वह दो क्षण चुप रहा, फिर बोला-" कही घूमने चलेंगी ?"

" अभी ?" मैंने आश्चर्य से पूछा। वह बोला- " हाँ यहीं-कहीं घूम आते है। आज मेरा मन भी कही लग नहीं रहा है।"

मुझे उसके प्रस्ताव पर कौतूहल हुआ। फिर न जाने क्या सोच कर म कह बैठी- " चलिए।" ओर मैं तैयार होकर उसके साथ निकल पड़ी। हम लोगों ने एक टैक्सी ली और जा पहुँचे बैण्ड स्टैण्ड। बैण्ड स्टैण्ड जगह मुझे बहुत पसन्द है। वहाँ के नीरव समुद्रतट पर मेरे मन की उदासी खो-सी जाती है। मैं अपने को फूल-सा हल्का अनुभव करती हूँ। लगता है यही बैठी रहूँ... बस बैठी रहूँ।

उस दिन वह अपने विषय मे ही बताता रहा बंगलोर से वह बम्बई कब आया। उसके परिवार मे कितने लोग हैं। कितने लोगो का उत्तरदायित्व उस पर है ... आदि आदि। एक आध घंटा घूमकर हम घर वापस आ गये। अब वह प्रायः आने लगा। एक दिन सुबह बोला -- " मुझे अपने लिए कुछ कपड़े बनवाने हैं। आजतक स्वयं मैंने कभी नहीं खरीदे। आप खरीदवा दीजियेगा ?" मुझे हँसी आई। कैसा आदमी है। अपने कपड़े भी स्वयं नहीं खरीद सकता। मैंने स्वीकृति दे दी ! शाम को छः बजे वह मुझे दादर स्टेशन पर मिला। एक दुकान से मैने उसकी पैण्टो और शर्टों के शेड पसन्द किए। वही शेड जो मैं किसी भी पुरुष को पहने देखना पसन्द करती हूँ। जब उसके कपड़े हो गये तो वह धीरे से मेरे से कान के पास आकर बोला — " एक साड़ी अपने लिए भी ले लो। "

" मैं ? " मैंने कहा — " मुझे थो अभी जरुरत नहीं। ".

" स्त्रियोंको साड़ियों की कब जरुरत नहीं होती ! एक ले लीजिये न वह बोला।

" नहीं नहीं ... मुझे अभी नहीं लेनी है। आप अपने कपड़े लीजिये। " मैंने कहा।

वह बड़े धीरे से अपने शब्दों पर बल देता हुआ बोला—"देखिए, लोग देख रहे हैं। दुकान पर झगड़ा मत पैदा कीजिये। एक साड़ी तो आपको लेनी ही पड़ेगी। "

" बड़े जिद्दी हैं आप। " मैंने कहा। मैं साड़ियाँ पसन्द करने लगी। वह बोला—" साड़ी तो आप पसन्द करेंगी परन्तु रंग मेरी पसन्द का होगा। " और उसने एक शेड पसन्द किया। बोला— " चौड़े काले बार्डर की सफेद साड़ी मुझे बहुत पसन्द है। "

और साठ रुपये की एक साड़ी उसने मुझे ले दी।

अब तो हम काफी निकट आ गये थे। एक दिन वह बोला— " मुझे आप से एक खास बात कहती है। शाम को साढ़े छः बजे सान्ताक्रूज स्टेशन पर आपकी प्रतीक्षा करूँगा। " कहकर उसने एक क्षण मेरी ओर देखा, मेरे मौन में स्वीकृति पा चला गया।

उस शाम को हम जुहू तट पर गये। उस दिन काफी भावाकुल था। दस-बीस मिनट हम इधर-उधर की बातें करते रहे फिर एकाएक उसने मेरा हाथ पकड़कर कहा-" निशा, आई वाण्ट टु मेरी यू।

यह कहते वह भावातिरेक से काँपने-सा लगा।

मैंने कहा- " जानते हो मैं परित्यिक्ता हूँ। "

वह बोला-" जानता हूँ। "

" हमारी भाषा और जाति भी एक नहीं है। "

" मैं उनकी चिन्ता नहीं करता। "

" आप के घर के लोग मुझे स्वीकार करेंगे ? "

" उन्हे समझा लूँगा। "

मैं कुछक्षण चुप रही। फिर बोली- " एक बात और। मैं अपनी नौकरी नहीं छोड़ूँगी "

वह मेरे दिलमें
है और मेरा दिल
उसके हाथमें है,
जिस तरह आइना
मेरे हाथ में है और
मैं आइने में हूँ !



वह कुछ हिचकिचाया। बोला– " मेरी आय यदि काफी हो तो आपको नौकरी करने की क्या जरूरत है!"

" मैंने हाथ छुड़ा लिया और कहा–" आर्थिक दृष्टि से मैं आत्म-निर्भर रहना चाहती हूँ। मेरे जीवन के अनुभव बड़े कटु हैं।"

वह बोला–" मैं वायदा करता हूँ कि अपनी ओर से मैं कभी आपको नौकरी छोड़ने के लिए नहीं कहूँगा। किन्तु मुझे विश्वास है कुछ दिनों के पश्चात् आप स्वयं ही नौकरी छोड़ देंगी।"

" मैं सोच कर उत्तर दूँगी।" मैंने कहा।

हम घर वापस आ गये। वह रास्ते भर टैक्सी में मेरा हाथ अपने हाथों में लिये रहा।

" उसी रात को लगभग ग्यारह बजे होंगे, वह मेरे कमरे में फिर आया। मैं शीशे के सामने खड़ी मुँह पर कोल्ड क्रीम लगा रही थी। बोला–" अभी तक आप सोयीं नहीं ?"

" आप क्यों नहीं सोये अभी तक ?" मैंने पूछा।

" जब तक आप सोती नहीं, मैं कहाँ सोता हूँ।"

" आपको कैसे मालूम होता है कि मैं जाग रही हूँ या सो रही हूँ ?" मैंने कौतूहल से पूछा।

" आप की बालकनी से बिजली का प्रकाश मेरी बालकनी पर पड़ता रहता है। और वह मुझे बताता रहता है, आप अभी तक सोयी नहीं हैं। अनेक बार उस पर आपकी छाया दिखायी देती है, और मैं एक टक उसे देखता रहता हूँ। जब वह प्रकाश विलीन हो जाता है मैं भी आँखों का प्रकाश बन्द कर सोने की कोशिश करने लगता हूँ।

मैं उसकी ओर एक टक देखती रही। उसकी सूनी आँखों से अनिवर्चनीय रस की धारा-सी प्रवाहित हो रही थी। उस दिन वह मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा, बहुत ही अच्छा।

" मेरी बात का जवाब मिलेगा ? उसने पूछा। मैं निरुत्तर उसकी ओर देखती रही। उसने झट मुझे बाँहों में ले मेरे होंट चूम लिये और खट से दरवाजा खोल कर कमरे से बाहर हो गया। मैं ठगी-सी, अपने होटों पर हाथ रखे, खुले दरवाजे की ओर देखती रही।

तभी चक्कर का चक्कर शुरू हुआ। एक दिन इसे अपना मित्र समझ मैंने बता दिया कि मैं दिवाकर से शादी करने जा रही हूँ। बस धीरे-धीरे इसने मेरे कान भरने शुरू किये। उसकी एक न एक बुराई यह मुझसे नित्य करता। दिवाकर में यह बुरी आदत है, बहुत बुरी आदत है। वह बड़ा कंजूस है, बड़े शक्की मिजाज का है। और कभी मुझे उसने मिलने का अवसर न दे सदैव मेरे पीछे लगा रहता। इसी बीच दिवाकर एक महीने के लिए बंगलोर चला गया। चक्कर ने उन दिनों बड़े रंगीन सपने मेरे सामने खड़े कर दिये। वह नित्य ही मुझे किसी बड़े होटल या सिनेमागृह में ले जाता और एक दिन उसने एसी बात कही कि मेरा मन दिवाकर की ओर से विरक्ति से भर गया। उसने बताया, दिवाकर नपुंसक है। और अपनी बात के समर्थन में उसने अनेक गढ़ी हुई कहानियाँ मुझे सुना दीं।

दिवाकर बंगलोर से लौटा तो उसने मेरा बदला हुआ रूप देखा। चक्कर का जादू चल चुका था। उसने बहुत कोशिशें कीं किन्तु मैं तो किसी जादू की खुमारी में थी। मैंने उसकी उपेक्षा ही नहीं की, उसका तिरस्कार किया। गालियाँ दीं, अपमान किया। वह चुपचाप सब सह गया। मैंने उसे भी उसकी नामर्दी समझा।

वह तीन चार महीने मेरे पीछे लगा रहा और मैं कुत्ते की तरह उसे दुत्कारती रही। जब वह फ्लैट छोड़ कर जाने लगा तो मैं उससे मिली भी नहीं।

किन्तु चक्कर के जादू का असर मेरे मन की गहराइयों तक नहीं पहुँचा है। यह बात मुझे तब मालूम हुई जब मैंने उसके विवाह का समाचार सुना। उस दिन जैसे सारी खुमारी फट-सी गयी। लगा जैसे मैं कैसी गाढ़ी निद्रा में अपनी संपत्ति से बेखबर से रही थी और अब नींद टूटी है तो सब कुछ जलकर खाक हो चुका है। उस दिन मुझे लग रहा था कि मैं रोऊँ इतना रोऊँ कि अपने ही आँसुओं में खुद को डुबो दूँ। या फिर चीखूँ-चिल्लाऊँ और जो भी सामने पड़े उसका मुँह नोच लूँ।"

निशा अपनी कहानी कहकर चुप हो गयी। उसकी साँसों की गति समय की गति को पीछे दौड़ती ज्ञात हो रही थी। कुछ क्षणों में उसने अपने को संयत किया और बलात् मुस्कराने का प्रयास करती हुई बोली—" मिलाई कब जा रहे हो ?"

" अगले महीने की पांच-सात तारीख तक।"

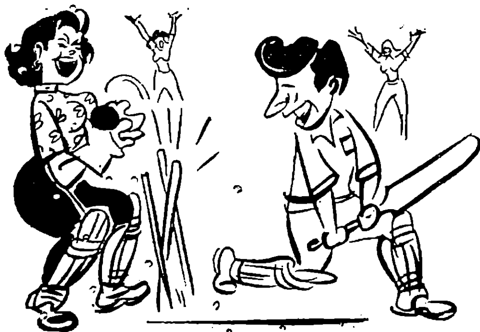
" दिवाकर से कहना, मैं उसकी बहुत याद करती हूँ।"

" कहूँगा।"

वह कुछ क्षण ग़मगीन बनी बैठी रही। फिर बोली ... " नहीं, उससे मेरी कोई बात न करना। उसे मेरी याद भी न दिलाना। और सुनो ... उसके लड़का हुआ है मैं तुम्हें एक स्वेटर बनाकर दूँगी। मेरा नाम न लेना। उसे अपनी ओर से भेंट कर देना ...।"

निशा ने एक लम्बी साँस खींची और उसांस छोड़ दी। मैं बैठा उसकी साँसों-उसासों का क्रम देखता रहा। • • •

वेल् कॅट !





....हिंदोस्ताँ हमारा !

वि. द. घाटे

हम फौजी बड़े खुले मन के होते हैं। आप आज़ादी चाहते हैं न? बिल्कुल ठीक! हमारी भी राय वही है। हम फौजी जवानों में घुलमिल कर रहते हैं, उन्ही का हुक्का पीते हैं, उन्हीं की रोटी खाते हैं। असली 'हिन्दोस्ताँ' हम ही जानते हैं।

उस दिन सागर तालाब जैसा बिलकुल शान्त और प्रसन्न था। अकस्मात ही जागृत हुआ आदमी जिस प्रकार अपना सर तकिये से तनिक उठा कर फिर उस पर रख देता है उसी प्रकार लहरें शिथिलता से अपना सर ऊपर-नीचे कर रही थीं। पश्चिमी हवा झपकी लेते हमारे शरीर चाटकर जाती थी। कोंकण के किनारे वाले नारियल के पेड़ खुमार की हल्की मस्ती से झूम रहे थे। वातावरण में चारों ओर एक मजेदार सुस्ती भरी हुई थी।

हम भी दोपहरका लंच समाप्त करके गोवा जानेवाले जहाज़की अपनी कैब में ऊँघ रहे थे। लगभग चार बजे मैं और मेहरअली कपड़े पहनकर डेक के छज्जेपर खड़े हो गये। आँखों में सुस्ती भरी हुई थी। नशेबाज हवा हमें मस्त कर चुकी थी। खड़े रहने के कष्ट उठाने के बदले हम ने डेक कुर्सियाँ हमारी ओर खींच ली और बैठे-बैठे सुस्तीसे गपशप करने लगे।

डेक पर हमारे सिवा और एक यात्री आराम कुर्सी में बैठकर कुछ पढ़ रहा था। वह बूढ़ा था। और खास कर के वह कोई फौजी अधिकारी दिखायी देता था। सुबह से वह कभी-कभी हमारी ओर देखता और तनिक हँसता था। लेकिन हमने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। मैं शायद उसका परिचय करवा लेता, लेकिन मेहरअली-साहब राजनीति के झमेले में पड़े हुए थे इसलिए फौजी अधिकारी के साथ कैसे निभाएँगे? शायद वह स्वस्थ–सुस्त वातावरण यकायक धधक उठता। इसलिए हम उस अंग्रेज से जहाँ तक हो सके, काफी दूर बैठे थे।

बूढ़ा पढ़ रहा था। उसकी आरामकुर्सी की बगल में ही एक नौ–दस साल का, नुकीली नाकवाला पंजाबी लड़का डेकपर पालथी मार कर बैठा था। वह बूढ़ा कभी कभी उस के सर हाथ फेरता और बड़े प्यार से उसके साथ बातचीत कर रहा था।

बूढ़े ने खाकी हाफ् पैण्ट और खाकी शर्ट पहना था। गले में तावीज बँधा था। मूँछें भूरी और 'मटनचाप' के आकार की थी। सर,

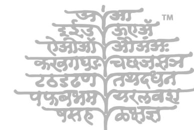
(कृपया पृष्ठ १६२ देखिए)

श्री. वि. द. घाटे :

गत वर्ष आपकी रचना—'भाईजी का इंडियन समर' पढ़कर दीपावली के मर्मज्ञ पाठक अत्यंत प्रसन्न हुए थे। हाल ही आपकी पुस्तक 'पांढरे केस, हिरवीं मने' को बम्बई सरकार ने सम्मानित किया है। व्यक्ति–चित्रण की कला में आपकी मूर्धन्य लेखनी इतनी प्रखर है कि चित्रण का प्रत्येक अक्षर चित्रित व्यक्तित्व को आंखों के सामने उपस्थित कर देता है।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास





दाक्षायणी

अनन्तकुमार पाषाण

"पिताजी! क्या भगवान शंकर को आप हवि देने के योग्य नहीं समझते?"

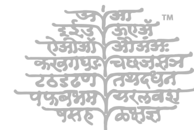
फिर वह तन कर खड़ी हो गयीं और कड़कते हुए स्वर में बोलीं—यदि परिहास में भी शंकर जी कभी मुझे दाक्षायणी कहकर पुकारेंगे तो वह नाम मेरे लिए करोड़ों मृत्युओं के बराबर होगा!

आज स्वर्ग में बड़ी चहल-पहल है। समस्त प्रजापतियों ने मिलकर एक समवेत यज्ञ का आयोजन किया है। चातुर्मास्य-यज्ञ करके वह ऐसा पुण्य अर्जित करने के अभिलाषी हैं, जिस से वह स्वर्ग के अनेक भोगों को बहुत अधिक काल तक भोगते रहें। अनेक यूप हैं, अनेक अग्नियाँ प्रज्ज्वलित हैं। तोरण व आम्र पल्लवों से सुसज्जित मण्डप हैं। सामगान गूँज रहा है। हवन की पावन सुगन्ध से पवन भारी हो गया है। सब देवता यथास्थान बैठे हैं। यद्यपि कोई बातचीत नहीं हो रही है, तथापि उस मौन में भी गोपन रजोगुणी उल्लास वाचाल है।

सब को दक्ष प्रजापति की प्रतीक्षा है। प्रजापतियों में वह बहुत महत्वपूर्ण और सम्मान के योग्य समझे जाते हैं।

बहुत काल बीतने पर भी जब प्रजापति नहीं आये तो उपस्थितजन उद्विग्न हो गये। सब के नेत्र द्वार की ओर लगे हैं। अकस्मात् "दक्ष प्रजापति का स्वागत हो!" "दक्षप्रजापति की जय" के नारों से वातावरण गूँज उठा।

अनुक्रमणिका





दक्ष प्रजापति आये। शुभ्र वस्त्रों पर रक्ताभ उत्तरीय, मुख तेजोज्वल, चाल में गौरव। उनके आये ही सब खड़े हो गये और सन्तोष का भाव सर्वत्र व्याप गया। दक्ष प्रजापति ने सगर्व चारों ओर देखा। महर्षि भृगु उन्हें उनके उच्च आसन पर ले गये।

आसन ग्रहण करने के पूर्व उन्होंनें सत्र का अभिवादन किया और मुस्कुराये। फिर बैठे। देखते क्या हैं कि पास के आसन पर शङ्करजी नयन बन्द किये बैठे हैं। भस्म-विभूषित कन्धे पर सिर रख कर एक काली नागिन सो रही है, जटाओं में गंगा का कल्लोल है, शरीर पर मात्र एक व्याघ्राम्बर है।

इस सारी चहल-पहल में शङ्करजी नयन मूँदे ध्यानस्थ ही बैठे रहे। उन्होंने दक्ष प्रजापति का स्वागत करने का कोई विशेष उपक्रम न किया।

" भृगुजी, " दक्ष प्रजपति ने कुटिल व्यंग्य से कहा, " यज्ञ की पावनस्थली में भँगेड़ियों के समान ऊँघनेवाला यह मूर्ख तो मेरा जामात-जैसा लगता है। "

" हाँ महाराज, यह आपके जामात ही हैं! " भृगुजी ने दाँत निपोरते हुए कहा।

" इस भंगेड़ी को साधारण शिष्टाचार का भी ज्ञान नहीं है! न तो इसने अभ्युत्थान आदि से मेरा स्वागत ही किया और न प्रणाम करना ही आवश्यक समझा! "

शंकरजी के नयन नहीं खुले। भृगुजी भी मौन रहे।

" ब्रह्मा जी की बातों में आकर अपनी फूल-सी कोमल कन्या मैंने इस दुष्ट से व्याह दी। उसका यह प्रतिकार! देखो तो कैसे नयन मूँद कर बैठा है जैसे संसार से इसका कोई सम्बंध नहीं! "

सभा में मौन छा गया। अग्नियाँ नाच रही थीं। दक्ष प्रजापति उठ कर सभा के केन्द्र में आ गये।

" सब प्रजापति सुनें। जिस यज्ञ में ऐसे विक्षिप्त जन हैं, उससे श्रीहरि कभी प्रसन्न नहीं हो सकते। हम लोगों का समस्त ऐश्वर्य ऐसे श्रीहीन व्यक्तियों के सम्पर्क से अवश्य विनष्ट हो जाएगा। मैं ऐसे यज्ञ में सहयोग नहीं दे सकता। "

ब्रह्मा जी ने बात बढ़ते देखी तो उठ कर आ गये। दक्ष प्रजापति का क्रोध शान्त करने का प्रयत्न उन्होंने किया। शंकर जी जैसे बैठे थे, वैसे ही बैठे रहे।

शंकर जी पर कोई प्रभाव न पड़ता देख कर दक्ष प्रजापति ने समीपस्थ कलश से जल का एक चुलुक लिया और क्रोध में भर कर बोले – "इस अधम को कभी कोई यज्ञ का भाग न दे! " जल पृथ्वी पर डाल दिया और सबके रोकते-रोकते वह अपने रथ पर बैठ गये। रथ चला गया। सभी में एक असह्य मौन छा गया।

नन्दीश्वर आदि शंकरजी के अनुयायियों से न रह गया। नन्दीश्वर उठ कर आगे आये और बोले-" स्वर्गसुख के लिये यज्ञ करनेवाले प्रजापतियों! शंकर जी से द्रोह करके जो यज्ञ होगा वह निरर्थक है। तुम लोग सदा तत्त्व-ज्ञान से विमुख रह कर प्रजा की उत्पत्ति में ही लगे रहोगे। मूर्खो! तुम लोग समस्त प्राणियों का हित करनेवाले भगवान शंकर से द्रोह करके श्रीहरि को प्रसन्न करना चाहते हो? भगवान विष्णु तुम्हें इसका दण्ड देंगे। और जिन ब्राह्मणों ने इस प्रजापतियों का अनुमोदन किया है, वे चिरन्तन काल तक उदर-पोषण के लिये भिक्षा माँगते फिरेंगे। भगवान श्रीहरि साक्षी हैं! "

भृगुजी भी आगे आये। उन्होंने भी यथावत् जल हाथ में लिया और बोले – " अनेक पाखण्डी शिव के भक्त बन कर भूमि और मदिरा का प्रचार करेंगे। ब्राह्मणों की निन्दा करने वाले मूर्खों! शंकर जी के अनुयायियों में शौचाशौच का कोई भाव न दिखायी देगा। "

जल पृथ्वी पर डाल दिया गया।

शंकर जी ने नेत्र खोले। वह मुस्कुराये और धीरपद अपने बूढ़े बैल पर जा कर बैठ गये।

पार्वती ने देखा कि हमारे पति जा रहे हैं। वह भी कुछ खिन्न-सी हो कर चली आयीं और उसी बैल पर बैठ गयीं।

बैल चल रहा है। शंकर जी पार्वती की ओर देख कर मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं। दोनो मौन हैं। यज्ञस्थली पीछे छूट चुकी है। बैल कैलाश के मार्ग पर है। पार्वती जी के नयन छलछला रहे हैं।

कन्दराएँ आ गयी हैं। सूर्य अस्त ही हुआ चाहते हैं। नील आकाश में बलाका की ओर इंगित करके भगवान शंकर सहज भाव से बोले – " गिरिजे! देखती हो वह शुभ्र बलाका! "

पार्वती जी उनकी ओर देखती रहीं, देखती रहीं। फिर फूट फूट कर रो पड़ीं। रोते-रोते बोलीं – " तुम यदि सचमुच मुझसे प्रेम करते तो मेरे पिता का ऐसे अपमान न करते! "

" अपमान! मैंने तो उनका कोई अपमान नहीं किया! "

" उनके आने पर भी तुम नयन मूंदे बैठे रहे! "

" मैं श्रीहरि का, अपने आराध्य, अपने प्राण श्रीहरि का ध्यान कर रहा था! "

" और इतना उपद्रव होने पर भी तुम्हारा ध्यान न टूटा! "

" यही बात तो है प्रिये! जिसका ध्यान श्रीहरि में हो वह इतनी सरलता से नहीं टूटता! "

बैल चलता रहा। हिमालय की हिमावृत श्रेणियाँ चारों ओर फैली हैं। पार्वती जी दूर शून्य में कहीं देख रही हैं। उनके सुन्दर लोचन आँसुओं से धुल कर और पवित्र हो गये हैं।

" और तुमने उन्हें प्रणाम क्यों नहीं किया? क्या मेरे पिता को तुम प्रणाम के योग्य भी नहीं समझते? "

" हम लोग शरीर से किये हुए प्रणाम को कोई महत्व नहीं देते! सब के हृदय में जो श्रीहरि विराजमान हैं, हम हृदय से उन्हें ही प्रणाम करते हैं! "

" इतना तत्वज्ञान सबको तो नहीं होता! "

' उन्हें तत्वज्ञान हो तभी कुछ होगा। श्रीहरि सबका कल्याण करें! "

वसन्त ऋतु। हिमालय की उपत्यकाएँ रंग और सुगन्ध से छलछल।

कैलाश पर शंकर जी ने बहुत दिनों के बाद नयन खोले तो खिन्न-मना पार्वती को समक्ष पा कर उन्हें लगा कि जैसे कुछ विशेष बात है। पर वह मौन ही रहे।

" आज समस्त आकाश विमानों से आच्छादित है! " उन्होंने कहा अकस्मात् पास से ही वरुण अपनी सुन्दर पत्नियों-सहित एक विमान पर निकल गये।

अनुक्रमणिका





"हाँ ?" शंकरजी ने अनजान-सा बनते हुए कहा – "कहीं कोई बड़ा उत्सव होगा।"

पार्वती जी कुछ क्षण मौन रहीं, फिर मानों कुछ सलज्ज भाव से बोलीं – "आपको नहीं मालूम ?"

"नहीं तो !" शंकर जी साश्चर्य बोले – "इस बीच क्या कोई विशेष महत्व की घटना घटित हुई ?"

"और तो कुछ नहीं" पार्वती जी कुछ संकोच से बोलीं – "बाबा को ब्रह्मा जी ने समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया है। उसी समारोह में सब जा रहे हैं।"

शंकर जी चुप ही रहे। मौन मानों अप्रिय सत्य को प्रवेश–निषेध का आदेश था। पार्वती जी ने थोड़ी देर प्रतीक्षा की, फिर तनिक धीरे से बोलीं – "सुना है मेरी सब बहनें अपने – अपने पतियों के सहित आ रही हैं !"

शंकरजी बोले–"लगता है प्रिये, तुम्हारी भी इच्छा जाने की है ?"

"समझिये है, तो क्या ! पिता के यहाँ जाकर अपने कुटुम्ब के सदस्यों से मिलने की इच्छा क्या कोई अपराध है ?"

"कौन ऐसा कहने का साहस करेगा भला ! परन्तु पार्वती, क्या तुम्हारे पिता ने निमन्त्रण भेजा है ?"

"यह लीजिये ! आप बनते तो हैं बड़े व्यवहार–कुशल किन्तु हैं सचमुच भोले बाबा ! भला पिता के यहाँ जाने के लिये पुत्री को निमन्त्रण की अपेक्षा रखना क्या उचित है ?"

"मुझे तो लगता है," शंकर जी बोले, "कि उन्होंने जानबूझ कर निमन्त्रण नहीं भेजा है।"

"बस आपको तो मेरे पिता में छल–ही–छल दिखायी देता है। इतने बड़े समारोह का आयोजन करने में इस प्रकार की भूल हो जाना स्वाभाविक ही है। और फिर शास्त्रों में तो कहा है कि गुरु और पिता के यहाँ अनाहूत जाने में भी कोई दोष नहीं। आप तो सर्वज्ञ है। शास्त्र आपके ही भावों को व्यक्त करते हैं। फिर आप निमन्त्रण की बात करके मुझे रोकना क्यों चाह रहे हैं ?"

"यह सच है कि पिता व गुरु के यहाँ बिना निमन्त्रण भी जाया जा सकता है, किन्तु देहाभिमानी पिता भी हो तो उसके द्वारा किसी प्रकार मंगल नहीं हो सकता !"

"एक युग बीत गया अपनी माँ और बहनों से मिले। जिनका बाबा से कोई भी सम्बन्ध नहीं, वे भी इस यज्ञ में जा रहे हैं फिर भला कन्या हो कर मैं नहीं जाऊँ ? भला पिता से भी पुत्री का अमङ्गल हो सकता है ?"

"किन्तु प्रिये, हो सकता है वहाँ तुम्हारा अपमान ही हो !"

"पिता द्वारा हुआ अपमान भी स्नेह का ही द्योतक है। मेरा हृदय तो माँ और बहिनों से मिलने को व्याकुल हो रहा है। आप सर्वशक्तिमान हैं, दयालु हैं, मुझ पर कृपा कीजिये। या तो मेरे साथ चलिये या मुझे अकेले ही भेज दीजिये। दो-चार दिन रह कर आ जाऊँगी। मुझे हताश न करिये। अपनी बहिनों से मिले मुझे एक युग बीत गया है। माँ से मिलने को मैं अतिशय व्यग्र हूँ !"

सहसा शंकरजी गंभीर हो कर बोले–"पार्वती, तुम्हारे पिता को अतिशय देहाभिमान है। भरी सभा में उन्होंने मेरा अपमान किया और मुझे शाप दिया; मात्र इसलिये कि मैंने उठकर उन्हें प्रणाम न किया। अब जब ब्रह्मा जी ने उन्हें समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया है, तो उन्हें अपनी सफलता पर और अधिक गर्व हो गया होगा। हो सकता है कि गर्व में वह स्नेह का वैसा प्रदर्शन न करें जैसी तुम्हें आशा है। हो सकता है वह तुम्हारी अवज्ञा करें। उन्होंने मुझे भंगेड़ी, भिखारी क्या–क्या कहा है। शत्रु की विषाक्त असि से कट–कट कर मरना अच्छा, पर अपने प्रिय सम्बन्धियों द्वारा अपमानित होना ठीक नहीं ! मुझे लगता है वहाँ जानेसे तुम प्रसन्न न होगी !"

(कृपया पृष्ठ ५६ देखिए)





राजमार्ग के पदयात्री से....



देख कर चलो !
ए भाई ! जरा देख कर चलो !
ऊपर ही नहीं,
नीचे भी,
दायें ही नहीं
बायें भी
आगे ही नहीं
पीछे भी –
देख कर चलो !
ए भाई ! जरा देख कर चलो !
तुम जहाँ चल रहे हो
वह तुम्हारा घर
या सराय नहीं,
वह तुम्हारे गाँव की
गैल या बीथी नहीं
गंदे मुहल्ले का –
कूँचा या गली नहीं
बड़े से शहर का –
एक राजमार्ग है।
और यहाँ कारों में,
छोटी–बड़ी कारों में
काले बाजार का
तस्कर–व्यापार का
सोना चला करता है
और बदशक्ल बडे ठेलों में
गाँजा
अफीम
चर्स
न जाने केसा – कैसा
माल ढोया जाता है,
या फिर आवारा बुशशर्टों में
महकते इत्रों में,
नाईलोनी साड़ी में,
ऊँची हील पर
लचकती-थिरकती स्कर्ट में,
बेशर्म ब्लाऊजों के
अधनंगे फैशन में,
सस्ती शराब का नशा,
रूप का गर्व,
और पैसे का दर्प—
चला करता है !
देख कर चलो !
हाँ भाई ! जरा देख कर चलो !!
चौंक का सिपाही जो
रास्ता बताने के
वास्ते नियुक्त है
उसका है काम
तुम्हें रास्ता बताना नहीं,
उनकी सलामी औ'
रक्षा के वास्ते खड़ा है वह
जो कि मिनिस्टर है,
या जो घूसखोर,
कामचोर,
अफसर है,
नेता फटीचर है
फर्ज जो तुम्हारे प्रति उसका
वह इतना है
कि जब भी वह चाहे तुम्हें
डाँटे या गाली दे,
पीटे, पामाल करे
चालान करके तुम्हें
जेल से जोड़ दे
या फिर दो–चार टके लेकर के
बिना कुछ कहे
तुम्हें बेदाग छोड़ दे !
देख कर चलो !
हाँ भाई ! जरा देख कर चलो !
तुम स्वतंत्र देश के नागरिक हो,
गांधी के बेटे हो,
प्रजातंत्री शासन के पुर्जे हो,
और टैक्स तुमसे ही लेकर के,
तुम्हारी ही मेहनत से,
तुम्हारे ही भाइयों ने
पथ यह बनाया है,
फिरभी हकदार नहीं
तुम हो यहाँ चलने के
क्योंकि तुम गरीब हो
जेब में सिक्के न होने की वजह से,
पाँव में जूता न होने के कारण से,
तुम बिलकुल अपढ़ हो, जाहिल हो,
मूर्ख – बदतमीज़ हो,

— नीरज

भले ही याद तुम्हें
पूरा हो शेक्सपियर
भले ही कंठ में तुम्हारे
बसा गीता हो
भले ही तुम्हारी आत्मा
गंगा-सी निर्मल पुनीता हो
और तुम्हारी पत्नी
जैसी कि सीता हो !
देख कर चलो !
हाँ भाई ! जरा देख कर चलो !
यह सड़क नहीं,
तुम्हारे लिए वह है फुटपाथ,
जली हुई बीडियों के टुकडे,
कूड़े के ढेर
सड़े हुए केले,
अंडे और प्याज के छिलके
पड़े हैं जहाँ अपने आप !
इसी फुटपाथ के –
तुम हो अधिकारी बस,
क्योंकि तुमने चोरी को –
छोड़ कर
मेहनत स्वीकारी है
इन्सानी प्यार की
गलियों में
जिन्दगी गुजारी है,
हलों की नोंक से,
कुदाली की चोट से
चट्टानें तोड़ कर
धरती सँवारी है
इसीलिए कहता हूँ –
देख कर चलो !
हाँ भाई, जरा देख कर चलो ! !

इसलिए भाई !
देख कर चलो ।
जरा देख कर चलो ।
मुझे तो चिन्ता है
तुम्हारे उन बच्चों की
घर पर जो बैठे हुए
यह सोच रहे हैं कि
लाओगे तुम उनके लिए
एक फिरकनी,
एक गुब्बारा,
दो आने सेर के सस्ते-से आम
खाँसी से मरती हुई
मुनियाँ के लिए
दो पैसे की पुडिया में—
जीने का पैग़ाम !
मर गये कहीं जो तुम
सोचो जरा–
क्या होगा
इन अबोध सपनों का
देहरी पर तुम्हारी
प्रतीक्षा में सोए हुए
इन तुतले वचनों का ?
इसीलिए रुको—
रास्ता पार न करो ।
और देख कर चलो
हाँ भाई ! जरा देख कर चलो !
इन्सान, हो तुम !
उठो सूरज से आँखें मिलाओ,
वक्त वह जल्दी ही आयेगा,
जब यह राजपथ
जन – पथ में बदल जायेगा,

और तब यहाँ
चाँदी और सोना नहीं,
लोहा फौलाद नहीं
अफीम गाँजा नहीं,
राखियाँ, टिकुलियाँ, सिन्दूर और
पालकियाँ चलेंगी,
गेहूँ, चना, मटर और कपास
चावल और ज्वार से भरी
गाडियाँ
हाँ, बैलगाडियाँ दौडेंगी ।
और शराब की गंध की जगह
हवाओं में –
सुबह के गुलाब मदमदायेंगे,
सिनेमा की गंदी ट्यूनों और
बदचलन सीटियोंके बजाय
फ़िज़ाओं में हीर और राँझा,
शेनी और बोजानन्द
सूर और तुलसी
मीर और ग़ालिब के
प्यार भरे गीत गुनगुनायेंगे !
तब तुम सड़क को पार करना,
दौडना उछलना
कूदना फाँदना
रुठना मनाना
हँसना मुस्कुराना
चाहे तो बिस्तर बिछाकर सो जाना ।
लेकिन आज अभी
देख कर चलो ।
हाँ भाई ! जरा देख कर चलो ! !

• • •

[पृष्ठ ५४ से आगे]

पार्वती जी चुप हो गयीं, किन्तु उनके नेत्रों से निरन्तर आँसू झरते रहे। आकाश-मार्ग से विमान-पर-विमान निकलते रहे। जैसे ही कोई विमान निकलता, पार्वती जी उठ कर जातीं और उसे निर्निमेष नयनों से देखती रहतीं जब तक के वह दृष्टि से ओझल नहीं हो जाता। उसके चले जाने पर उग्र नैराश्य के कारण धम्म से बैठ जातीं। इतनी ही देर में एक दूसरा विमान आता दिखायी देता। पार्वतीजी पुनः उठकर आतीं और उसे उसी प्रकार लुब्ध नेत्रों से देखती रहतीं। क्षण में बैठतीं, क्षण भर में फिर खड़ी हो जातीं। शंकर जी ने देखा कि उनकी प्रिया की आँखें रोते-रोते सूज आयी हैं, श्वास तीव्र चल रहा है और होठों पर पपड़ी जम गयी है।

उन्होंने एक क्षण को नयन बन्द किये और एक दीर्घ निश्वास छोड़ी। फिर उठ कर पार्वतीजी के निकट जा कर अतिशय स्नेह से उन्होंने कहा–" प्रिये, तुम जगदम्बा हो। तुम्हारे पिता भी मात्र देहाभिमान के कारण ही अपने को तुम्हारा पिता समझते हैं। लगता है तुम्हारे द्वारा ही उनका अभिमान नष्ट होगा। ठीक है। जाओ, किन्तु मुझे न विस्मृत कर देना। वचन दो कि, अधिक-से-अधिक दो दिन में ही तुम लौट आओगी; क्योंकि प्रिये, तुम्हारे वियोग में मैं एक क्षण भी प्राण धारण करने में असमर्थ हूँ!"

पार्वती जी शंकर जी के चरणों में गिर गयीं। दोनों प्रेम-विह्वल हो गये।

अपने हाथ से शंकर जी ने प्रिया का श्रृंगार किया उनकी क्रीड़ा के उपादान गेंद आदि बाँधे। उनकी प्रिय मैना को उनके साथ कर दिया। अपने नादिये पर उन्हें बिठा दिया और खड़े हो गये।

"मैं अवश्य ही दो दिन के भीतर आ जाऊँगी!" पार्वती जी ने कहा। नादिया चल पड़ा। शंकर जी देखते रहे।

जब नादिया काफ़ी दूर निकल गया तो शंकर जी ने अपने चार-पाँच गणों को बुला कर कहा – "तुम लोग जाओ और यदि कोई अप्रत्याशित घटना घटे तो हमें सूचना देना!"

"जो आज्ञा," कह कर गणों ने प्रणाम किया और चले गये। शंकर जी ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी, और नयन मूँद लिये।

☆ ☆ ☆

दक्ष का विशाल यज्ञ-मंडप लगभग एक सहस्र योजन विशाल था। उसमें नाना प्रकार के किरीट-ही-किरीट दिखायी देते थे। सर्वत्र उत्सव का वातावरण व्याप्त था। ब्राह्मणों में होड़ लग रही थी कि देखें वेद की ऋचाओं को अधिक उच्च स्वर से कौन बोलता है।

अधिकांश जन दक्ष की प्रशंसा करने में लगे थे। पार्वती जी जब पहुँचीं तो गन्धर्वगण दक्ष की प्रशंसा कर रहे थे। अपने पिता की विरुदावलि सुन कर उनका हृदय स्नेह के उद्रेक से भर आया। जल्दी-जल्दी बैल से उतर कर वह पिता के समक्ष पहुँचीं और उन्हें प्रणाम किया। पिता ने देखा और कुछ नहीं बोले। पार्वती जी को लगा कि कदाचित् उन्होंने देखा न हो, अतः पुनः उनके नेत्रों के ठीक समक्ष जाकर उन्हें प्रणाम किया।

दक्ष शून्य नेत्रों से पुत्री को देखते रहे और एक विचित्र व्यंग्य से मुस्कुरा दिये। पार्वती जी ने अन्य उपस्थित जनों की ओर देखा किन्तु दक्ष द्वारा न पहचाने जाने के कारण किसी ने भी उन्हें न पहिचाना।

वह लज्जित-सी खड़ी रहीं। दक्ष अपने प्रशंसकों के बीच खड़ा हाथ नचा-नचा कर अत्युच्च स्वर में बोलता रहा।

सहसा ही माँ और बहनों ने उन्हें देखा। वे भागी-भागी आयीं और भीतर चलने का आग्रह उनसे करने लगीं। किन्तु पार्वती जी जहाँ खड़ी थीं, वहीं खड़ी रहीं। यात्रा की थकान से उनका तेजोमय मुख म्लान हो गया था, किन्तु उन्होंने जल ग्रहण करने से भी इन्कार कर दिया। वह कुछ नहीं बोलीं। माँ और बहनों के प्रश्नों का उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

ब्राह्मणों के समवेत स्वर गूँजते रहे। हवि दी जाने लगी। छोटे-से-छोटे देवता के नाम की हवि दी गयी किन्तु शंकर जी के नाम से कोई आहुति न डाली गयी। पार्वती जी क्रोध से जल उठीं। उनका तेजोमय मुख अग्नि के समान प्रदीप्त हो उठा।

"पिताजी, क्या भगवान शंकर को आप हवि देने के योग्य नहीं समझते?"

"यहाँ मात्र सतोगुणी देवताओं को हवि दी जा रही है। श्मशान में निवास करनेवाले भँगेड़ियों को हवि देने से धर्म की मर्यादा का नाश हो जायेगा!"

अपने स्वामी के प्रति ऐसे दुर्वाक्य सुन कर शिवजी के गण आगे आकर दक्ष पर आक्रमण करने को उद्यत हुए, पर पार्वती जी ने अपने तेज से उन्हें रोक दिया।

फिर वह तन कर खड़ी हो गयीं और कड़कते हुए स्वर में उन्होंने कहा-"समस्त प्राणियों का अकारण हित करनेवाले, श्रीहरि के भी आराध्य भगवान शिव के लिये ऐसे दुर्वचनों का प्रयोग कर्म-काण्डी भोगलोलुप देहाभिमानियों को छोड़ कर और कोई नहीं कर सकता। अपने स्वामी की निन्दा करने वाले को दण्ड न दे सके तो तुरन्त प्राण त्याग देने चाहिये। किन्तु मेरे प्राण-त्याग का समाचार जब शंकर जी को मिलेगा तो वे चुप न रहेंगे। यद्यपि उन्हें किसी से द्वेष नहीं है पर दण्ड देना भी उनकी कृपा का ही रूप है। जिस देह का सम्बन्ध आप जैसे व्यक्ति से है उस देह को ले कर अब मैं नहीं लौटूंगी। यदि परिहास में भी शंकर जी कभी मुझे दाक्षायणी कह कर पुकारेंगे तो वह नाम मेरे लिये करोड़ों मृत्युओं के बराबर होगा। इसलिये अब मैं ऐसी देह धारण करूँगी जो उन देवताओं के भी आराध्य शंकर जी के सर्वथा योग्य हो और जिसका सम्बन्ध किसी भी प्रकार दक्ष के नाम से न हो!"

यह कह कर पार्वती जी उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ गयीं और योग के द्वारा उन्होंने प्राणवायु का नियंत्रण किया। उनके शरीर में से एक इतनी उज्ज्वल अग्नि प्रकट हुई जिसकी ओर देखना भी असंभव था। वह अग्नि उन्हें ले कर विलुप्त हो गयी।

यज्ञ की अग्नियाँ धधक कर मण्डप के शिखर छूने लगीं। प्रतीत होता था कि सारी पृथ्वी ही जल जायेगी।

शंकर जी के गण तीव्र गति से कैलाश की ओर चल पड़े।

•••



अनुक्रमणिका

जीवन के किस तत्वज्ञान का अर्क इन लोगों ने पिया है सो भगवान जानें !............

........विशाल सागर तीर है, नारियल के वन हैं, सुपारी के बाग हैं — सब कुछ है परंतु इस उदात्तता को दरिद्रता विलक्षण रिति से काट देती है और फिर बच रहता है एक भयानक विनोद का अभेद्य कवच !

— पु. ल. देशपांडे

रत्नागिरी शहर के उस बीच वाले मुहल्ले में लोकोत्तर पुरुष रहते हैं। परमेश्वर ने उन लोगों का ढांचा एक निराले ही ढंग का बनाया है, उनमें रत्नागिरी के लाल पत्थर के, नारियल कटहल के, खुजाने वाली अर्वी के और खाते ही दम घोंट देनेवाली गीली सुपारी के गुण केन्द्रित हो गये हैं। रत्नागिरी के सीथ में ही ये पिशाचगण छिपे हुए हैं, अथवा वहाँ के पानी में ही आक्सीजन और हाईड्रोजन के साथ और भी कोई वायु मिला दी गयी है, सो रत्नागिरी के विश्वेश्वर ही जानें।

अंतू बरवा इसी भूमि में उगा और पका। वैसे अंतू बरवा की वह उम्र न थी कि उसे अंतू जैसे इकहरे नाम से पुकारा जाय। बारह-तेरह वर्ष पहिले, जब प्रथम बार मैंने उनके दर्शन किये थे उसी समय उनकी दाढ़ी की खूंटियां सफेद हो गयी थीं, कान और सीने के बाल पक गये थे और बहुत सारे दांत भी "अण्णू गोगटे" हो गये थे। "अण्णू गोगटे होना" याने "गिर पड़ना"। यह मुहावरा, अंतू द्वारा मराठी भाषा को प्रदान किया गया उपहार है। रत्नागिरी के अण्णू गोगटे वकील 'मुन्शिपाल्टी' के चुनावों में छः वर्षों से लगातार गिरते आये थे। तब कुएँ में बाल्टी भी गिर पड़ती तो अंतू एकदम चिल्लाकर पूछते–"क्या बाल्टी 'अण्णू' हो गयी रे ?"

अंतू बरवा को उनके मुँह के सामने कोई अंतू नहीं कहता। परंतु बातचीत में जब भी उनका विषय निकलता तो लोग उनका संबोधन अकसर अंतू नाम से करते। बल्कि कोकण में लोग आम तौर पर एक दूसरे को एकवचन में ही संबोधित करते हैं। परंतु अन्तू बरवा 'अन्तू शेट' के नाम से संबोधित होते हैं। इस चितपावन ब्राह्मण से वैश्य की यह पदवी अत्यन्त प्राचीन काल से चिपक गयी है।

अनुक्रमणिका

अंतू बरवा

अंतू ने वह पाप किया था। पहिले महायुद्ध के समय उन्होंने बंदरगाह पर एक दूकान खोली थी और चंद दिनों के बाद ही वह खत्म भी हो गयी थी। लेकिन उन्हें अंतू शेट बनने के लिये यह कारण काफी था।

उसके बाद अंतू ने अपनी उपजीविका के लिए कोई उद्योग किया हो इसका किसी को स्मरण नहीं। परंतु दो जून के भात का उसका कहीं-न-कहीं इंतजाम है। उसके पास थोड़ी जमीन है। बीस-पचीस नारियल के, दस-पंद्रह सुपारी के और कुछ अमरूद के पेड़ हैं। दस-पाँच पेड़ हापूस आम के हैं। कहीं कटहल और इमली के पेड़ भी खड़े हैं। घर के पैतृक विभाजन में एक बरामदा और एक कमरा उसके हिस्से में आया है। कुएँ पर निस्तार करने का हक है। इन सब के सहारे अंतू शेट खड़े हैं।

उन से मेरी पहिली मुलाकात बापू हेगिष्ट की दूकान में हुई थी। मैं वहाँ सिगरेट खरीदने गया था और 'केसरी' की ओट से अपने आधे जस्ते की डंडियों वाले ऐनक को माथे पर खिसकाकर उन्हों ने मुझ से सीधा प्रश्न किया था–

"वकील साहब के दमाद हो न?"

"जी हाँ!"

"क्यों मिस्टर कैसे एक ही झटके में पहचान लिया मैंने? बैठो। बापू...दमाद बाबू के लिये चाय मंगवाबो।"

एकदम इतनी घनिष्ठता प्रस्थापित करनेवाला यह बूढ़ा कौन है यह मैं समझ नहीं पा रहा था। परंतु अंतू सेठ ने ही स्पष्टीकरण कर दिया–"तुम्हारे ससुर हमारे दोस्त हैं। उनसे कह देना कि अंतू बरवा याद कर रहा था—"

"ठीक है।"

"कब आये पूना से?"

"परसों!"

"ठीक। दिवाली के लिये आये होगे? मांगना अब एक बढ़िया फोर्ड गाड़ी! क्या समझे?"

"आपके तो वे दोस्त हैं न? फिर आप ही कह देना उनसे!"

"अरे वाह! पूना के जो हो न बातों में हम से कहीं हार सकते हो? – यहाँ कुछ दिन मुकाम है या सिर्फ फ्लाइंग विजिट है?"

"दो-तीन दिन के बाद चली जाऊंगा।"

"बहुत अच्छे! थोड़े में ही मिठास रहती है। हाँ! कासोपकर वकील के दमाद जैसा न करना। वह पट्ठा छः महीने तक ससुराल में ही डटा था। आखिर कासोपकर वकील ने उससे एक दिन अपना खलियान लिपवाया। अधिक दिन अगर दमाद रहा तो वह दशमग्रह हो जाता है! क्या समझे?"

"ठीक है!"

"अरे बापूशेट, इन्हें पहचाना या नहीं? अपने वकील साहब के दमाद हैं ये। हम दोनों उन्हीं के मुवक्किल हैं, हाँ!"

बापू हेगिष्ट जी ने नमस्ते किया।

"चाय मँगाऊँ?"

"माफ कीजिए। गर्मी बहुत हो रही है।" – मैंने कहा।

"अजी, रत्नागिरी में तो गर्मी होगी ही। मवेशियों के थान में सोनेवाला यदि कहे कि बैलों के मूत की बदबू आती है तो उसकी यह शिकायत व्यर्थ है! 'आखिर का क्या समझे?' को ऊँची आवाज में कहते हुए अंतू शेट बोले – "रत्नागिरी में ठंडी हवा होती तो हमारे शहर को शिमला ही न कहते? परंतु गर्मी की तकलीफ तुम्हारी टेकड़ी पर ही अधिक है। दोपहर को मारो साइकिल पर टांग और सीधे चले जाओ हमारे सुपारी के बाग में सोने के लिये। सुपारी बाग एयरकन्डीशन्ड होता है, हाँ! क्या समझे?" – यथेच्छ हँसते हुए अंतू शेट बोले। और ऊपर से यह भी ठोक दिया कि– यह हमारा कन्ट्री मजाक है, दमाद बाबू। फिर बापू शेट से बोले,–"बापू शेट हमारे मेहमान लेखक हैं–अपने आबा शेट की तरह नाटक लिखे हैं इन्होंने। इन से अधिक बातें न करना। वरना तुमपर भी लिख देंगे एकाध बढ़िया फार्स!"

यह सुनकर कि मेरी कीर्ति अन्तू शेट बरवा तक पहुँच गयी है मुझे जो खुशी हुई थी वह बापू शेट हेगिष्ट के प्रश्न से ठंडी पड़ गयी। मुझे ध्यान से देखते हुए बापू शेट अंतूजी से बोले– "ये क्या करते हैं?"

"क्या करते हैं का मतलब? बापू, तुम कहीं पागल तो नहीं हो गये? निकालो वह रद्दी। दस जगह फोटो के नीचे इनका नाम छपा हुआ दिखेगा तुम्हें। सिनेमा में हैं।"

"क्या कह रहे हो?"— जैसे साक्षात् भगवान के दर्शन हो गये हों ऐसा चेहरा बनाकर मेरी ओर देखते हुए बापू शेट बोले।

श्री. पु. ल. देशपाण्डे :

आप मराठी भाषा के उत्कृष्ट विनोद-लेखक होते हुए भी सफल नाटककार तथा अभिनेता भी हैं। इसके साथ ही सिने-क्षेत्र में भी आपने अपनी सुकीर्ति अर्जित की है।

'दीपावली' ने आपकी रचनाएँ अपने सुविज्ञ पाठकों के समक्ष कई बार प्रस्तुत की हैं, अतः इनके लिए ये नये नहीं।...आजकल आप 'आकाशवाणी' दिल्ली में हैं।

क्यों दमाद बाबू एक बात पूछूं ?'' किसी शैतानी-भरे प्रश्न का श्रीगणेश हो रहा है ऐसा मुझे उनके चेहरे पर से नजर आता।

"पूछिये—"

"एक सिनेमा बनाते हो तो उसमें कितना मिल जाता है तुम्हें ?"

मैं कोंकण में पहिली बार ही नहीं आया था। इसलिए ऐसे प्रश्नों का मुझे अभ्यास हो गया था।

"यह सिनेमा-सिनेमा पर अवलंबित होता है..."

"नहीं, पर हमने पढ़ा है कि लाख-डेढ़ लाख मिल जाता है...?"

"मराठी सिनेमा में इतने कहाँ धरे हैं ?"

"खैर !-पर पाँच शून्य नहीं, फिर भी तीन शून्य तो पड़ ही जाते होंगे..."

"हाँ, पड़ जाते हैं कभी-कभी, डूब भी जाते हैं।"

"अजी, यह तो होता ही रहता है। जहाँ धंधा है, वहाँ चढ़ते भी हैं और डूबते भी हैं—और भी एक प्रश्न पूछूँ क्या ?—अगर नाराज न हों तो—"

"छिः ! नाराज होने की जरूरत क्या ?"

"सिनेमा की अभिनेत्रियों के बारे में हम यह जो कुछ पढ़ते हैं, सच होता है या कि हमारे गंगाधर शेट के असली बेलगांव के मक्खन सरीखा आटा मिला हुआ ?"

"यह 'जो कुछ' का क्या मतलब ?" – मैं यूं ही अनजान बन गया।

"दमाद बाबू, बड़े उस्ताद हो यार ! अदालत में गवाह की हैसियत से अच्छा नाम कमाओगे ! अजी, 'यह जो कुछ' याने – जिसे तर्जनी-नासिका-न्याय कहते हैं उसी का प्रकार है वह !' तर्जनी-नासिका-न्याय क्या बला है यह जल्दी मेरी समझ में न आया। अंत में अंतू शेट ने अपनी तर्जनी नथुनी से लगाकर अभिनय के साथ उसका स्पष्टीकरण किया। इसी समय बापू शेट द्वारा मँगायी गयी चाय आयी। 'लो' – कहकर अंतू शेट ने मेरे हाथ में कप थमा दिया और उस चाय वाले से बोले, – क्यों रे झंप्या, रत्नांगिरी की समस्त भैंसें क्या एकदम ही गाभन हो गयी हैं रे ?" ऐसा कहकर उन्होंने चाय के रंग पर अभिप्राय प्रकट किया और बसी में चाय उँडेलकर फुर्र-फुर्र करके फूकने लगे। वास्तव में उस चाय वाले छोकरे से वे यह सीधा कह सकते थे कि चाय में दूध कम पड़ा है। परंतु अंतू शेट ही नहीं बल्कि उनका सारा मुहल्ला ही इसी तरह टेढ़ा बोला करता था।

अंतू शेट से मेरा परिचय अब पुराना हो गया था। पिछले दस-बारह वर्षों में मैं जितनी भी बार रत्नागिरी गया उतनी ही बार मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझे अपने अड्डे में भरती कर लिया था। एक-दो बार मुझे गंजीफा सिखाने की भी उन्होंने कोशिश की थी और उन साठ के आसपास खड़े हुए बूढ़ों के अड्डे में मैंने फिर अंतू शेट और उनके साथियों का जीवन-विषयक प्रखर तत्वज्ञान खूब जी भरकर सुना। उनकी विशेष परिभाषा मुझे वहाँ मालूम हुई। काँधे पर कुरता, कमर में कछनी, पैरों में चरमराने वाले चप्पल, एक हाथ में डंडा और दूसरे में कटहल, इस ठाठ से ये लोग घर-घर जाकर-क्यों रे गोविंदाभट, खेलता है दो दांव, अथवा क्यों रे परांजपे, जाग रहा है या हो गया अजगर !" इस तरह पुकारते हुए गंजीफा खेलने के लिये अपने साझियों को इकठ्ठा करते। इन्हीं लोगों में मैं भी भटक गया था। कभी गंजीफा का खेल अगर रंग पर न आता तो ताश फेंक कर अंतू शेट फरमाते-"दमाद बाबू-छेड़ो एकाध मालकंस, गडबोले थोड़ा पीट अपना तबला मेहमान के साथ, खातू शेट निकालो अपना खोका।" इस तरह की फरमाईश के बाद मैं भी आवाज साफ कर लिया करता। "तुम्हारे गले में बड़ी लज्जत है भई !"—यह दाद मुझे वहीं मिलती।

साल-दो साल में एकाध चक्कर रत्नागिरी का लग जाता। हर चक्कर में उस अड्डे के एकाध मेंबर की मृत्यु का समाचार मिलता।

"अंतू शेट, इस बार दामू शेट नहीं दिख रहे हैं कहीं ?"

"कौन ? दामू नेने ? बड़े मजे में है वह। ऊपर रंभा उसकी चांद पर तेल थाप रही है और ऊर्वशी पंखेसे हवा झल रही है उसे।"

"मतलब ?"

"अजी मतलब क्या ? दामू नेने का रत्नांगिरी से तबादला हो गया।" ऐसा कहकर अंतू शेट ने आकाश की ओर अंगुली दिखायी।

"अरे अरे अरे! मुझे पता ही न चला।"

"अजी पता कैसे चलेगा? दामू नेने स्वर्गवासी हो गये इसलिए क्या रेडियो में समाचार दिया जायगा? 'केसरी' में आया था 'गृहसंसार' कालम के नीचे छपकर। बड़े मिलनसार स्नेहशील और, धर्मपरायण थे–ऐसा छपा था उनके बारे में! अरे भई, छापनेवाले को क्या? जो उन्हें दो वही छाप देंगे वे। दामू नेने को कौन स्नेहशील कहेगा भला? अर्थी पर पड़ा था पर माथे की शिकन ज्यों–की त्यों कायम थी। एक रात को घर में गर्मी हो रही थी इसलिए खलियान में जाकर सोया था और सुबह वहीं खत्म हो गया हुआ दिखायी दिया। बड़ा पुण्यवान मनुष्य! पिछले असाढ़ में चला गया वैकुंठलोक। रत्नागिरी में दो पालकियां निकली थीं आषाढ़ी एकादशी को—एक विठोबा की और दूसरी दामू नेने की—आषाढ़ में वह गया और विजयादशमी के दिन हमारे दत्तू परांजपे ने सीमोल्लंघन किया। उसकी पूरी देह सोने की हो गयी–एक गया, दूसरा गया–अब तीसरे की राह देख रहा हूँ।"–शरारत से कन्धे उड़ाते हुए अंतू शेट बोले।

पांच फुट के भीतर–बाहर उँचाई, लाल गोरा वर्ण, चेहरे पर माता के सूक्ष्म दाग, कंजी और मिचमिची आँखें अवस्थानुसार बढ़ रहीं झुर्रियां, सिर पर ईशान-नैऋत्य दिखानेवाली तेल के पट्टों से अंकित टोपी, बदन में अंगरखा, कमर में घुटने तक पहुँचनेवाली कछनी, पैर में कोकणी चप्पल, दाँतों की आधी पंगत उठ जानेके कारण खुले मसूड़ों से जीभ लगाकर बोलने की आदत–और इस सारी साज–सज्जा के साथ वजन करीब सौ पौंड–इन सारी जरा–जीर्ण होती जा रही बातों में एक बात बिल्कुल ताजी याने सानुनासिक, किंतु सुस्पष्ट आवाज और पीढ़ियों से लगाते आ रहे नारियल के तैल के द्वारा प्राप्त वंश-परंपरागत 'तैल' बुद्धि! अंतू शेट ही नहीं बल्कि उस मुहल्ले के उस उम्र के सभी नमूने कम–अधिक फर्क से, एक ही ढंग के और एक ही बेढंग के। भाषा में सर्प की तरह एकदम मुड़कर पैरों को डस लेने की आदत पड़ी हुई! किसी का भला हो तो सुख नहीं, बुरा हो तो रंज नहीं। किसी का जन्म हो तो आनंद नहीं और कोई मर जाय तो उसका सूतक नहीं। गाने से रुचि नहीं–घृणा भी नहीं। खाने में स्वाद की अपेक्षा पेट भरना ही स्वच्छ उद्देश्य! जीवन की गाड़ी में ओंगन नहीं रहा तो कभी चर्रायी नहीं–और रहा तो कभी वेग से भागी नहीं। लेकिन चाल अलबत्ता कोकण की सड़कों की तरह सदा सर्पाकार। भाग्य में अश्वत्थामा के घर की आटे के दूध की कटोरी। उसके घर आटे का दूध हुआ। यहां भगवान ने नारियल का कल्प-वृक्ष दिया है। परंतु उसके भीतर की गिरी के बदले हमेशा 'करोटि' ही इनके हाथ में–नारियल की खोपड़ी से ही इनकी बड़ी घनिष्ठता!

गर्मियों में बंबई की एक दोयम दरजे की कोई नाटक मंडली "एकचे प्याला"[१] लेकर आयी थी। थियेटर टट्टी का बना था। सामग्री और एक्टर भी जैसे जुटाकर लाये गये थे। पहिला अंक खत्म हुआ। बाहर सोडे की बोतलें चीखने लगीं। किटसन की रोशनी में अंतू शेट की मूर्ति दिखायी दी। वे फरकेप वाले मॅनेजर से उलझ गये गये थे।

"कैसी क्या भीड़ है भीतर?"



काममें दासी, सम्भोगमें वेश्या, भोजन कराते समय जननी और विपद्में बुद्धि देनेवाली ही स्त्री है। ऐसी स्त्री संसार में दुर्लभ है।

"ठीक ही है।"

"तुम्हारा प्लैन तो खाली दिख रहा है। मुझे जाने देते हो आधे टिकट में..."

"नहीं–नहीं। हटो यहाँ से!"

अरे, यूं "नहीं नहीं" कहकर छिपकली की तरह मुझे क्यों झिटकार रहे हो? पहिला अंक में यहीं से सुन चुका हूँ। तुम्हारी सिंधु[२] के अभिनय में कोई दम नहीं जाना पड़ता— "लागे हृदयीं हुरहुर"[३] तो बहुत ही भद्दा गाया उसने—कभी बाल गंधर्व[४] का सुना था यह गाना?" हमेशा की तरह अंत में "क्या समझे" की बंदूक दागते हुए अंतू शेट बोले।

मैनेजर भी उखड़ पड़ा। बोला,–"मेरा आप से कोई आग्रह नहीं कि आप भीतर जाकर हमारा नाटक देखें—"

"शहर में जगह–जगह पर आग्रह के बोर्ड जो लगा रखें हैं तुमने—और कल घर–घर विज्ञापन–रूपी निमंत्रण लेकर जो घूम रहे थे तुम्हारे बैंडवाले! अजी, वैसे भी खाली कुर्सियां को दिखा रहे हो–देखो, चार आने में जमा सकते हो, तो जमाओ!"

"चार आने में दिखाने के लिए यह क्या मदारी का खेल है जी?"

"अजी, वह लाख दरजे अच्छा! पहिले वह खेल दिखा देता है और फिर थाली घुमाता है–तुम भी वैसा करो। सिंधु का आगे का गाना–"कशि या त्यजूं" (इसे कैसे छोड़ूं) अगर मस्त जमा, तो थाली में चार आने और डाल दूँगा—"। आसपास के लोग हँस पड़े

१. मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यिक, कवि और नाटककार स्व. श्री राम गणेश गडकरी द्वारा मद्यपान के दुष्परिणामों पर लिखा गया एक अत्यन्त प्रभावशाली और लोकप्रिय नाटक–एक ही प्याला.

२. उपरोक्त नाटक की नायिका

३ उपरोक्त नाटक में सिंधु द्वारा गाया जानेवाला एक गीत–हृदय चिन्तित हो रहा है।

४ बाल गंधर्व नाटक मंडली के संचालक श्री नारायण राव राजहंस। उपरोक्त नाटक में सिंधु का उत्कृष्ट अभिनय करनेवाले गायक नट।

और मॅनेजर का पारा और ऊपर चढ़ गया। इसी समय अंतू शेट की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी।

"नमस्ते दमाद बाबू—"

"नमस्ते।"

"क्यों, कैसा क्या जम रहा है 'एकच प्याला'?"

"अच्छा है।"

"क्या मुफ्त में पास लेकर आये हो? वैसे तुम भी तो इन्हीं में के हो। एक नाई दूसरे नाई से हजामत के दाम नहीं लेता।"

"नहीं शेट, यह देखो टिकट है मेरे पास!"

"हाँ। तब ठीक है। इसीलिए दबी जबान से राय दी तुमने। "पैसे जो गिने हैं! सिंधु का पार्ट करनेवाला तो एकदम कन्डम है—"

"अजी, सिंधु का पार्ट करनेवाला कोई मर्द नहीं, वह औरत है जो सिंधु का काम कर रही है—"

"क्या कह रहे हो? न उसकी आवाज में कोई दम है और न उसकी सूरत-शकल ही में कोई जान है। अगर म-न पर ले ले तो सुधाकर (नाटक का नायक) को अपनी गोद में उठा लेगी—अजी सिंधु काहे की—मालवण का खासा सिंधु दुर्ग है वह—"

"शायद नाटक देखा है आपने?"

"हाँ। यूं ही थोडा-सा उस कोने के दो टट्टे जरा हटाकर थोड़ी देर देखा था—ऊँह! बिलकुल रद्दी-इससे तो नौटंकी अच्छी—"

कोई कारण न होते हुए अपनी राय की एक पीक थूंककर अंतू शेट चल दिये। मगर दिन रात ऐसी 'पी कें' थूकने में ही उनकी जिंदगी कटी। अंतू शेट से अब मेरा बहुत दिनों का परिचय हो गया था। परंतु उनकी पारिवारिक परिस्थिति के बारे में मुझे विशेष जानकारी कभी न मिल पायी। उन्हीं के अड्डे के अण्णा सानेने सिर्फ एक बार ही कुछ जानकारी दी थी। किसी समय एक बार उनकी बातों के सिलसिले में अंतू शेट के लड़के का विषय निकल पड़ा था।

"अच्छा, अंतू शेट के लड़का भी है?"

"हाँ। कलेक्टर है वह।"

"कलेक्टर?"

"भायकला स्टेशन पर टिकट इकट्ठा किया करता है।" चेहरे की झुर्री को बिना हिलाये अण्णा बोले।

"तो क्या वह अपने बाप को कुछ मदद नहीं देता?"

"अजी देता है कभी-कभी—आखिर उसके भी तो बाल-बच्चे हैं। और ऊपर से बी. बी. सी. आई. से जी. आई. पी. का डिब्बा जुड़ा हुआ है—"

इस अड्डे के ऐसे विशेष शब्दों का संग्रह करें तो एक स्वतंत्र कोष बन जायगा। 'बी. बी. सी. आई. से जी. आई. पी. का डिब्बा जुड़ा हुआ है' का मतलब है अन्तर्जातीय विवाह-यह समझने के लिये मुझे कुछ देर लगी।

"समझ गये न? वहाँ अंतू शेट के स्नान-संध्या की बड़ी मुश्किल होती है—ऐसा भी सुना है कि उसके घर दूसरी भी बहुत-सी बातें चलती रहती हैं। हमारे अंतू शेट का वहाँ कैसे निभाव हो सकता है? एक बार सारा अपमान निगलकर नाती का मुँह देखने गया था—दसहरा और दिवाली पर अंतू बरवा को मिल जाती है मनी-आर्डर से पितृ-प्रेम की 'बख्शिश'-दस-पाँच रुपये! उसी में मस्त होकर मूँछों में कोकम लगाकर घूमता है अकड़ से यह कहता हुआ कि घी चुपड़ा है। और जेब में हाथ डाले रेजगारी यूं ही खनखनाता रहता है चार दिन-!

"अरे भई, टिकट-कलेक्टर को आखिर वेतन [illegible] कितना मिलता होगा?"

"वेतन तो मुआफिक ही है। पर सुनता हूँ कि चवन्नी-अठन्नी के आनमन होते रहते हैं—सच-झूठ भगवान जानें! और फिर यह तो चलता ही रहता है! लेता है रिश्वत तो लिया करे-क्या समझे? अजी, आठ आने की रिश्वत लेनेवाले की चौखाने का मुकुट पहिनाकर रत्नागिरी के जेल में बंद कर देते हैं और अगर कोई एक लाख रुपये की रिश्वत लेकर खा जाय तो सिर पर गांधी टोपी पहिनाकर उसे भेज देते हैं असेम्बली में! लोकनियुक्त प्रतिनिधि!"

राजनीति तो अंतू शेट के अड्डे का बड़ा प्रिय विषय रहता! प्रत्येक राजनैतिक नेता और तत्वप्रणाली पर बिलकुल मौलिक विचार! कोकण में अकाल पड़ा था। वैसे अकाल वहाँ हमेशा ही रहता है। अंतू शेट की भाषा में 'फेमिन एक्ट' के मुताबिक पास हुआ अकाल था! अकाल-ग्रस्त क्षेत्र में नेहरूजी दौरा कर रहे थे। शहर में बड़ी धूमधाम थी। किसी ने शाम को अंतू से पूछा,- "क्यों अंतू शेट भाषण में कहीं दिखें नहीं?"

"किसके! नेहरू के? अरे हटाओ, वहाँ अकाल पड़ा है-तो भाषण काहे के देता है? चावल लाकर दे। यह तो वही किस्सा हुआ कि भाटे की खाड़ी में डूब रहे मछुवे को विश्वेश्वर की घाटी पर खड़े होकर कुरान पढ़कर सुनाये! वह उधर चिल्ला रहा है और यह इधर—इसका उसे फायदा नहीं-न उसका इसे। तुम हो बेवकूफ!-आया नेहरू तो चले देखने! और रत्नागिरी में उसे दिखाया क्या? तो वह कमरा और खटिया जिस पर बाल गंगाधर तिलक पैदा हुए थे। गंगाधरपंत तिलक को क्या स्वप्न में दृष्टान्त हुआ था क्या रे, कि उसकी औरत के पेट से लोकमान्य पैदा होंगे? किसी की भी खटिया लाकर दिखा दी और मार दी गप्प कि तिलक ने पहिला 'ट्याँ' इस खटिया पर किया था! इसका सबूत क्या? क्या तिलक की माँ की जचकी करनेवाली दाई थी गवाह में? बच्चा तिलक के कपड़े! सौ साल हो गए उसे पैदा हुए! क्या तुम्हारी माँ तुम्हें वह कमरा और खटिया बता देगी जहाँ तुम पैदा हुए थे? जाओ, घर जाकर बुढ़िया से पूछो पहिले और फिर आकर बताना मुझे तिलक और नेहरू की बातें!..."

मेरे सामने हमेशा यह सवाल पैदा होता कि आखिर इन लोगों के आदर के स्थान कौन से हैं? शहर में यदि कोई पंडित आता तो उसे पढ़ा-लिखा, पर व्यवहार-शून्य कहकर उड़ा देते। कहते- "उससे यदि बाजार में जाकर एक पैसे के नीबू लाने को कहो तो वह स्तंभ के पास की लाइब्रेरी में जायगा और वहाँ नीबू माँगेगा।"

यह सुनने पर कि किसी का लड़का प्रोफेसर हो गया है, अंतू शेट कहते- "अजी सरकस में क्या? पहिले एक छत्रे प्रोफेसर थे अब दूसरे हो गये।" कोई नयी दूकान खोले तो उसे 'दिवालिया बनने की अभी से दरख्वास्त लिखकर तैयार रख ले'-यह आशीर्वाद!

अनुक्रमणिका

जीवन के किस तत्वज्ञान का अर्क इन लोगों ने पिया है सो भगवान जानें! उसमें के आधे से अधिक लोग मनीआर्डरों पर जीते हैं और उस में से पैसे बचाकर मुकद्दमे लड़ते हैं। प्रत्येक की पेशी बंधी हुई। विशाल सागर तीर है, नारियल के बन हैं, सुपारी के ब[illegible] सब कुछ है परंतु इस उदात्तता को दरिद्रता विलक्षण रीति से काट देती है और फिर बच रहता है एक भयानक विनोद का अभेद्य कवच!

किसी पर से गांधीजी की बातें निकल पड़ीं। अंतू शेट ने अपना भाष्य शुरू किया, "अजी कहाँ का गांधी लिये बैठे हो? दुनियाभर घूमा, पर रत्नागिरी न आया, बड़ा घाघ है! वह अच्छी तरह जानता है कि यहाँ उसकी कछनी और दांडी की कोई सराहना न होगी – हम सभी कछनीवाले हैं और उससे भी ज्यादा उघाड़े। सूत कातने में कोई जान नहीं! हमारा शंभू भट जन्म-भर जनेऊ के लिये सूत कातता रहा। ब्रिटिश सरकार को तो छोड़ो, पर हमारी रत्नांगिरी का गिलगन कलेक्टर भी उससे नहीं घबराया! गांधी का तीसरा हथियार है उपवास! यहाँ आधा कोकण भूखा है! जो हमेशा घी-चुपड़ी खाते हो वही उपवास करनेवाले की सराहना कर सकते हैं — हम उसकी सराहना क्यों करें? नहीं मैं यह मानता हूँ कि गांधी बड़ा होगा — पर हमारे हिसाब से उस बड़प्पन को लिखें किस खाते पर? और अगर स्वराज्य की बात कहो तो उसका संबंध गांधी से भी नहीं, तिलक से भी नहीं, सावरकर से भी नहीं।"

"तो क्या स्वराज्य आसमान से टपक पड़ा?"

"वह कहाँ से टपका यह तुम जाँचते रहो! परंतु अंग्रेज गये ऊबकर; अजी उनके लूटने लायक यहाँ बचा ही क्या था? धंधा डूबने लगा-फूक दिया दिवाला! कुम्हार घड़े उठाकर चल दिया, अब तुम घूरा फूंको। यह सब चक्रनेमिक्रमेण वाली बात है — शासन अंग्रेजों का नहीं, नेहरू का नहीं और जनता का नहीं — शासन है विश्वेश्वर का!

"फिर तुम्हारे विश्वेश्वर अंग्रेजों के अधिकार में कैसे चले गये?"

"क्या पागल हो गये हो तुम लोग? विश्वेश्वर तो पक्के जमे हुए हैं अपने आसन पर! अजी, उन्होंने यह खेल दिखाया —"

"डेढ़ सौ वर्षों की गुलामी का भी कोई खेल है?'

"अजी डेढ़ सौ वर्ष हैं तुम्हारे लिये! विधाता की रिष्टवाच का कांटा हजार वर्ष बीते बिना एक सेकंड से भी आगे नहीं सरकता!"

कोकण के उस बीचवाले मुहल्ले के बरामदों में जिसके आसपास नारियल के पेड़ों की काली आकृतियाँ हिलती रहती हैं, लालटेन की रोशनी में, जब वे थके हुए-सूखे हुए मुंह यह तत्वज्ञान बताने लगते हैं, तों कलेजा काँप उठता है—

"अजी, समाजवाद की कोरी गप्पें! अजी एक आम का पत्ता भी दूसरे के समान नहीं होता—विधाता के कारखाने का हर बर्तन भिन्न होता है—सब मनुष्यों के भाग्य एक समान कैसे हो सकते हैं? घड़ी-भर के लिये मान लो, आ गया तुम्हारा समाजवाद — हमारे रत्नांगिरी का वह नगरगांधी सीटिया बजा-बजाकर कहता है उस तरह मान लो आ गयी कोकण रेल्वे और चली गयी पांडू गुरव के पिछवाड़े—तो क्या इसके कारण ठूंठ पांडू के कन्धों से हाथ के खूँट निकल आयेंगे—और जो जोते उसकी जमीन और जिसे दिखे उसकी थैली ऐसे तुम्हारे राज्य में बिना हाथों का पांडू जोतेगा क्या और कैसे? वह जैसा है वैसा ही रहेगा। स्वराज्य आ जाने से हरि साठे की कानी आँख ठीक नहीं हो गयी और न महादेव गोडबोले की तोंद भीतर धँसी! यह उन्नीस-बीस बना ही रहेगा समाज में! अरे भई, रामराज्य में भी हनुमानजी की दुम उखाड़कर रामचन्द्रजी ने अपनी पीठ में नहीं लगा ली थी-वे नर ही रहे और ये बन्दर ही रहे—"

ऐसे समय अंतू शेट की जिह्वा पर सरस्वती नाचती है।

"ठीक है!"-मैंने कहा।

"देखो भई, उस श्यामराव मुरकुटे की तरह मुँह-देखी ठीक न कहो। अगर मुझ से गलती हुई है तो मेरे कान खींचो। तुम उम्र में जरूर मुझ से छोटे हो, पर शिक्षा में बड़े हो—"

अंतू शेट के ऐसे भाषण में केवल कुटिल विनोद नहीं होता-उनके मन में कहीं कुछ चुभता रहता है।

पिछले चार-पांच वर्ष में बहुत बार रत्नागिरी जा ही न पाया था। अब वहाँ बिजली आ गयी थी। कालेज खुल गया था। सड़कें डामर की ही गयी थीं। दो-तीन साल पहिले जब मैं गया था, तब अंतू शेट से कहा—

"अंतू शेट, आप की रत्नागिरी तो अब झकाझक हो गयी है। बिजली की रोशनी आ गयी। आपने अपने घर में बिजली ली या नहीं?"

"नहीं भई, हमारे घर में जो अँधेरा है वही अच्छा है! कल अगर झकाझक प्रकाश आ गया तो देखूँगा क्या? आखिर गरीबी ही न? उखड़ा हुआ फर्श, गिरी हुई दीवालें और चूनेवाले कवेलूओं

क्या आपने केवल पैसे के लिए मुझ से शादी की?



अनुक्रमणिका



यह एक राय थी किस साधु पुरुष की, मैं नहीं जानता, कि दुनियामें केवल एक अच्छी स्त्री है; और उसकी सलाह थी कि हर विवाहित आदमी को सोचना चाहिए कि उसकी पत्नी ही वह है।

को देखने के लिए बिजली की क्या जरूरत ? हमारा दारिद्य अंधकार में छिपा रहे यही अच्छा है!" अंतू दिल खोल-खोल कर हँस पड़े। इस बार उनके प्रायः सभी दाँत 'अण्णू गोगटे' हुए दिखायी दिये। इसके सिवा अड्डे के और भी एक-दो लोग 'निजधाम' चल दिये थे ऐसा पता चला।

कारुण्य और मिठास की एक ऐसी झलक जो कभी नहीं देखी थी वह अंतू की बातों में मुझे इस बार दीख पड़ी। अड्डे के खाली स्थान उनके मन के किसी कोने में घर बना लेते होंगे। एक दिन वे स्वयं बोले - "जोगलेकर के लड़के शंभू का ऊंचे पद पर दिल्ली तबादला हो गया। बूढ़े को काशी - विश्वेश्वर, ऋषिकेश, हरिद्वार आदि तीर्थ करा लाया था और यात्रा से लौटने पर शानदार प्रीतिभोज दिया था उसने! गंगाजल की छोटी-सी लुटिया सीलबंद करके याद से ले आया था मेरे लिये! अब की बार तुम आओगे तब उसकी सील तोड़ी जाकर वह लुटिया हमारे मुँह में औंधी हुई मिलेगी तुम्हें दमाद बाबू ..." पहिली भेट का संबोधन अब तक कायम था

इस के बाद गत वर्ष ही रत्नागिरी जाने का संयोग आया। अंतू शेट के घर की गंगाजल की लुटिया सौभाग्य से सीलबंद ही रखी थी

"वाह-वाह! कान्ग्रेच्युलेशन्स दमाद बाबू! हमें पता चल गया! आप इंगलैण्ड जा रहे हैं। एक रिक्वेस्ट है। हाँ, अब तुम से अंग्रेजी में बातें करनी चाहिए-"

"कैसी रिक्वेस्ट ?"

"कोहनूर हीरा देख आना। मेरी अपनी एक वही इच्छा रह गयी है। मेरे पिंड को कौवा न छुये तो 'कोहनूर' 'कोहनूर' कहना। छू लेगा। वापिस आने पर मुझे बताना कि कैसा दिखता है कोहनूर ? लंदन-पेरिस सब कुछ देख आना।" मेरे मन में यूं ही आया कि उनके पैर पडूं। मैंने सड़क ही में झुककर उन्हें नमस्कार किया।

"चिरंजीव हो। श्रद्धालु हो इसीलिए तुम्हें यश मिल रहा है ओर सदा मिलता रहेगा।"

मैंने बिदा ली और मुश्किल से चार कदम ही गया था कि फिर पुकार सुनाई पड़ी—

"अजी दमाद बाबू —"

"कहिये शेट ?"

"क्या अकेले जा रहे हो या पत्नी को भी ले जा रहे हो अपने साथ ?"

"हम दोनों ही जा रहे हैं।"

"यह अच्छा किया - यूं ही एक कीडा बिलबिलाने लगा था दिमाग में। सोचा विदेश में शिक्षा ग्रहण करने जा रहे हो - देवयानी की कथा याद हो आयी — क्या समझे ? हमारी बेटी को भी आशीर्वाद कह देना। तुम्हारा भाग्य उसी के कारण है। सिर्फ तुम्हें ही बताता हूँ। मन ही में रखना। कहीं कहना नहीं। चालीस साल पहिले हमारी 'वह' गयी - तब से घर के सामनेवाले हापूस की आज तक मौर नहीं आया — किसी समय हमने उसी पेड़ से सैंकड़ों आम लिये थे - परंतु देखो भाग्य किस राह से चला जाता है। खैर, सकुशल जाओ - यहाँ से प्रयाण कब है ?"

"कल सुबह एस. टी. बस से जाऊँगा।"

"क्या डायरेक्ट बंबई ?"

"जी हाँ!"

"यह अच्छा किया! एक बार जहाँ यह सफर हो गया कि उस हिम्मत पर मनुष्य पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है— परसों तात्या जोग हो आया है बंबई एस. टी. की बस से—अभी तक हड्डियों का हिसाब जमा रहा है—कहता है दो-चार हड्डियाँ कम मालूम होती हैं उस ढाँचे में—" अंतू शेट समूचा मुँह खोलकर हँस रहे थे। अब उस मुँह में केवल एक दाँत टिमटिमा रहा था।

सुबह पाँच बजे एस. टी. स्टेंड पर अंतू शेट की स्पष्ट पुकार सुनायी दी-"दमाद बाबू।" मैं चकित ही हो गया। उन्हों ने वैद्य की पुड़िया की तरह एक पुड़िया मुझे थमा दी।

मैं जानता हूँ कि तुम्हें इन बातों में विश्वास नहीं। पर यह पुड़िया पड़ी रहने दो अपने जेब में-विश्वेश्वर की भभूत है। वकील साहब से मालूम हुआ कि हवाई जहाज से जा रहे हो-यह पुड़ियाँ तुम्हारी जेब के लिए भारी न होगी—"

एस. टी. छूटी और अंतू शेट ने हमारे कुटुम्बियों के साथ अपने कुरते से अपनी मिचमिची आँखें पोंछीं। उस धुँधली प्रकाश में पीठ से लगा उनका खोखला पेट मेरी आँखों पर यूं ही आघात करने लगा।

कोकण के कटहल की तरह वहाँ के मनुष्यों में भी जब तब वे खूब अच्छी तरह पक नहीं जाते तब तक मिठास नहीं आती उनमें!

रूपा: - **रा. र. सर्वटे**

•••



मीरा का हाथ पकड़कर खींचते हुए प्रणति बनावटी क्रोध में बोली —"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। बस, खबरदार जो एक भी शब्द और निकाला मुँह से, तो। अब तू जा सकती है।"

मँगर

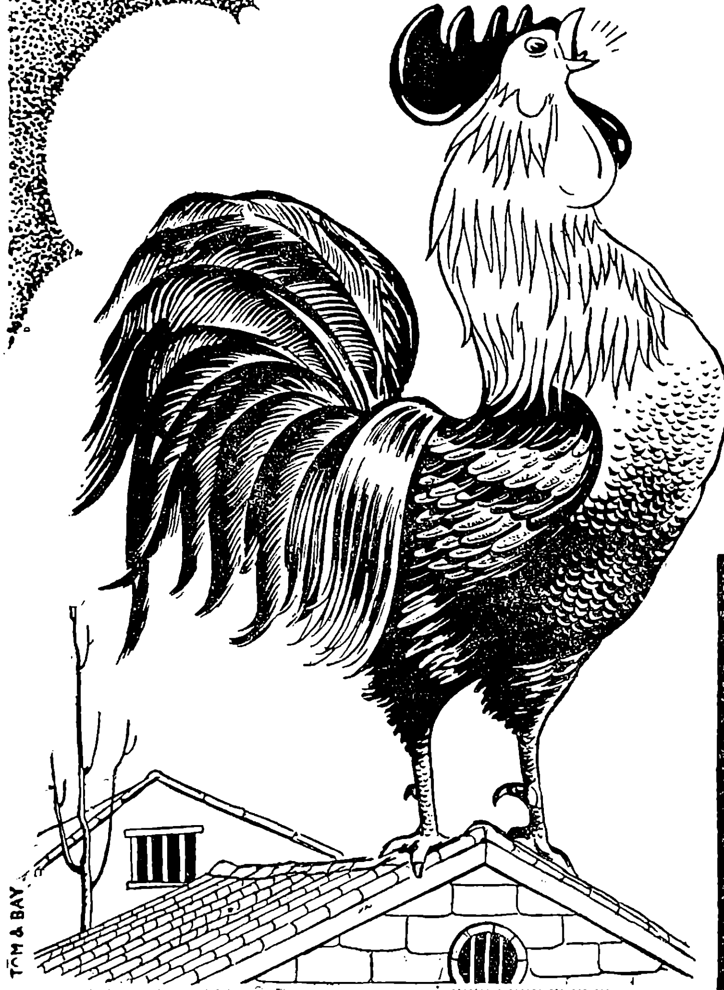
मोहन सिंह नागर

टेलीफ़ोन-एक्सचेंज के सामने पहुँचकर सहसा मीरा के पाँव रुक गए। नज़र भर कर उसने ऊपर से नीचे तक उसको निहारा। उसे लगा जैसे पिछले २-२॥ वर्षों के आँधी-पानी और सर्दी-गर्मी को सहते-सहते इस नई इमारत का चेहरा भी कुछ म्लान-सा हो गया है। फिर उसकी निगाह सदर दरवाजे के भारी-भरकम किंवाड़ों पर गयी। इनकी चमक और रंग-रोगन भी काफ़ी फीके पड़ गए थे।

आगे बढ़कर उसने सीढ़ी पर पाँव रखा। जिधर उसकी नजर जाती गंदगी और मैलापन ही दिखाई पड़ते। उसे यह सब बड़ा विरक्तिकर लगा। इस भवन से उसे ऐसा मोह हो गया था, मानो वह उसका अपना ही घर हो। पर...

तेजी से सीढियाँ चढ़कर जब वह ऊपर के हाल के द्वार पर पहुँची, तो देहलीज पर ही रुक कर उसने भीतर झाँका। कई लड़कियाँ बड़ी फुर्ती से इधर से उधर आ-जा रही थीं। कई बोर्ड पर मशीन की-सी यांत्रिकता के साथ काम कर रही थीं। उसने एक-एक को पहचान ने की, कोशिश की, पर जैसे कोई परिचित चेहरा नज़र ही नहीं आ रहा था।

कोंबडा छाप सिन्नर बिडी





चांडक ब्रदर्स मु. सिन्नर (नाशिक)

CB/M-2/59

अनुक्रमणिका

इसी समय दोनों हाथों में कुछ कागज लेकर हालके बीच से गुजरती हुई एक लड़की ने उसकी ओर बढ़कर पूछा—" तुम किसे देख रही हो, बहन ? क्या किसी से मिलना है ? "

" हाँ,...आँ...हाँ—सकपका कर एक फीकी-सी मुस्कराहट के साथ मीरा ने कहा—" क्या प्रणति यानी प्रणति मुखर्जी अब यहाँ काम नहीं करती हैं ? "

" ओः प्रणति दी ! "—हँसकर एक लंबी साँस लेते हुए उस लड़की ने कहा—" हाँ, हाँ, जरूर करती हैं । पर अब वे टेलीफोन-ऑपरेटर नहीं, सुपरवाइजर हो गयी हैं । वह दाहिने हाथवाला आखरी कमरा उन्हीं का है । "

" अच्छा, धन्यवाद । "-कहकर मीरा प्रणति के कमरे की ओर बढ गयी ।

पर दाहिने हाथवाले आखरी कमरे के पास पहुँच दरवाजे पर 'श्रीमती प्रणति चक्रवर्ती' की तख्ती लगी देखकर एक क्षण को वह ठिठकी । सोचा, कहीं यह कोई और ही प्रणति तो नहीं है, क्यों कि उसकी साथिन तो प्रणति मुखर्जी थी । फिर उसने सोचा कि जो भी हो, जब यहाँ आ ही गयी, तो एक बार देख लेने में हर्ज ही क्या है ? सो उसने साहस बटोर दरवाजे को जरा-सा भीतर की तरफ़ ठेलकर कमरे में झाँका । देखा, सामने ही एक युवती सिर नीचा मेज पर फैले कुछ कागजों को देख रही है । उसकी माँग में सिन्दूर भरा था और करीने से बाँधे गए काले चिकने बालों के जूड़े में एक फूल खुँसा था । बाईं कलाई में सोने की कई चूड़ियों के बीच में एक सुंदर सुनहली रिस्टवाच बँधी थी और दाहिनी कलाई में सोने का एक मोटा-सा कंगन था । अभी मीरा सोच ही रही थी कि कमरे में दाखिल हो या नहीं, इसी बीच भीतर बैठी हुई युवती ने पास रखे टेलीफ़ोन का चोंगा उठाकर कान से लगाया और गर्दन ऊँची की । ज्यों ही उसकी निगाह अधखुले दरवाजे से झाँकती हुई मीरा के चेहरे की ओर गयी, त्योंही उसके मुँह से निकला-" कौन...मीरा ? "

मीरा ने दरवाजा पूरा खोलकर मुस्कराते हुए कमरे में प्रवेश किया । उसे देखते ही युवती का चेहरा खिल उठा । उसने टेलीफ़ोन का चोंगा यथास्थान रख दिया और अपनी कुर्सी पर से उठकर तेजी से मीरा के पास आ उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर दबाते हुए कहा—" मीरी ! तू ! आज इतने दिनों बाद भला कैसे रास्ता भूल पड़ी ? "

मीरा की जैसे जान में जान आयी । उसकी आँखें चौड़ी हो गयीं । एक क्षण उसने गौर से प्रणति के चेहरे को देखा । फिर अपने दोनों हाथों को उसके हाथों की पकड़ से छुड़ाकर प्रणति से लिपट गयी । उसका हृदय तेजी से धड़कने लगा था ।

कुछ क्षण बाद प्रणति ने उसे अपने से अलग कर मेज के इस ओर पड़ी कुर्सी पर बिठाया और स्वयं पास से दूसरी कुर्सी पर बैठते हुए बोली — " मैंने तो अब कभी तुझसे फिर भेंट होगी, इसकी आशा ही छोड़ दी थी । सोचा, बड़े घर में ब्याह हुआ है, तो अब तू हम ग़रीबों की खबर भला क्यों लेने लगी ? "

" अच्छा ! तो अभी तक तेरी व्यंग करने की आदत छूटी नहीं?" हँस कर मीरा ने कहा — देखती हूँ, इन २-२॥ वर्षों में तू भी काफ़ी बदल गयी है । "

" बदलूँगी नहीं ? विवाह के बाद कौन लड़की नहीं बदलती ? तू क्या कुछ कम बदली है ? "

मीरा मुस्करा कर रह गयी । फिर जैसे कुछ सोचकर बोली — " ओः, हाँ, यह तो मैं तुझसे पूछने ही वाली थी कि तू मुखर्जी से चक्रवर्ती कब बनी ? "

" तेरे विवाह के कोई २-३ महीने बाद ही तो । "

" और मुझे खबर तक न दी । क्यों ? "

" ओहो, जैसे खबर देने से तो तू दौड़ी आती ! बस, अब ज़्यादा बन मत । जिस बड़े घर में तू ब्याही है, वे क्या हम-जैसे ग़रीबों के यहाँ तुझे आने देते ? "

" ख़ैर, छोड़ भी अब उस बात को । अच्छा यह बता कि वे हैं कैसे ? "

" बहुत अच्छे ! बड़े सौम्य और मधुर स्वभाव के । बड़े ... " कहते-कहते सहसा रुककर प्रणति खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली – " ले देख, अपने ही मुँह से उनकी तारीफ़ करते मुझे लज्जा भी तो नहीं आयी । तू भी अपने मनमें न जाने क्या सोचती होगी ? "

" मैं भला ऐसा क्या सोचूँगी ? विवाह कर के तू सुखी है, यह मेरे लिए भी क्या कुछ कम सुख और सन्तोष की बात है ? अच्छा तो अब यह बता कि उनसे कब मिलायगी ? "

" उनसे किससे ? "...आँखों ही आँखों में हँसते हुए विनोदपूर्वक प्रणति ने कहा ... " अब हम लोग तीन प्राणी हैं । बच्चा भी बिल्कुल अपने बाप पर ही गया है । तो बता, तू छोटे साहब से मिलना चाहती है या बड़े साहब से ? "

" दोनों से ! " कहकर मीरा हँस पड़ी ।

" अच्छा, जरूर मिलाऊँगी और शीघ्र ही । पर तूने अपने बारे में तो कुछ बताया ही नहीं । तेरे पति कैसे हैं और क्या तेरे भी कोई सन्तान..."

" अच्छे ही हैं । हाँ, मेरे भी सन्तान के नामपर एक लड़की हुई थी, परन्तु वह भी...। "—कहकर मीरा ने सिर झुका लिया ।

क्या मेरा मुख शेर जैसा है ?



अनुक्रमणिका

" हुई थी का क्या मतलब ? क्या वह अभी तक..." कहते कहते मीरा को नकारात्मक ढंग से सिर हिलाता देखकर प्रणति अपना वाक्य पूरा करने से पहले ही रुक गयी। और फिर धीमे स्वर में पूछा—" तो कितनी बड़ी हो गयी थी वह ? "

" कुल जमा सात दिनों की। देखने में ऐसी फूल–सी...। पर संतोष की बात यही है कि वह मुझ से पहले ही मुक्ति पा गयी। "

हाथ से मीरा की ठोडी ऊपर कर प्रणति ने उसकी आँखों में झाँकते हुए–से पूछा — " तू होश में भी है, मीरी ? अपनी पहली सन्तान के निधन पर तुझे संतोष हुआ ! शर्म नहीं आती तुझे ऐसा कहते ? "

" नहीं। अगर वह स्वयं न मर गयी होती, तो शायद मैं ही बाद में उसका गला घोंट देती। "

प्रणति स्तब्ध रह गयी। उसे जैसे कुछ सूझ ही नहीं पड़ा कि इसके बाद अब वह क्या कहे या पूछे। मीरा ने अपनी साड़ी के पल्ले से आँखें पोंछीं और पूछा... " आजकल डिप्टी–डाइरेक्टर तो दास बाबू ही हैं या और कोई ? "

" हाँ, वे ही हैं अभी तक तो। "

" मैं उनसे जरा मिलना चाहती हूँ। "–कहकर मीरा कुर्सी पर से उठने की चेष्टा कर ही रही थी कि प्रणति ने हाथ बढ़ाकर उसे बैठे रहने का इशारा करते हुए कहा – " अरी बैठ भी, फिर मिल लेना। ऐसी भी क्या जल्दी है ? "

मीरा बैठ तो गयी, पर बात बदलने की मंशा से उसने पूछा — " इरा नहीं दिखी ? और वे अपनी साथिनें मिनति, सुनन्दा, रेखा, प्रतिमा आदि कहाँ हैं ? "

" सबने शादियाँ कर ली हैं और तेरी ही तरह इस रास्ते आना छोड़ दिया है। सुना है उनकी शादियाँ भी बड़े लोगों के यहाँ ही हुई हैं और अब तो उन्हें यह बताने में भी शर्म आती है कि वे कभी टेलीफोन–ऑपरेटर थीं ! "

इस पर मीरा ने कुछ भी नहीं कहा। अपलक दृष्टि से वह प्रणति का चेहरा देखे जा रही थी। कुछ झेंपते हुए–से प्रणति ने कहा — " यों आँखें फाड़–फाड़ कर क्या देख रही है री ? "

" यही कि तू हम सबमें सचमुच अक्लमंद निकली, जो घर–संसार बसाकर भी काम कर रही है। तेरे चेहरे पर सुख और संतोष की जो छाप है, वह कितनी विवाहिताओं के चेहरों पर मिलेगी ? "

" अब तू जो कुछ भी समझ गयी, पर इतना तो सही है कि बिना काम के मैं तो एक घड़ी भी चुपचाप नहीं बैठ सकती। "

" यही तो मेरे साथ भी है। इसीलिए तो मैं फिर काम की खोज में यहाँ आयी हूँ। "

" काम की खोज में ? "–आश्चर्य से आँखें फाड़कर प्रणति ने कहा–" तू क्या कह रही है, मीरी ? ऐसे सम्पन्न और बड़े घर की बहू होकर भी तू काम यानी नौकरी करेगी ? "

" हाँ, क्यों नहीं ? जिस बड़े और सम्पन्न घर की बात तू कह रही है, उसका सहारा जो अब नहीं रह गया है। "



मुहूर्तं ज्वलितं ....

—अ नि ल कु मा र

जरूरी है, जवानी में उगाओ तुम अमराई,
ग्रीष्म की दोपहर और वसंत की शामें यहाँ
गुजारी जा सकती है,
न सही बगलगीर कोई रात के तीसरे पहर
शरद की चाँदनी को
गले लगाकर तुम लेट तो सकोगे ही,
अभी अभी बरस खुली सावन की साँझ तुम्हें
आमतले हेरेगी,
पत्तों के दोने में सँजोया गुलाबजल
हरियल या तोते चहक–चहक बरसायेंगे;
शिशिर के तीन पहर
पत्तों की चुरमुरी चादर पर बिछे–बिछे
सूरज की अँगीठी तो अनायास तापोगे,
आगे चल पीढियाँ तुम्हारी ही —
चखेगी मीठे फल !
गुठलियाँ उगायेंगी ! !
सूख गयी टहनियाँ यज्ञ में जलायेंगी
महकेगा कुनबा और पीढी और खानदान।

तबियत नवाबी हो
जवानी के आँगन में क्यारियाँ गुलाब की भी
बुरी नहीं होती हैं,
नजरों के खारों से बच सको
अभी खिली कलियाँ ये ओठों की

सौगातें लायेंगी ।

महकेगी मन में पर
आँखों में डोलेगी—नशा बन जायेगी,
कभी नहीं हाट तुम्हें इत्र की बुलायेगी
भटकोगे कभी नहीं गंधी के अगल-बगल,
अरे कभी गलती से
आँगन की मिट्टी को माथे पे थापोगे
देखोगे सपनों में पलकों की पंखुरियाँ
सिरहाने बिछी हुई !

तबियत के बादशाह,
गेरुआ बुढ़ापे का रहेगा गुलाबी ही!!
धूलभरी मटमैली, जीवन की साँझें भी
कस्तूरी, केशर – सी, चन्दन – सी, महकेंगी ।
बुरा नहीं आँगन में बरगद उगाओ तो
बचपन से जीवन भर धूनी रमाओ तुम,
बुरा नहीं आँगन में बरगद उग आये तो
शंकर कहलाओ या ध्रुव ही बन जाओ तुम !

अमृत का बेटा वह नीम उगे कड़वा तो
सचमुच मत घबराओ,
आँगन में पालो सींचो उस बेटे को ।
अमृत के बेटे का वासंती किसलय ही
सेवन कर जाओ या
दाँत पजा रक्खो उन हरी नरम टहनी से,
दुनिया के साँप तुम्हें छूने न आयेंगे !
जहरीले नाग तुम्हें छूकर मर जायेंगे !
यत्नों से पली हुई मादक विषकन्यायें
तुम्हें छेड़ बैठे तो
ओठों से प्राण चूस तुम्हीं उन्हें पी लोगे !

लेकिन ओ मूर्ख !
तुम्हें आखिर यह सूझा क्या ?
तुमने जवानी के आँगन में बीज डाल
भरसक उगाये हैं भरपूर बबूल – वन ।
फूल नहीं, फल नहीं, सस्ती सुगंध नहीं,
जलती दोपहरी में ... 'छाँव कहाँ ... छाँव कहाँ ?'
चिल्लाते भटकोगे ।
गोंद तुम्हें काटों से पल – पल चिपकायेगा !
लेकिन ओ मूर्ख, यहा इंधन की कमी नहीं
पीढी दर पीढी तुम जल ही तो सकते हो
बिलकुल आसानी से !!

•••

कुर्सी और मीरा के पास खिसका उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए प्रणति ने बड़े उदास स्वर में पूछा–" सच ? क्या तू सच कह रही है मीरी ? "

" हाँ। तुझसे भला झूठ क्यों बोलूँगी ? "

" पर हठात् यह कैसे हुआ ? क्यों हुआ ? "

" वह एक लंबी और दुखद कहानी है। फिर कभी सुनाऊँगी। अभी तो मुझे दास बाबू ... "

" नहीं मीरी, यह नहीं हो सकता। तूने यह कहकर मेरे मनकी सारी शांति हर ली है। अब मैं सारी बात जाने बिना चैन से कहाँ बैठ सकूँगी ? कुछ थोड़ा-सा तो बता। संक्षेप में ही सही। "

" थोड़ा और बहुत अब क्या बताऊँ। यथार्थ में ग़लती तो मेरी ही है। मैंने माँ के दबाव – प्रभाव में आकर अपने बुद्धि – विवेकसे काम नहीं लिया, यह सब उसी का परिणाम है। "

" तो आखिर ऐसा भी क्या हुआ ? "

" एक धोखा ! बहुत बड़ा धोखा। जिस टूटे – फूटे मकान में हम लोग रहते थे, माँ की बीमारी, भाई के इलाज और बहन की पढ़ाई के खर्चे के कारण कई महीनों से उसका किराया नहीं दे सकी थी। इस पर मकान – मालिक गोपाल बाबू ने हमें निकलवाने का निश्चय किया। उनकी मुझ पर बहुत दिनों से निगाह थी। एक दिन उन्होंने माँ को यह कहकर पटा लिया कि वे हैं तो विधुर, पर अभी उनकी अवस्था कोई खास ज्यादा नहीं है। अगर माँ मेरी शादी उनसे कर दें, तो पिछला सारा भाड़ा वे न लेंगे तथा माँ, भाई और बहन का पूरा खर्च भी वे ही वहन करेंगे। सिर्फ़ मुझे उनके साथ एक अलग फ्लैट में रहना होगा। पहले तो मैं इसके लिए राजी न हुई, पर जब माँ ने नाराज होकर मुझ से बात करना और मेरे हाथ से अन्न-जल ग्रहण करना तक बंद कर दिया, तब मैं पिघल गयी। मजबूरी जो थी। "

यह कहकर मीरा ने एक ठंडी साँस ली और कहा—" सब अपना-अपना भाग्य है, प्रणू। अपनी ग़लती के लिए अब भला मैं दोष भी किसे दूँ ? "

उदास स्वर में प्रणति ने पूछा—" तो क्या गोपाल बाबू ने अपना वादा पूरा नहीं किया ? "

" गोपाल नहीं, चांडाल बाबू कहो अब उसे । "—सहसा उत्तेजित होकर मीरा ने कहा—" उस पाजी का क्या तो वादा और क्या उसे पूरा करना ? उसके फ्लैट में पहुँचकर मैं ने जाना कि वह एक भयंकर शराबी और दुश्चरित्र व्यक्ति है और मेरी ही तरह न जाने कितनी लड़कियों का जीवन बरबाद कर चुका है। जब मुझे यह पता चला कि यथार्थ में वह कोई बड़ा या संपन्न व्यक्ति या हमारे मकान का मालिक नहीं, बल्कि मालिक का गुमास्ता-मात्र है और मालिक के मकानों का भाड़ा वसूल कर कभी आधा और कभी पूरा घट कर जाने के सिवा उसकी जीविका का और कोई साधन या आधार नहीं है, तो मुझे एक जबरदस्त धक्का ज़रूर लगा। पर उससे भी बड़ा धक्का मुझे तब लगा, जब कि उसने मुझे




अपनी माँ, भाई और बहन से मिलने जाने से भी यह कह कर रोक दिया कि 'मुझ–जैसे संपन्न और प्रतिष्ठित व्यक्ति की स्त्री होकर तुम उस गंदी बस्ती में उन नीच लोगों के यहाँ आ–जा नहीं सकती। कोई देखेगा, तो क्या कहेगा?' एक दिन किसी तरह उसकी आँख बचाकर मैं माँ से मिलने पहुँची, तो पता चला कि मेरी शादी के बाद कम्बख्त ने खर्च के लिए उन्हें कानी कौड़ी भी नहीं दी, जिससे माँ और भाई की हालत तो खराब हुई ही, बहन को भी पढ़ाई छोड़कर घर पर बैठ जाना पड़ा। तब मैं नें अपने हाथों की चूड़ियाँ बेचकर माँ को कुछ रुपए दिए।"

"छिः छिः! ऐसा किया उस चांडाल ने!"–प्रणति का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया।

"हाँ। और जब उस चांडाल को इसका पता चला, तो उसने मुझे खूब मारा-पीटा और उसी दिन से मुझे ताले में बंद करके जाने लगा।"

"अच्छा। तो फिर तू निकली कैसे वहाँ से?"

"अपने किसी प्रयत्न या पुरुषार्थ से तो नहीं। अब वह कम्बख्त एक नई लड़की को फँसा कर लाया है। इसीलिए मुझे निकाल दिया है। मेरे पास जो–कुछ था, वह सब भी रख लिया है उस बेईमान ने।"

मीरा की आँखें फिर झुक गयीं। प्रणति की उदासी की तो जैसे सीमा ही न थी। फिर वह उठी और मीरा का हाथ पकड़ कर उसे भी उठाते हुए बोली–"उठ चल, अब दास बाबू से मिल आयें। देखें, क्या कहते हैं वे।"

यंत्रवत् मीरा उठी और प्रणति के पीछे-पीछे खिंची–खिंची–सी चली गयी।

दासबाबू के कमरे में पहुँचकर प्रणति ने कहा—"दादू, देखिए तो, कौन आयी है आपसे मिलने?"

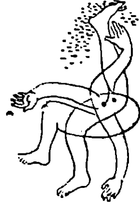
काम करते हुए दास बाबू ने सिर ऊपर उठाकर देखा और मीरा को देखते ही जैसे उछल पड़े—"अरे, मीरा बेटी! तुम? आओ, बैठो। तो हठात् इतने दिनों बाद कैसे याद आयी अपने दादू की?"

सामने पड़ी एक कुर्सी खींचकर प्रणति बैठी और दूसरी पर मीरा। एक फीकी मुस्कराहट के साथ मीरा बोली—"नहीं दादू, तुम्हें याद तो हरदम करती रहती थी, पर आने का अवसर कभी निकाल ही नहीं पायी।"

"और तुम्हारी शादी की दावत या मेरे हिस्से की मिठाई तो अभी तक बाकी ही है।" कहकर दास बाबू हँस पड़े।

पर प्रणति और मीरा में से कोई नहीं हँसा। धीरे–धीरे मीरा का सिर झुक गया। यह देखकर दास बाबू की हँसी भी गायब हो गयी और उन्होंने प्रश्न–भरी दृष्टि से प्रणति की ओर देखा। प्रणति ने आँखें फाड़कर तर्जनी होठोंपर रख आँखों में कुछ संकेत–सा किया। फिर सहज भाव से बोली—"दादू, मीरा फिर काम करना चाहती है। इसलिए आपसे मिलने आयी है।"

"ओह, तो यह बात है।"—कहकर दास बाबू ने मीरा की ओर मुखातिब होकर कहा—"लेकिन मीरा, इस समय तो कोई जगह खाली नहीं है हमारे यहाँ।"



चार कोने

एक कमरे में चार कोने थे। सबों की अपनी-अपनी कहानी थी, अपनी-अपनी उत्पति थी।

एक कोना पतिव्रता औरत का रूप था।
दूसरा कोना एक व्यभिचारी पुरुष था।
तीसरा कोना एक सूदखोर महाजन था।
और चौथा कोना शराब की एक बोतल था।

इनकी अपनी-अपनी विशेपताएं थीं, अपना-अपना स्वभाव था।

वेचारी औरत अपने पति के सिवा और किसी की ओर आंख उठा भी नहीं देखती थी।

दुनिया की हर वस्तु और व्यक्ति को पाप की निगाहों से देखना ही व्यभिचारी का काम था।

महाजन के सामने पैसा सबसे बड़ी चीज थी। वह जब भी किसी को कुछ देता, उसके बदले में कुछ लेना जानता था। विश्वास और धर्म को महाजन अपना शत्रु समझता था।

और आखिरी कोना, जो शराब की बोतल के रूप में था, दुनिया को पथभ्रष्ट करने का बीड़ा उठाए था। उसका उद्देश्य था—अच्छे को बुरा बना देना और जिसके पास भी जाना उसका सारा धन-वैभव लूट लेना।...

ये चारों कोने युग-युग से एक दूसरे के निकट आने की कोशिश कर रहे हैं। मगर जब-जब ये आपस में एक होने के लिए कदम बढाते हैं तब-तब धरती कांप उठती है और पूरा मकान गिर पडता है।

— तारकेश्वर मैतिन

"तो क्या निकट भविष्य में कोई खाली होने की संभावना है ?" —मीरा ने गिरे हुए स्वर में पूछा।

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"—कहकर दास बाबू ने अपने सामने पड़ा सादे कागज का एक पैड मीरा की ओर बढाते हुए कहा—"तुम इस पर अपना पता-ठिकाना लिख जा[illegible]। जगह होते ही मैं तुम्हें सूचना भिजवा दूँगा।"

"जी, बहुत धन्यवाद। पर ज़रा ख़याल रखिएगा।"—कहकर मीरा कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई।

"हाँ, हाँ, ज़रूर।"—कहकर दास बाबू ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"अच्छा, नमस्कार।"

मीरा और प्रणति ने प्रतिनमस्कार किया और बाहर चली आयीं। बाहर आकर मीरा ने कहा—"अच्छा प्रणू, तो अब तू भी अपना काम कर। मैं फिर किसी दिन आऊँगी। हो सके, तो कभी आते-जाते दास बाबू को मेरे बारे में ज़रा याद ज़रूर दिला देना।"

"वह तो हो जायगा। पर तू एक बार मेरे कमरे तक तो चल। ऐसी भी क्या जल्दी है ? तुझे किसी दफ्तर तो जाना है नहीं।"

"न सही, पर अब और तेरे कमरे तक चल कर क्या होगा ?"

"न हो, पर एक मिनट के लिए चल भी तो।"—कह मीरा का हाथ पकड़कर खींचते हुए प्रणति उसे अपने कमरे में ले गयी। फिर उसका हाथ छोड़ मेज की दूसरी तरफ़ जा उसने दराज़ खोलकर अपना बैग निकाला। उसमें से दस-दस रुपए के कुछ नोट निकाले और और बैग फिर यथास्थान रख दिया। फुर्ती से मीरा की ओर बढ़ उसने उसका दाहिना हाथ लेकर उसमें नोट रखे और अपने हाथ से उसकी मुठी बंद करते हुए कहा—"अभी ये रख अपने पास। काम आयँगे। जब तक तेरा काम न लगे, ज़रूरत होने पर मुझे बताना।"

मीरा का चेहरा सहसा खिल-सा गया। कृतज्ञ और मुस्कराती सजल आँखों से प्रणति की ओर देखकर उसने कहा—"लेकिन प्रणू—'

अभी उसका वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि प्रणति ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए बनावटी क्रोध में कहा—"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। बस, खबरदार जो एक भी शब्द और निकाला मुँह से, तो। अब तू जा सकती है।"

और यह कह प्रणति ने दरवाजा खोलकर मीरा को उससे बाहर ठेलते हुए कहा—"अब जा। फिर कभी आना जरूर।"

कृतज्ञ नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए मीरा ने मुँह फेर कर पूछा—"तो क्या मुझे धन्यवाद देने का मौक़ा भी नहीं देगी ?"

"नहीं, नहीं, नहीं !"—कहकर प्रणति जोर से हँस पड़ी और फिर दरवाजा बंद कर लिया।

बाहर आ मीरा ने साड़ी के पल्ले से आँसू पोंछे और अकेले में ही मुस्करा कर नीचे जानेवाली सीढ़ी की ओर चल पड़ी।

•••

विदग्ध एवं विलासी प्राचीन भारतीय तरुणों की स्त्रीविषयक अपेक्षा का सारसर्वस्व जानने के लिए पढ़िये ... ...

श्यामला

—स. आ. जोगळेकर

प्राचीन तथा मध्ययुगीन संस्कृत एवं प्राकृत के साहित्य में, विशेषतः काव्योंमें बहुधा ऐसी सुन्दरियोंका वर्णन मिलता है जिनको श्यामा या श्यामला संज्ञा से परिचित कराया गया है। सामान्यतः श्याम या श्यामला दोनों ही वर्णद्योतक विशेषण हैं। इन दोनों शब्दोंका अर्थ होता है काला या काला साँवला। इस प्रकार श्यामा और श्यामला से काली और साँवली होनेका बोध होता है। पर, कोशकारों और टीकाकारोंने संदर्भ के अनुसार इसका भिन्न-भिन्न अर्थ निहित किया है। इनके अतिरिक्त गाथासप्तशती के रचयिताने अपने काव्यों में इस संज्ञाका संयोजन थोड़ी-बहुत ढिलाई से किया है इसी से इस संज्ञा का विषद विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

अमरकोश में श्याम और श्यामल ये दोनों शब्द धी वर्ग में उल्लिखित हैं :

**कृष्णे नीलासित श्याम काल
श्यामलमेचका :।**

कृष्णे नीलासित श्याम और श्याम काल श्यामलमेचका :।

अर्थात् कृष्ण, नील असित, श्याम, काल श्यामल और मेचक ये सात नाम काले रंग के हैं। ये शब्द केवल प्रतिशब्द नहीं, इनमें सूक्ष्म भेद भी हैं। कोशकारों एवं टीकाकारों ने इन शब्दों द्वारा व्यक्त होनेवाले रंगों को सोदाहरण नहीं समझाया है। कदाचित् उनको ऐसी योजना बनाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। अमरकोश में श्वेत वर्ण के लिए पांडुर और गौर दो शब्द दिये गये हैं। इन शब्दों में कोई अन्तर नहीं-यही ज्ञात होता है। श्वेत रंग का ही वाचक है गौर शब्द-अमरकोश में यही बताया गया है। इस अनुमान से यही लक्ष्य होता है कि, श्वेत में पीत वर्ण की छटा हो भी तो उस कांति को गौर ही घोषित किया जायेगा-ऐसी ही परिपाटी है। उसी तरह कोशकारों और टीकाकारों का यही संकेत मिला है कि गौर वर्ण में कृष्ण वा नील वर्ण की छाया हो तो भी उसे श्याम या श्यामल नाम से संबोधित किया जाना चाहिये।

श्याम और श्यामला वर्णद्योतक हैं – यह तो निश्चित है ही। कारण कि, ये दोनों शब्द स्त्री और पुरुष दोनों को लक्ष्य में रखकर व्यवहृत किये गये हैं। भवभूति-कृत उत्तर-रामचरित में लव की कांति का वर्णन करते हुए अरुन्धती कहती है – कुवलयदलस्निग्ध-श्याम ... अर्थात् नीलकमल की पंखुड़ियों की तरह श्यामवर्ण। नीलकमल का रंग घना काला तो नहीं ही होता है। श्यामकंठ का अर्थ होता है– नीलकंठ शंकर। हलाहल पान कर लेने के पश्चात्' उनका कण्ठ काला हो गया था। कालिदासकृत मेघदूत में गोपवेशधारी विष्णु तथा मेघ के वर्ण को लक्षित करतेहुए श्याम शब्द का व्यवहार कियागया है :

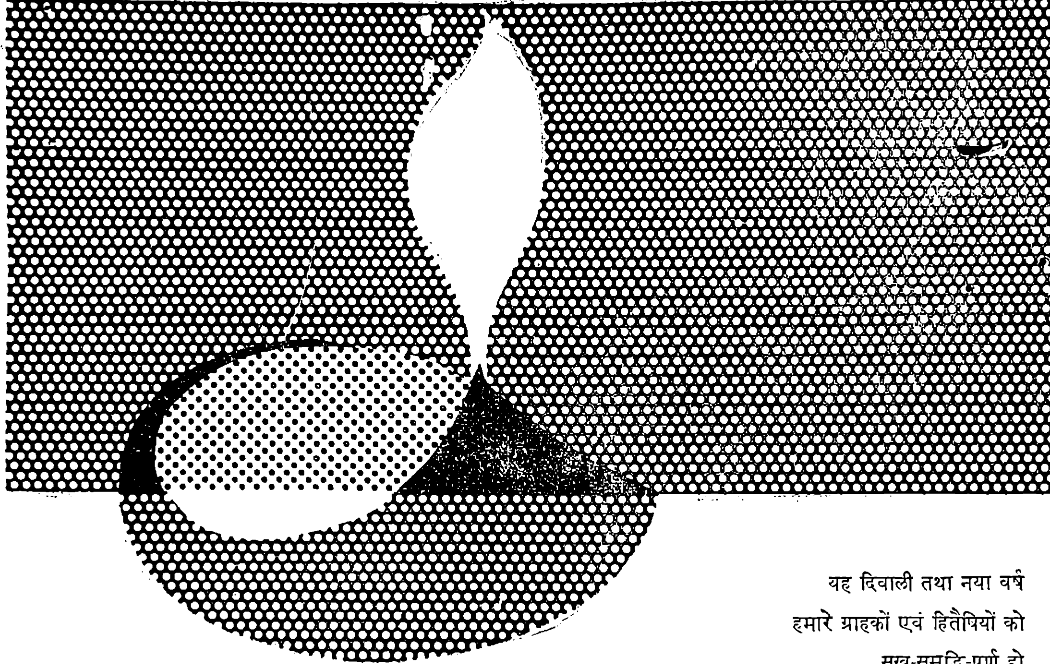
**येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते।
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णो :॥**

अर्थात् – श्रीकृष्ण का श्यामशरीर मयूर की पाँखों के बने मुकुट से सुशोभित है उसी तरह तुम्हारा काला-काला शरीर इन्द्रधनुष की भाँति शोभायमान दिखाई देगा। स्त्री-गीतों में भी श्रीकृष्ण काले रंग के वर्णित हुए हैं; पर वे एकदम काले नहीं हैं उनकी



श्री. स. आ. जोगळेकर :

मराठी भाषा के पंडित मर्मस्पर्शी कथालेखक। आपके चित्र-सुसज्ज हिन्दी ग्रंथ शृंगार-नायिका से हिन्दी पाठक भी परिचित हैं। पांडित्य और लालित्य का इस लेखमें मधुर संगम है।



यह दिवाली तथा नया वर्ष
हमारे ग्राहकों एवं हितैषियों को
सुख-समृद्धि-पूर्ण हो

मेसर्स हुकुमचंद ईश्वरदास

(स्थापना १८७८)

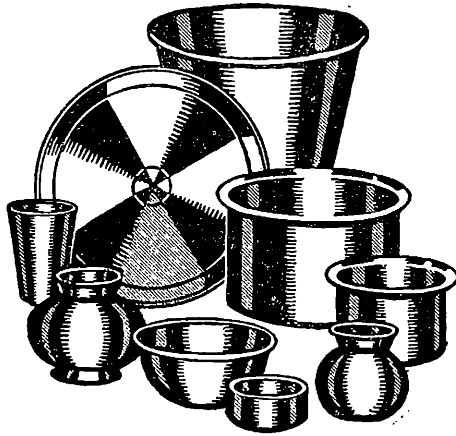
१६७, गुरुवार (वेताळ) पेठ, पूना २

— मालिक —

गुजरात मेटल फैक्टरी

(स्थापना १९०४)

२१ नागेश पेठ, पूना २





TOM & BAY

तांबा, पीतल और स्टेनलेस स्टील के सुन्दर तथा टिकाऊ बर्तन के विख्यात निर्माता और दस ही थोक व फुटकर व्यापारी

कांति साँवली है और वे सुन्दर भी हैं। हमलोग भी बातोंबात कभी कह देते हैं कि, 'आसमान पर काले-काले मेघ छा गये।' मगर, वह मेघ घनघोर काला तो होता नहीं। इसके अ[illegible] उसको नीले आकाश की पृष्ठभूमि रहती है। मेघदूत में कालिदासने दशार्ण देश को श्यामकांत ठहराया है :—

त्वय्यासन्ने परिणतश्यामजम्बूवनान्ता:।

यानी – ऐसा देश जिसमें जामुन के फल पक जाने के कारण वहाँ के जामुन-वृक्ष श्याम दिखते होंगे।

श्याम शब्द का व्यवहार यहाँ पके हुए जामुन का कालापन या नीलापन व्यक्त करने के लिए ही हुआ है।

श्यामा और श्यामला इन शब्दों के एतद्भिन्न अन्य भी कई अर्थ होते हैं। हरी दूब, तुलसी व प्रियङ्गु को श्यामा कहा जाता है। काली, दुर्गा और यमुना को भी श्यामा कहते हैं। एक व्याख्याकार ने श्यामा का अर्थ यौवनमध्यस्था भी लिखा है। अप्रसूता, षोडशी, श्यामवर्णा मधुरभाषिणी को भी श्यामा कहा गया है :—

अप्रसूता भवेत् श्यामा,
श्यामा षोडशवार्षिकी
श्यामा च श्यामवर्णा च
श्यामा मधुरभाषिणी ॥

उपर्युक्त कथन, वर्णन, एवं व्याख्या तीनों ही सुगम न हो कर जिज्ञासुओं को भ्रामक चिन्तन में डाल देते हैं। गौरवर्ण के प्रति मनमें पूर्वाग्रह होने के कारण ही कदाचित् वक्ताओं की वृत्ति संभ्रम में पड़ी हुई दृष्टिगत होती है।

कालिदासने अनेक नायिकाओं के शब्द-चित्र अपनी रचनाओं में अंकित किये हैं किन्तु मेघदूत की नायिका का निर्माण उन्होंने सम्पूर्णतया स्वतंत्र होकर किया है :

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि:॥
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु: ॥

विदग्ध एवं विलासी प्राचीन भारतीय तरुणां की स्त्रीविषयक अपेक्षा का सारसर्वस्व कालिदासने अपने मेघदूत के इन मन्दाक्रान्ता

दीपा.

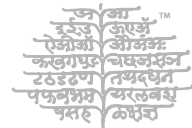
छंदों में ग्रथित किया है। इस में उन्होंने श्यामा संज्ञा का उपयोग बड़ी सावधानी से किया है। टीकाकारोंने केवल वैयक्तिक प्रवृत्ति तथा उपलब्ध वचनों के वशीभूत इस संज्ञा का भिन्न-भिन्न अर्थ किया है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है—

"श्यामा युवति: श्यामा यौवनमध्यस्था च इति उत्पलमालायाम्।

केवल टीकाकार स्थिरदेव ने इनका अनुकरण नहीं किया और कुछ अपनी ओर से भी कहा है। उनका कथन है :

तन्वी कृशतनु इत्याकारचारुता।
श्यामा श्यामला इति वर्णाभिरामता।

सर विलियम जोन्स ने इस श्लोकका भाषांतर करने में श्यामा शब्द का विशेष अर्थ नहीं दिया है। मेघदूत-स्थित पंक्ति '**श्यामास्वङ्ग**


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्' की टीका करते हुए मल्लिनाथ ने लिखा है :

'श्यामासु प्रियङ्गुलतासु । अङ्ग शरीर-मुत्पश्यामि । सौकुमार्यादिसाम्याङ्गमिति तर्कयामीत्यर्थः।' और स्थिरदेव का कथन है: **श्यामासु प्रियङ्गलतासु अङ्गं वपुः। श्यामात्वतनुत्वाभ्यां तत्साद्दश्यम्।'**

इस टीका को देखने से लगता है कि मेघदूत में श्याम शब्द नायिका के वर्ण का द्योतक न होकर उसकी कांति का वाचक है।

गाथासप्तशती में व्यवहृत श्यामला शब्द के अर्थों में बहुत ही अनिश्चितता है। तथापि प्रत्येक स्थान पर उसका अर्थ तरुण, सुन्दर और सुकुमार है – यह बात निश्चित है। उदाहरणार्थ उसके २३ वें पद का निरीक्षण किया जायः—

हासविओ जाणो सामलीअ पढमं पसूअ-माणाए ।। वल्लहवाएण अलं मम त्ती बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥

— श्यामला सर्वप्रथम गर्भवती हुई थीं; मधुर हास्य–विनोदवश उसकी एक सखी उसके प्रियतम का नाम लेती हुई खूब ठठोली करती थी और उसकी (प्रियतम की) बातें कहने का आग्रह करने लगी। उस समय वह बार–बार सहेली को सरोष कहती – 'अरी, तूसब उनको मेरा प्रियतम न कह; मैं तो अब उनका नाम तक नहीं लेना चाहती!'

इस पद में व्यवहृत श्यामला शब्द का अर्थ गंगाधर ने 'वरस्त्री' (स्त्री – श्रेष्ठा) दिया है। यहाँ यह शब्द वर्णवाचक है ऐसा हम नहीं कह सकते। प्रसंगवशात् गाथासप्तशती की यह गाथा भी विचारणीय है :–

सेमइ सामलिज्जइ अर्द्धाच्छपलोइरीअ मुहसोहा। जम्बूदलक अकण्णाव अंसभरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

—जामुन की फुनगी कान पर रखे 'हरवाह का बेटा' अपनी राह जाने लगा। श्यामला ने यह दृश्य अधमुँदी आँखों से देखा तो उसकी शोभा धूमिल हो गयी।

[श्यामलाने उस युवक को जामुन की फुनगी इस आशय से दी थी कि वह जामुन के पेड़ तले उससे मिलेगी। मगर, वहं मूर्ख (हरवाह का बेटा!) इस मधुर इशारे को समझ न सका, उल्टे उसे अपने कान पर रख गाँवभर का चक्कर लगाने लगा। बेचारी का मन विरस हो गया। अपना अनुराग 'वह' समझ न सका इसलिए वह अपनी आँखें ऊपर न कर सकी। इस स्थिति में उसका मान भंग हो गया–सो तो अलग। और उस समय उसकी कांति कैसी हो गयी होगी? ऐसे समानार्थक प्रसंग की चर्चा रुद्रटने अपने काव्यालंकार में किया है:

ग्रामतरुणं तरुण्या नववञ्जुलमञ्जरी सनाथकरम्। पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥ ३ ॥ ७९ ॥

अलंकाररत्नाकरःमें गूढ अलंकार का उदाहरण है—'गूढ साकांक्षोपनिबद्धं गूढम्।' —गूढ आलांक्षा को किसी गूढ संकेत से बताने को गूढ अलंकार कहा जाता है। सरस्वती कंठाभरण में सूक्ष्म (प्रतीयमान) अलंकार का यही लक्षण है।]

श्यामा का अर्थ यहाँ 'श्यामलायते'— श्यामल हो जाती है। निस्संदेह यह उल्लेख वर्णवाचक है।

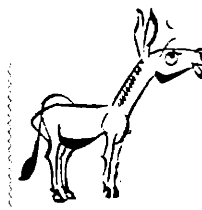
पुनः इसी सप्तशती के १८९ वें पद में श्यामला का अर्थ सुकुमार है। यथा—

तुज्जङ्गराअसेसेण सामली तह खरेण सोमारा। सा किर गोलाऊले ह्लाआ जम्बूसाएण ॥ ८९ ॥

—श्यामला सुकुमार है तब भी वह तुम्हारे अंगो से स्पृष्ट जामुन के रस से अपने अंगों में उबटन करके गोदातट पर नहा रही है।

[उसने अपने प्रियतम को प्रसन्न करके के लिए जामुन के रस का उबटन लगाया अथवा जिस तट पर वह स्नान कर रहा था उसीके निकटवाले स्थान पर प्रेयसी ने स्नान कर अंग – स्पृष्ट जल–धारा से स्नाता हो उबटन लगाने का अप्रत्यक्ष श्रेय ग्रहण किया। उच्छिष्ट वस्तु ग्रहण करने में अंग-संगमाभिलाषा की भावना अमूर्तभाव से रहा करती है।]

यह उल्लेख वर्णवाचक न होकर प्रत्यक्ष दर्शन का ज्ञात होता है। गाथासप्तशती में वर्णित एक श्यामला नायिका 'शीते



गवेको बहुत रेंकना पड़ेगा पेश्तर इसके कि वह सितारों को हिलाकर गिरा दें।

सुखोष्ण सर्वांगी' के कथन को चरितार्थ करती है। यथा—

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं वइलेण। णिद्धूम मुम्मुर च्चिअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

—धधकती हुई निर्धूम अग्नि-ज्वाला के समान अपनी [नव - परिणीता] श्यामला के स्तन - युगल देख पामर कृषक ने अपने कम्बल बेच कर बैल खरीद लिया।

[माघ महीने का शीत और यौवन की उष्मा ये दोनों स्मरण मात्र से देह में कम्पन ला देते हैं। काश्मीर में ऊनी कपड़े पहनने और ऊपरसे ऊनी दुशाला लादे रहने पर भी मनुष्य की अंतड़ियाँ शीत से काँपती रहती हैं। और ऐसे समय में भी कृषक को अपनी नव-परिणीता पत्नी की उपस्थिति में ठंडक नहीं मालूम हुई और उसने अपने ऊनी कंबल बेच खेती के लिए बैल खरीद लिया।]

इस गाथा में वस्तु-विनिमय का व्यवहार ध्यान देने योग्य है। इस पद में परिवृत्ति अलंकार है। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में इसका लक्षण है–'**रतिरूपेण हीनपात्रे रसाभासः**'–रतिरूप से हीनमात्र में रस का आभास होना।

इस नवविवाहिता की अंग-कांति धधकती हुई आग की तरह है। तप्त कांचन का वर्ण भी ऐसा ही होता है। कोयला सस्ता होता है और काला, सोना मँहगा होता है और पीला। किन्तु दोनों को यदि आग में तपाया जाय तो भी वर्ण में कोई अन्तर नहीं आयेगा। सप्तशती की निम्नांकित संस्कृत भाषांतरित, ४३ वीं गाथा में वर्णित नायिका के सम्बन्ध में गंगाधर का कथन है : 'श्यामाया उत्तमनायिकायाः।

अनुक्रमणिका

श्यामाया गुरुयौवन विशेषभृते कपोलमूले पीयतेऽधोमुखेनेव कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

— उठते हुए यौवन की विशेष गुरुता से श्यामता के कपोल भर गये हैं और कानों में लगा कर्णावतंस (कान का गहना) अधोमुख हो उसके सौंदर्य का पान कर रहा है।

नायक स्वयं दूत बनकर लावण्य-वर्णन के निमित्त से, चुम्बनाभिलाषी है – एक बार नहीं अनेक बार। कारण कि, नायिका के चलने में उसके आभूषण स्वभावतः डोलते हुए दिखते हैं तब नायक को लगता है कि ये कर्णावतंस कपोल-चुम्बन के लिए ही ऐसा कर रहे हैं। पीतांबर की व्याख्या के अनुसार 'उत्तम वस्तुओं को पाने की अभिलाषा अचेतन को भी रहती है यही नीति सर्वमान्य है।'

यह नायिका षोडशी न होकर यौवन–मध्यस्था होगी – ऐसा ही आभास होता है। इसका वर्ण नहीं सूचित किया गया है। हाँ ५५५ वीं गाथा की नायिका श्यामलांगी है यह बात आरम्भ में ही सूचित है। यह भी वर्णित है कि, वह काले रंग की है और उस के साथ ही उसके काले–घुंघराले लंबे केश–गुच्छ ने उसका साहचर्य पा लिया है:—

पत्रिगण अम्बप्फंसा ण्हाणुत्तिण्णाएँ
सामलङ्गीए।
जलबिन्दुएहिं चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भरण

[**प्राप्तनिततम्बस्पर्शाः स्नानोत्तीर्णायाः श्यामलाङ्गयाः। जलबिन्दुवैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धस्येव भयेण ॥**]

—श्यामला नहा रही थी तब उसके कुंतलों ने उसके नितंब का स्पर्श किया। स्नानांतर हमें अब बँध जाना पड़ेगा–इसी भय से उस के काले चिकुर आँसू बहा रहे थे।

[भींगे हुए जलबिन्दु ही उनके आँसू हैं। वे इसलिए आँसू बहा रहे थे कि उन्हें नितम्ब-स्पर्श के अपराध के कारण बंध जाने का दण्ड मिलेगा और फिर उसका स्पर्श करने की सुखद संधि नहीं मिलेगी !...कुंतलों के बहाने इस श्यामला नायिका पर आसक्त प्रेमीने अपने उद्गार प्रकट किये हैं और नायिका से विनती की है कि हम दोनों को (कुंतलों को और मुझे) अपने नितम्ब के स्पर्श का अवसर दो। काव्यानुशासन में अस्थानस्थपद या उत्प्रेक्षा दोष के ये उदाहरण हैं।]

७५८ वीं गाथा में नायिका का वर्ण नहीं सूचित किया गया है केवल शरीर का वर्ण श्यामल तथा नेत्रों के बाह्यांग का धवल होने के कारण उसकी शोभा विशेष आकर्षक लगती है :—

तुह सामलि ! धवल चलंत तरल
निरुखग्लोयबलेण।
मयणो पुणोवि इच्छुइ हरेण सह
विग्गहारंभं ॥

श्यामला के नेत्र स्वच्छ व तेजस्वी हैं तथा उसकी दृष्टि चंचल तथा तीक्ष्ण है। उसकी दृष्टि देखकर ऐसा मालूम होता है कि मदन का युद्ध भगवान शिव के साथ पुनः आरम्भ होने को है।

९६३ वीं गाथा में श्यामला की कांति अद्वितीय है। नायक को कवि के शब्दों में इसके सौन्दर्य को निरख कर यहाँ तक सोचना पड़ा कि इसका रचयिता वही सर्वसामान्य प्रजापति नहीं होगा जिसने हम सबको रचा है :—

अण्णं लहु अत्तणअं अण्ण
च्चिअ का इ वत्तणच्छाआ।
सामा सामण्णपआवइणो रेह
च्चिअ न होइ ॥

[अनन्त सौकुमार्य अन्यैव च कोऽपि वर्तनच्छाया। श्यामा सामान्य प्रजापते रेखैव च न भवति ॥]

— श्यामला के अंगों की कांति व कोमलता अद्वितीय है। सर्वसामान्य प्रजापति ने इसका निर्माण किया हो ऐसा नहीं लगता। उपर्युक्त गाथा कालिदास के इस उद्‌गार से तुलनीय है। भारतवर्ष में सुखकारक क्या-क्या हैं ?—

कूपोदकं, वटच्छाया, श्यामा
स्त्री, इष्टिकागृहम्।

और ये कब सुखकारक हैं ?

शीतकाले भवेदुष्णं ग्रीष्मकालेच शीतलम् ॥

ग्रीष्म ऋतु में कुएँ का स्वच्छ जल उतना ही शीतल रहता है जितना हमारे मन को रुचे; कृत्रिम रीति से शीतल बनाया हुआ जल रुचता अवश्य है पर मनोनुकूल नहीं पड़ता। कूपोदक (कुएँका पानी) जाड़े के दिनों में कुनकुना रहता हैं क्योंकि पृथ्वी की गर्मी उसे मिली रहती है। अत्यधिक विस्तृत होने के कारण सरोवरों का जल तो शीतकाल में अत्यधिक शीत रहता है। बरगद की छाया घनी होती है और उसके पत्ते बड़ेबड़े होने के कारण ताजी हवा उस पर डोलती रहती है। साथ ही बरगद का थंभ और जटाएँ पृथ्वी को छूती रहती हैं इसलिए वर्षाकाल में यह बहुतों का आश्रयस्थल बन जाता है। उसी तरह ईंटों का बना घर भी बड़ा सुखदायक होता है। ईंटों की बनी भीत भले ही तप जाय पर अन्तर्भाग में गर्मी नहीं पहुँच सकती।... स्त्री भी अपने यहाँ (भारतवर्ष में) श्यामला होनी चाहिये। कारण कि, वह 'शीते सुखोष्ण सर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीला' होती है। ऐसा होने के कारण वह सभी ऋतुओं में सुखकारक है। इसके अलावे इसके शरीर में विशेष तरह की सुगंध भी रहती है–ऐसी उक्ति है। नासदीय सूक्त–भाष्य के अनुसार श्रीराजवाडे ने लिखा है –' योजन गंधा मत्स्यगंधा श्यामला होगी क्योंकि उससे उत्पन्न पराशर का पुत्र वर्ण से काला था। गौरवर्ण स्त्रियां संसार के चक्रजाल में, विशेषतः भारतवर्ष में, बहुत टिक नहीं सकतीं –– यह सिद्धान्त

* काव्य–प्रकाश के अनुसार–वर्तन=रंग; शरीर का वर्ण; रेखा=कृति। ये प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। काव्यप्रदीप में और अलंकार सर्वस्व में अतिशयोक्ति का उदाहरण है : अध्यवसितप्राधान्येन्वतिशयोक्तिः।

बहुत से आदमी गुलाम हैं क्यों कि वे 'नहीं' का उच्चारण नहीं कर सकते।



शास्त्रीय प्रमाणों से प्रस्थापित होने योग्य न होनेपर भी अनुभव की कसौटी पर उतर गया है। सर रिचर्ड बर्टन भी इस अनुभव से सहमत हैं।

गौरवर्ण सफेदपोश–वर्ग को पसंद है, श्यामवर्ण बहुजनसमाज को। गौर का अर्थ बिलकुल शुभ्र नहीं और श्याम का अर्थ एकदम काला नहीं। तब श्यामला का अर्थ क्या हो–नीम गोरी और नीम काली? यह नहीं ज्ञात होता, अतः श्यामला का अर्थ साँवली ही होगा–यही बात जँचती है। उसका प्रतिशब्द भी नहीं दिया गया और उपमा भी नहीं दी गयी है; कारण, देश, काल या वैयक्तिक रुचिके अनुसार ही उस वर्ण की छटा कहीं गहरी और कहीं धीमी हो.जाती है। इतना ही नहीं, व्यक्ति से सम्बन्धित विशिष्ट परिस्थिति के अनुसार ही इस वर्ण में अस्थिरता आजाती है; लाल रंग को जैसे मोतिया नीले रंग को आसमानी कहा गया है – उसी तरह कृष्ण वर्ण को श्यामल! ग्रीष्म का ताप लग गया तो मुर्झा जाने से जरा काला दिखने लगा और फिर जब ध्यान से देखा तो उए पर मोतिया की छटा आ गयी – ऐसा मालूम होता है। और, छाया का आश्रय मिलते ही वह फिर पहले जैसा-हो जाता है; मनोवृत्ति उत्तेजित होते ही गोरेपन की ओर झुकता है और मनोवृत्ति स्थिर हो जाते ही वह फिर पूर्ववत् हो जाना है – ऐसा है यह वर्ण! गंगा और यमुना का जहाँ संगम होता है वहाँ गंगा का गौरवर्ण और यमुना का श्यामल वर्ण इन दोनों का अनुभव होता है – ऐसा कहा जाता है। कल्पना कीजिये– गंगा और यमुना इन दोनों नदियों में ग्रीष्म ऋतु में बाढ़ आ गयी है। क्योंकि हिमालय से निकलनेवाली इन नदियों में बर्फ गलने के कारण गर्मी में ही बाढ़ आती है। गलता हुआ पानी सूखी धरती पर लोटने लगाता है तबभी इन नदियों का पानी गदला नहीं होता; गंगा और यमुना इन दोनों की बाढ़ के पानी पर बहनेवाली झाग के झुंड संगम–स्थान पर एक हो जाते हैं-हिल-मिल जाते हैं और उस समय जो वर्ण दिखाई देगा वही है श्यामवर्ण!

और, श्यामला? अर्थात् ऐसे वर्ण की स्त्री नीम गोरी, नीम काली, श्यामला और चमकती हुई। श्यामला सौन्दर्य की सीमा है, समाधान का निधान है; अप्रसूता – पर बाला नहीं, यौवनमध्यस्था यानी यौवन एवं प्रौढ़त्व दोनों की चंचल सीमा-रेखा पर एक चरण इधर और दूसरा उधर – ऐसी तरल अवस्था में होनेवाली, अल्हड़ भूतकाल की ओर अपांग दृष्टि से अवलोकन करती हुई तथा भविष्य के उपभोग की ओर आतुर और आसक्त दृष्टिक्षेप करनेवाली!... इस तरह की श्यामला एक स्वप्न मात्र है – ऐसी कोई वस्तुस्थिति नहीं अवतरित होगी; पर प्रत्यक्ष पर स्वप्न को आरोपित किया जाय – यही क्या कम है? ●●●

रूपा : **वीरेन्द्र मोहन**



काका सूरजमल किसी एक संस्कृति का नमूना नहीं था। यह कुछ मौजी टाइप का आदमी था। यह आदमी के करने लायक किसी भी काम में प्रवृत्त हो सकता था, मगर मरने के लिए कभी उतावला नहीं रहता था। यों तो मरने के लिए कोई भी, इस जीवन के मौज-मजों को देखते हुए, उतावला नहीं रहता......

काका चमड़ी दे!

चित्तौड़ के राणा रायमल के तीन पुत्र थे–संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल। संग्रामसिंह, और पृथ्वीराज झाली रानी के बेटे थे! जयमल उन का सौतेला भाई था! ये तीनों थे शेर, दबंग, योद्धा! बचपन से एक ही पाठ इन्हें पढाया गया था, खाओ–पिओ और लड़ना सीखो। मारू देश, जिसे आज मारवाड़ कहा जाता है, लड़ाइयों का घर था। जिसे लड़ना नहीं आता था उस के लिए मारू देश में कोई जगह नहीं थी। कभी–कभी इस युद्ध-शिक्षा में लड़ाई का उद्देश्य गौण और युद्ध प्रमुख हो जाता था!

लड़ाई के बारे में जितनी पुरानी नजीरें मिल सकती थीं वे सब यहाँ आम लोगों की जबानों पर रखी रहती थीं। लड़ाई के पैंतरे सब को आते थे। घी–दूध से बदन बनाना भी सब को आता था। एक ही गुरु अनेकों को पढ़ा–सिखा सकता था। घंटों तक तलवारों के पैंतरें चलते रहें और यही फैसला न हो कि कौन थका, कौन हारा! और जब रातदिन लड़ना ही एक काम रह गया, तो फिर धोखे से किसी को मार डालना भी निरी हिमाकत थी। इस की कोई गारंटी नहीं थी कि जीतने के बाद जितेरा तलवार उठाएगा ही नहीं या किसी की तलवार उसकी गरदन पर पड़ेगी ही नहीं। जब जीतने के बाद भी लड़ना ही है,

तो फिर किसी भी लड़ाई में स्वर्ग-लोक में प्रवेश किया जा सकता है। इसलिए लोगों की धारणा कुछ ऐसी बन गयी थी कि किसी को मारना हो, तो खुली लड़ाई में ही मारो—पीछे से छुरा भोंक कर नहीं! फिर, जब रात दिन लड़ना ही लड़ना रह गया है, तो लोगों से कुछ क्षण जीवन के उस विशिष्ट तत्त्व के लिए निकालने होंगे, जिस से जीवन और मृत्यु के भेद का पता चलता है—यानी मनोरंजन, खुशदिली, हंसी-ठट्ठा!

इस संस्कृति में मारवाड़ के सपूत पल रहे थे, और उन्हीं में से इन तीनू सपूतों का था एक काका-काका सूरजमल। यह काका सूरजमल यह कुछ मौजी टाइप का आदमी था। मगर मरने के लिए कभी उतावला नहीं रहता था। वह आदमी के करने लायक किसी भी काम में प्रवृत्त हो सकता था। यों तो मरने के लिए कोई भी इस जीवन के मौजमज़ों को देखते हुए, उतावला नहीं रहता, मगर काका सूरजमल में कोई न कोई ऐसी बात जरूर थी, जो इन तीनों भाइयों को उस का सन्मान करने के लिए विवश करती थी! उदाहरण के लिए उस में एक यही बात जबरदस्त थी कि वह इन तीनों को ही राणा रायमल के बाद गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था और तीनों को युवराज के नाम से संबोधित करता था। इस कारण सभी काका सूरजमल पर खार खाए रहते और सभी को वह प्रिय था।

हुआ यह कि एक दिन अचानक तीनों भाइयों नें एक साथ यह महसूस किया कि उन में एक-दूसरे से ज्यादा बल और रणकौशल है, इसलिए काका सूरजमल से यह तय करा ही लेना चाहिए कि उस के हृदय की अंतरतम गहराइयों की सब से अंधेरी गुफा में युवराज के सिंहासन पर कौन विराजमान है? इसके लिए उन्होंने अपने इस प्रिय काका को एक शाम कुसुम्बा पीने का निमंत्रण दिया और आपस में यह निश्चय कर लिया कि अगर आज भी काका ने सदा की तरह इन लोगों को टांवा दिया, तो काका की गरदन को धड़ पर से उतार कर रख लेंगे।

काका सूरजमल मस्ताना लड़ाका था। चलता था तो झूमता चलता था, दरबान से लेकर पानी छिड़कती गुजरिया तक सब से हंसी-ठिठोली करता था। अमल की डिबिया हमेशा कमरबंद में रहती थी, मगर काका को आज तक किसी ने अमल करते न देखा था। हां, अगर कोई राजपूत उस के सामने यह कह दे कि वह चीनिया रानी का सेवन नहीं करता, तो वह तुरंत काका की नजरों से गिर जाता था। बिना अमल के कोई योद्धा धूमधड़ाके से खड्ग कैसे चला सकता है?—यह काका का प्रश्न होता था।

इसलिए जब छिड़काव की हुई अटारी पर मंद-मंद पुरवैया चल रही थी, लंबा-चौड़ा फ़र्श राज-सेवकों ने बिछा दिया और तीनों भाइयों के सामने कुसुम्बा के पात्र आ गए।

"लो, बच्चों, मैं आ गया," जरा दूर से ही काका सूरजमल की आवाज सुनाई पड़ी। तीनों भाइयों ने एक साथ अपनी काका की आवभगत की और हाथोंहाथ अटारी पर लिवा लाए। थोड़ा-सा ऊंचा आसन काका को दे कर तीनों भतीजे सामने गोलाकार बैठ गए और काका की चिरौरी करने लगे

"जैसो काका हमारा ऐसा सब का हो", जयमल ने प्रसन्न भाव से कहा। काका सूरजमल उसकी तरफ़ मुंह कर के दांत निपोर कर मुस्कराया।

"जयपुर के एक चितेरे से मैं काका का एक ऐसा चित्र बनवा रहा हूँ, जिस में काका के खड्ग से हजारों शत्रु भूमि पर बिछे हुए नज़र आएंगे।" सांगा अर्थात् संग्रामसिंह ने कहा – और काका सूरजमल उस की तरफ़ देख कर भी उसी भांति कृतज्ञता के साथ मुसकराया।

"काका, तेरी टुकड़ी में जितने सैनिक हैं, मैं उन सबको एक-एक सोने की कवच – जाली बनवा दूंगा, अगर तू आज सच-सच बता दे कि तू ने मन ही मन हम तीनों में से किस को युवराज मान रखा है। सच, काका, अब और ठट्ठा नहीं चलेगा।" यह बात पृथ्वीराज ने कही थी।

रोज के प्रतिकूल कुसुम्बा देने के लिए एक सेविका की व्यवस्था की गयी थी, जो अब तीनों राजकुमारों और उन के काका को कटोरे देने में व्यस्त थी। काकाराम अपनी ओर आते कटोरे को इस तरह भूखी आंखों से ताकते रहे, मानो भतीजे की बात का उत्तर उसी कटोरे में था। फिर सेविका के हाथ से कटोरा ले कर काका ने दो घूंट भर कर तीनों भाइयों की तरफ़ प्रशंसा की दृष्टि से देखा फिर कहा:

"अहा! इसे कहते हैं कुसुम्बा! ..."

"काका!" पृथ्वीराजने त्योरी बदल कर मानो धमकाया।

"देखो, भई बच्चों," काकाने अपने हाथ की पांचों उंगलियां फैलाते हुए कहा, "युवराज तो असल में मैं बनना चाहता था और मैं सपने में गद्दी पर अपने को कई बार बैठा भी पा चुका हूँ। पर तुम लोग खूब अच्छी तरह जानते हो कि सपना सपना ही होता है। फिर मैं यह भी सोचता हूँ कि तुम लोग हो तीन तीन, और मैं अकेला तुम्हारा काका। तुम लोगों के हाथों मरने पर मुझे स्वर्ग-लोक भेजा जायगा यह बात तो सही है, मगर मुझे न जाने क्यों अपना यह मरु-देश ही स्वर्ग-लोक से अच्छा लगता है। या तो तुम तीनों एक साथ गद्दी पर बैठने को राजी हो जाओ, वरना लड़ोगे तो लड़ते ही रह जाओगे और मैं चुपके से बैठ जाऊंगा।"

तीनों अपने इस अजीब काका को आश्चर्य से देखने लगे। पृथ्वीराजने कहा—"तीनों एक साथ कैसे गद्दी पर बैठ सकते हैं?"

"यह तुम लोग जानो।" काका ने पूरा कटोरा भर कुसुम्बा चढाने के बाद कहा—"हमारी काका की पदवी न छीनो। अपने को तो यही कोई दो-सौ चार-सौ गांव दे दो—एक तरफ़ पड़े रहेंगे आराम से। यहां रहने की भी इच्छा नहीं। बस, जहाँ अपने गांवों का केन्द्र होगा वहीं एक छोटी-सी मड़ैया डाल लेंगे और अपने विश्वासपात्र सेवकों के साथ रह लेंगे।"

तीनों भाइयों ने एक साथ कुसुम्बा पिया और एक साथ कटोरे खाली किए। फिर पृथ्वीराज ने कहा—"काका, मुझे पक्का विश्वास है कि मेवाड़ पर मेरा अधिकार होगा।"

"इस में कोई संदेह नहीं," काका ने बिना दूसरे दो भाइयों की नाराजगी की परवा किए कहा। "तू अवश्य मेवाड़ का राणा

अनुक्रमणिका





वात्सल्य
(नन्द-किशोर)

अनुक्रमणिका

बनेगा, मेरा बेटा। पर देख, अपने काका का ध्यान रखियो। ऐसा न हो कि किसी दिन..."

लेकिन काका की बात काट कर जयमल ने कहा, "क्या काका? तू ने पिरथी को मेवाड़पति मान लिया। काका, दमड़ी के लोभ में चमड़ी न चढ़ा। तुझे मेरे साथ द्वंद्व-युद्ध करना होगा।"

"बस, यही तो खराबी है कोई भविष्यवाणी करने में। अरे बावले जयमल, अहाहाहा! किस बाँके वीर का नाम तेरे नाम पर रखा जाएगा कि चारण जिस के गीत गाया करेगा? सुन, इस में कोई संदेह नहीं कि मेवाड़ की गद्दी पर तू बैठेगा – पर अपने काका को न भूल जाइयो।"

पृथ्वीराज खड्ग पर हाथ रख कर खड़ा हो गया। "काका, मुझे यह तो पता नहीं कि तेरा हाथ खड्ग पर कैसा चलता है–पर आधी चमड़ी तेरे तन की मेरे हिस्से आएगी। जयमल केवल आधी ही पा सकेगा।"

"देखा, संग्राम, तू ने देखा इन बच्चों को!" काका ने आश्चर्य से संग्रामसिंह की ओर देख कर कहा। "अब इन की अक्ल को क्या कहा जाए? अरे जो गद्दी पर बैठेगा, सो बैठेगा – अभी काहे अपने काका की चमड़ी उधेड़े लेते हो?"

संग्रामसिंह बहुत देर से सोच रहा था कि इस भाव तो बेचारा काका चमड़ी दे बैठेगा और तीनों में से किसी के हाथ भी दमड़ी नहीं लगेगी! उस ने कहा—"काका, यद्यपि मुझे पूरा विश्वास है, पूरा भरोसा है कि मेवाड़ के दस हजार गांवों का स्वामी मैं होऊंगा, लेकिन मैं देवी चारुणी की भविष्यवाणी के सामने अपना यह विश्वास भी बिसारने को तैयार हूँ!"

काका सूरजमल की जान में जान आयी। उस ने उलाहने के साथ अपने शेष दोनों लड़ाकू भतीजों की तरफ देखा, जो अपने अपने खड्ग म्यान से निकाले काका की चमड़ी उधेड़ने को तैयार खड़े थे!

"जीते रहो, बेटा!" काका ने संगामसिंह की तारीफ में उस की पीठ ठोक कर कहा, "इसे कहते हैं दो टूक! चलो नाहरा मोघरा देवी चारुणी जो कह दे सो अंतिम—और अपने काका की जान छोड़ो!"

उसी समय तीनों राजकुमारों और काका सूरजमलने अपनी–अपनी निजी सैनिक टुकड़ी बनाई, जो प्रायः शिकार के समय भी उन लोगों के साथ रहती थी!

जब ये लोग नाहरा मोघरा (देवी चारणी के मंदिर वाला पर्वत) पहुंचे, संध्या हो चुकी थी और वहाँ की पुजारिन मंदिर में दीपक जला रही थी। सब से पहले जयमल और पृथ्वीराज ने मंदिर में प्रवेश किया, देवी की विकराल मूर्ति के सामने हाथ जोड़े और दोनों एक ओर बिछे आसनों पर आराम के साथ बैठ गए।

उन के पीछे, अपने साथियों को उपयुक्त आदेश दे कर संग्रामसिंह और काका सूरजमल आए। उन्हों ने पहले आए राजकुमारों को देखा भी नहीं और देवी के सामने हाथ बांध कर ठीक उस के सामने बिछी मृगछाला पर बैठने के लिए बढ़े। लेकिन काका सूरजमल को संग्रामसिंह का शरीर आगे आ जाने के कारण मृगछाला को घेरने का अवसर ही नहीं मिला कि राजकुमार पहले अच्छी तरह पसर कर बैठ गया। जब काकाराम को जगह ही नहीं मिली, तो उसने आखिर एक घुटना मृगछाला पर रखा और एक खाली फ़र्श पर, और बिना बैठे ही, घटनों के बल खड़ा हो गया। थोड़ा मिल जाए तो उसी में घर बसा ले, काका की यह भावना यहाँ भी चूकने वाली नहीं थी—नहीं तो केवल वर्त्तमान राणा का भाई होने के कारण ही इस मारू देश में उसे बैठेबिठाए कोई खिलाने–पिलाने वाला नहीं था। थोड़े-से साथी थे, सो उन्हीं के बल पर थोड़ी-बहुत उछल-कूद काका कर लेता और राजपूती आन बनाए रखता।

चारों ने आँखें बंद कर के ध्यान लगाया–काका की एक खुली रही। जब पुजारिन त्रिशूल ले कर देवी के सामने आ खड़ी हुई, तो काका ने एक आँख थोड़ी-सी खोले–खोले देवी को पुकार कर कहा:

"हे माता चारणी, तेरे सामने मेवाड़ के ये तीन राजकुमार और उन का यह हतभागा काका पड़े हैं। राणा रायमल के बाद चारों को राजगद्दी चाहिए। अपने मन की सारी भक्ति-भावना से हम चारों प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस की ओर तेरा त्रिशूल उठेगा उसी को हम मेवाड़ की गद्दी का स्वामी मानेंगे और शेष अभी से उस के अधीन हो कर रहेंगे। मां चारणी, अब हम तेरे अनन्य भक्त आँखें खोलते हैं—भविष्य में जो तू ने रच रखा हो बता दे।"

इतना काका के मुँह से निकलना था कि चारों ने आँखें खोल दीं और घूर-घूर कर माता चारणी की ओर इस तरह देखने लगे मानो अभी वह प्रत्यक्ष होकर इन लोगों को सब-कुछ बता जाएगी!

मूर्ति तो हिली नहीं। जैसी थी वैसी की वैसी पत्थर बनी रही। मगर मूर्ति के सामने खड़ी पुजारिन का त्रिशूल हिला। सब ने, देखा





कि उसकी पुतलियाँ इस तरफ ऊपर होकर मस्तक के भीतर चली गयी, मानो चारणी ने ही उन्हें भविष्य के अंधकार में से होनी को पढ़ लेने के लिए बुलाया हो। कुछ देर वह मन-ही-मन होंठों में बुदबुदाते हुए कोई मंत्रोचार करती रही। फिर उसी अवस्था में, पुतलियाँ ऊपर चढ़ाए-चढ़ाए, एक अलौकिक गर्जन के साथ उसका त्रिशूल हिला। गर्जन उसके गले से निकल रहा था। त्रिशूल एक बार चारों ओर घूमा, फिर संग्रामसिंह और सूरजमल की ओर आ कर रुक गया। सहसा ही त्रिशूल उनकी ओर इस प्रकार संकेत करता हुआ आगे बढ़ गया, मानो उस ने उन व्यक्तियों या व्यक्ति को पा लिया हो, जिसे अब तक खोज रहा था। आहिस्ता-आहिस्ता पुजारिन के मुँह से निकला :

"इस समय देवी की मृगछाला ही भावी मेवाड़ का सिंहासन है...।"

पृथ्वीराज और जयमल क्रोध से कंपकंपाते खड़े हो गए। उन्हों ने तलवारें सूंत लीं और पृथ्वीराज जोर से गरजा—"सावधान! भावी मेवाड़ का सिंहासन सूना होने जा रहा है!"

मगर वार धोके से नहीं हुआ। यह रीत ही नहीं थी। संग्रामसिंह और सुरजू काका ने अपने-अपने खड्ग खींच लिए... और जयमल संग्रामसिंह से तथा पृथ्वीराज सुरजू काका से भिड़ गए। पृथ्वीराज ने सूंत कर एक करारा हाथ सुरजू काका के सिर पर फेंका। पृथ्वीराज के हाथ का वजन बहुत भारी पड़ता था। वार सुरजू काका ने खड्ग के बीचोंबीच रोका, किंतु जिस हाथ में खड्ग था वह मानो दोहरा ही हो गया।

संग्रामसिंह और जयमल का जोड़ बराबर था। दोनों बराबर घाव खाते जा रहे थे। हार-जीत का फैसला नहीं हो रहा था। उस दशा में हो ही नहीं सकता था। उधर पुजारिन चिल्ला कर त्रिशूल लिए-दिए भागी।

पृथ्वीराजने दूसरी बार खड्ग उठाया। सुरजू काकाने कहा,—"इस हिसाबसे तो बेटा, तू आज ही अपने काका की खोपड़ी में बाँस दे मारेगा! पर मैं तेरे हाथों इतनी जल्दी तो मरना नहीं चाहता... ओय!..." खड्ग का भरपूर हाथ काका ने फिर एक बार रोका और अनजाने ही दूसरा हाथ मानो खडग रोकने वाले हाथ की सहायता के लिए उठ कर रह गया।

"सच बोल दे, काका," पृथ्वीराज ने कहा, "इस पुजारिन की बच्ची को तू ने ही डरा-धमका कर रख छोड़ा था न यहाँ पर-तेरी और संग्रामसिंह की मिलीभगत थी न?"

"तू अपने मन में इस संशय को लिये रख, बेटा! क्या पता शकुन झूठा ही हो जाय? संशय नहीं रखेगा, तो दस हजार गांव खो बैठेगा... देवी की भविष्यवाणी के नाते तो खो ही बैठा है... पर, देख, मुफ से तेरी तलवार के वार अब नहीं सहे जाते। वास्तव में मैंने तुम लोगों के चक्कर में महीनों से अभ्यास ही नहीं किया। मैं भाग रहा हूँ। कम से कम आज तेरे हाथों नहीं मरूँगा..."

बातें करता-करता काका घाव खाता जा रहा था। मगर कोई भरपूर हाथ उसने अपने सिर पर नहीं पड़ने दिया। जीवन की चाह बहुत भारी थी। उसने अपने सहायक सारंगदेव को पहले ही सिखा-पढ़ा रखा था—मंदिर में ज्यादा देर हो तो मंदिर के भीतर झांक कर देख ले। सारंगदेव इस समय नंगा खड्ग लिए मंदिर के द्वार पर खड़ा था और आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। सुरजू काका ने उस की ओर देख कर कहा :

"सारंगदेव, मेरा बेटा, मेरा दाह-संस्कार आज ही करना चाहता है...।"

"काका, सारी मिलीभगत समझ रहा हूँ...ले, वार संभाल...!"

काका सचमुच ही ज्यादा जख्मी हो गया था। वार तो क्या संभालता, पर तरह दे गया। उचटता हुआ पड़ा, मानो खड्ग बदन की कुछ खाल उतारता चला गया। उस के मुँह से एक 'आह' निकली और वह धीरे-धीरे पीछे की ओर हटता हुआ संग्रामसिंह के निकट पहुँचा और फुसफुसा कर बोला-"सांगा, जयमल तेरे हाथों वीरगति पा जाएगा। पर इस से महाराज प्रसन्न नहीं होंगे चल, बाहर निकल चलें।"

संग्रामसिंह और सुरजू काका दोनों पीछे हटते-हटते द्वार की ओर बढ़ने लगे। काका ने पुकारा - "सारंगदेव, अब तेरी बारी है।"

संकेत पाते ही सारंगदेव आगे बढ़ा, पैंतरा बांधा और लपाक से सुरजू काका की जगह ले ली। सुरजू काका पीछे को हटा और एक बार दीवार की टेक ली। क्षण भर को लगा कि मस्तक घूम रहा है। पर फिर सब ठीक हो गया। पृथ्वीराज का मुँह क्रोध के मारे

लाल हो रहा था। उस के साथी आराम से मंदिर से कुछ दूर उन लोगों के बाहर निकलने की की राह देख रहे होंगे।

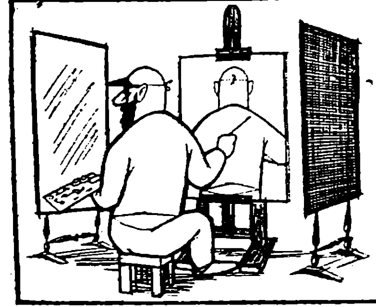
संग्रामसिंह ने सहसा एक करारा वार कर के जयमल को मूर्च्छित कर दिया। सुरजू काका और संग्रामसिंह मंदिर के बाहर निकल गए। पृथ्वीराज ने दो–चार वारों में ही सारंगदेव को जता दिया कि उस का उस से कोई मुकाबला नहीं है। मगर सारंगदेव भात खाने वाला राजपूत नहीं था। फिर भी वह वार बचाता–बचाता पीछे हटने को मजबूर हुआ। पृथ्वीराज उसे धकेलता हुआ मंदिर के बाहर निकाल लाया। वहाँ उस ने अपने साथियों को चिर–परिचित गुहार लगाई। उधर सुरजू काका और संग्रामसिंह अपने घोड़ों पर चढ़ कर नाहरा मोघरा की ढलान की ओर बढ रहे थे। पृथ्वीराज ने चिल्ला कर कहा---" रोको ! "

आज्ञा होते ही पृथ्वीराज के धनुर्धारियों ने प्रत्यंचाएं चढा लीं। सुरजू काका के सैनिकों ने भागने की धुन में केवल अपनी ढालें पर भरोसा किया–मगर संग्रामसिंह को इस प्रकार भागते हुए बड़ा अटपटा लगा। विरोध में उसने घोड़े का मुँह घुमाया और उसे दौड़ाता हुआ बाकी टुकड़ी से उलटी ओर पीछे निकल आया कि उसी समय एक तीर उसकी आँख के नीचे आ लगा। " आह " कर के वह घोड़े की पीठ पर आगे की ओर झुक गया। लगाम एक ओर को खिंच गयी और घोड़े का मुँह फिर घूम गया। स्वामीभक्त घोड़ा अपने मूर्च्छित और घायल स्वामी को लिए शेष टुकड़ी से भी आगे दौड़ता चला गया। शीघ्र ही सारंगदेव पृथ्वीराज को चपरा कर भाग खड़ा हुआ और उन लोगों से जा मिला। पृथ्वीराज के वार वह सह नहीं सकता था, मगर ऐसे में गुरिल्ला युद्ध के अभ्यस्त सिपाहियों का मुखिया होने के कारण उस के पांव काफ़ी चरपरे थे।

मेवाड़ के उत्तराधिकार का संघर्ष इस घटना के साथ समाप्त नहीं हो गया, बल्कि यह उसका आरंभ था। जयमल संग्रामसिंह के पीछे पड़ गया। वह उसकी खोज मिटा देना चाहता था। पृथ्वीराज सुरजू काका की चमड़ी चाहता था। अपने दो हजार सैनिकों के साथ वह मेवाड़ की उपत्यकाओं में एक ही पुकार पुकारता हुआ, एक ही गूंज गुंजाता हुआ घूमने लगा ' काका चमड़ी दे ! '

काका इतनी आसानी से अपनी प्यारी चमड़ी उतार कर देनेवाला नहीं था। इसलिए आगे-आगे वह और पीछे-पीछे पृथ्वीराज मेवाड़ की बालू को खूंदते रहे और इस बीच राणा रायमल ने, जो संग्रामसिंह को ही अपना वास्तविक उत्तराधिकारी मानते थे, उस की हत्या के प्रयत्न का अपराध लगा कर पृथ्वीराज को राजद्रोही घोषित कर दिया और देशनिकाला दे दिया। मगर पृथ्वीराज को तो एक ही धुन थी ' काका, चमड़ी दे.! '

काका सूरजमल पारस्परिक द्वंद्व–युद्ध में पृथ्वीराज को कभी अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं मानता था— अपनी हीनता का उसे बोध था। मगर उस के भीतर एक विचित्र प्रकार की धुन थी। क्या लड़ने के लिए यह जरूरी है कि दोनों प्रतिद्वंद्वियों का बल बराबर हो ? यदि यह आवश्यक नहीं है, तो एक हार जाएगा और अपनी जान खो बैठेगा यह भी उसे मालूम था, मगर जब जान खो देने का मौका आता था तब उसे भागने की सूझती थी, क्यों कि वह मरना नहीं चाहता—विशेष रूप से अपने भतीजे के हाथों !



सेल्फ पोर्ट्रेट !

दूसरी ओर पृथ्वीराज को अपने काका पर बड़ा भारी क्रोध था–क्रोध था इसी कारण कि क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरबा–मगर लड़े जा रहा है ! एक कांटा जैसे पैर में चुभ कर निकलने का नाम लेता ही न हो ! झुंझलाहट थी उस के मन में उस कांटे के प्रति ! उसपर भी राजपूतों की जाति में मृत्यु और उस के दूत युद्ध के प्रति जो खुशफ़हमी थी वह सारी निचुड़ कर मानो काका सूरजमल के भीतर इकट्ठी हो गयी थी। कमी उस की पृथ्वीराज में भी नहीथी, मगर इस मामले में काका–भतीजे में भारी अंतर था। इस से और भी चिढ़ होती थी ! वह अपने काका की विनोदप्रियता से आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता भी अनुभव करता था और चिढ़ता भी था—और यह बात के लिए और भी ज्यादा उकसाती थी कि क्यों न इस काका का अंत कर के वह इस दुलरा-दुलरा कर दर्द पैदा करने वाले कांटे को उखाड़ फेंके !

लेकिन पृथ्वीराज को अपना यह विनोदप्रिय काका फिर आसानी से मिल ही न सका ! सूरजमल ने सारंगदेव के साथ साझा कर के मालवा के सुलतान मुजफ्फर को सहायक बनाया और मेवाड़ के दक्खिनी भाग पर लगातार छापे मारने लगा ! सदरी, बनूरो और नई से नीमच तक का बहुत-सा भाग इस प्रकार उस ने मेवाड़ से अलग कर के अपनी सत्ता वहाँ स्थापित कर ली। अब वह भी एक ऐसी धरती का सामंत बन गया, जो उस ने अपनी तलवार और अपने कौशल के बल पर जीती थी। उस के पास जो सेना थी वह अब पृथ्वीराज की सेना से कहीं ज्यादा थी। पृथ्वीराज के पास कुल एक हजार चुने हुए सिपाही थे, जिन्होंने मरते दम तक उस का साथ देने की कसम खाई थी। सूरजमल एक बली सहायक के साथ कई हजार पैदल व अश्वारोहियों का सेनानायक हो गया था और अपने इलाके से राणा की तरह कर वसूल करने लगा था। पासा देखते ही पलट गया था। लेकिन एक ओर भय तो दूसरी ओर लगन – ' काका, चमड़ी दे ! ' की पुकार मेवाड़ की उपत्यकाओं में उसी भांति प्रतिध्वनित होती रही। सत्ता बन गई थी, तो शत्रु भी दूसरा पैदा हो गया था। राणा रायमल इस प्रकार अपना इतना बड़ा इलाका छीन लेने वालों को नहीं छोड़ सकते थे।



योगीजन शिव को आत्मा में देखते हैं। जो आत्मा में रहनेवाले शिवको छोड़कर बाहरके शिव को पूजते हैं वे हाथमें रखे हुए लड्डू को छोड़कर अपनी कोहनीको चाटते हैं।

एक बड़े युद्ध का आयोजन हुआ। काका सूरजमलने सारंगदेव की शक्ति–योजना और सुलताने मालवा को पीठ पर ले कर इस युद्ध को बहुत चतुराई से लड़ा। नौबत यहाँ तक आ गयी कि राणा रायमल एक साधारण सिपाही की तरह युद्धभूमि में खड्ग ले कर कूद पड़े। उन के शरीर पर घावों का लहू चुहचुहाने लगा और निकट ही था कि वह मूर्च्छित हो कर सदा के लिए सो जाते कि सूरजमल को फिर वही पुरानी गूंज गूंजती मालूम दी।

अपने एक हजार चुने हुए सैनिकों के साथ राणा की गिरती हुई शक्ति को पृथ्वीराज ने न जाने कहाँ से नमूदार हो कर संभाल लिया था। जिस अवसर पर दोनों ओर की सेनाओं का दम निकल चुका था, जब कि केवल थोड़े-से अधिक आदमियों की ताकत पर राणा की नष्टभ्रष्ट शक्ति पर काका सूरजमल अपनी विजय पताका फहराने वाला था----तभी, बस तभी दूर से उसे पृथ्वीराज की गरज सुनाई पड़ी—" काका, चमड़ी दे, मैं आ गया हूँ।"

फिर एक बार वही मंदिर वाला दृश्य उपस्थित हो गया। काका और भतीजा मरणांतक युद्ध में जुट गए। वही भीम की गदा जैसा खड्ग का भरपूर हाथ और वही तरह, वे ही ओछे घाव, वही जहाँ-तहाँ से चमड़ी का शेष शरीर से विलग हो जाना, मानो जानबूझ कर पृथ्वीराज इसी प्रकार अपने काका की प्यारी चमड़ी को उधेड़ रहा था – वीरों की भांति।

मगर काका को फिर अपनी चमड़ी की चिंता पड़ गयी। सारंग-देव ने फिर काका की जगह ली और काका ने फिर अपनी टुकड़ी को समेट कर पीछे की ओर हटना शुरू कर दिया। इस से पृथ्वीराज को सारंगदेव ऐसा मालूम होने लगा, मानो वह बार–बार उस के शिकार को छीन ले जाता हो।

अंत में संध्या हो गयी और नियमानुसार युद्ध बंद हो गया। काका अपनी टुकड़ी ले कर जंगल ही जंगल भाग चला। उस के साथी एक प्रकार से उस के शरीर को ऐसे लिए जा रहे थे, मानो अब उस में कुछ दम न रह गया हो। मगर काका सूरजमल इतनी जल्दी मरना नहीं चाहता था – और वह भी अपने भतीजे के हाथ!

रात को घने जंगल के बीच, जहाँ घने पेड़ों के झुंड-के-झुंड इस तरह खड़े थे कि हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था, सुरजू काका ने डेरा डाला! यहाँ तक पृथ्वीराज पहुंचेगा कैसे? और अगर किसी तरह पहुंच ही गया, तो लड़ेगा कैसे? सारंगदेव साथ था यों तो वह भी घावों और थकान से चूर हो रहा था, फिर भी उसे अपने साझी-दार की चिन्ता थी।

अंधेरी रात में जहाँ–तहाँ मशालें जल रही थीं और उन्हीं के बीच कहीं अपने डेरे से सुरजू काका अपने घावों पर पट्टियां बंधवा रहा था कि तभी 'मारो, मारो' का स्वर सुनाई पड़ा। काका ने चौंक कर कहा, 'हो न हो, यह मेरा प्यारा भतीजा ही है।'

काका का अनुमान ठीक था। पृथ्वीराज ने निश्चय किया था अब रात हो या दिन, काका की चमड़ी को ज्यादा देर उस के तन पर रहने देना उचित नही है। मगर उन जंगलों में एक और समस्या खड़ी हो गयी–अचानक छापा तो मारा, पर यही मालूम नही हो रहा था कि मार सुरजू काका के आदमियों पर ही पड़ रही है या स्वयं अपने पर ही। पृथ्वीराज ने यह नहीं सोचा था मगर डेरे से बाहर निकलते ही उसे स्थिति का भान हो गया। उस ने पुकार कर कर कहा–" ओ बेटे इतनी जल्दी काहे की है? मैं वचन देता हूँ कि सुबह तक यहीं बना रहूंगा – अगर तेरी तरफ से कोई धोखे की बात... खैर, धोखे की बात काका–भतीजे में नहीं चलेगी। बंद कर इस अधर्म को"

पृथ्वीराज आवाज के सहारे नंगी तलवार लिए काका के सामने आ गया। काका निहत्था था और पट्टियों से उस का शरीर भूत की तरह दिखाई पड़ रहा था, जिस पर दूर-पास की मशालों का प्रकाश पड़ कर और भी विचित्रता उत्पन्न कर रहा था!

खड्ग म्यान में कर के पृथ्वीराज ने कहा,–" काका, जुहार ले!"

" जुहार, " काका ने कहा,–" आजा, डेरे के भीतर आ जा!"

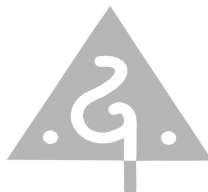
डेरे में आ कर पृथ्वीराज ने सब से पहले अपने प्यारे काका की कुशलक्षेम पूछी, मानो बहुत दिनों बाद मिला हो! वास्तव में भला उस के हाथ था और इस समय उसे विनोद बहुत ही प्रिय लग रहा था! मगर अपने काका की खुशदिली का अनुमान लगाने में उस ने भूल की थी! सुरजू काका ने भीतर ही भीतर घावों से करा-हते हुए, ऊपर से प्रसन्नता में उत्तर दिया:

" काफ़ी भर गए हैं बेटा! तेरी सूरत में अवश्य कोई जादू है!"

" लेकिन, काका, आज मैंने दीवानजी के दर्शन तक नहीं किए! पहले मैं तेरे दर्शन करने चला आया! और हां, मुझे भूख भी तो बहुत लगी है! कुछ खाने को नहीं तेरे पास?"

काका के मुख पर, जख्मों पर पट्टियां बंधवाते बंधवाते ऐसे भाव उभर आए, मानो संसार का समस्त वात्सल्य वहीं आ कर केन्द्रित हो गया हो। " आह, बेटा, तेरे काका के घर में तेरे लिए कभी भोजन





न हो यह तो एकदम असंभव है— सारंगदेव ! ” उसने अपने सहायक को पुकारा।

उस घोर जंगल में खुली हवा की आग में जो कुछ जितनी जल्दी पक सकता था वही पृथ्वीराज और उस के काका के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और जब पृथ्वीराज पहला कौर मुंह में रखने लगे, तो काका सूरजमल ने कहा “ ठहर जा, बेटा। मुझे अब अपनी चिन्ता नहीं रही, तेरी चिन्ता हो गयी है। तू अवश्य कहीं विश्वास-विश्वास में ही मारा जाएगा। क्या पहला कौर श्वान का नहीं होता ? ”

ठीक है-सुरजू काका बड़े मजे में उस भोजन में पृथ्वीराज को विष दे सकता था। मगर पृथ्वीराज ठहाका लगा कर हंसा और बोला,–“ काका, तू भी कभी-कभी भोले बच्चों जैसी बातें करता है। तू क्या समझता है कि मैं तेरे पीछे इसलिए पड़ा हूँ कि तू दिल और दिमाग में मुझ से कमजोर है ? नहीं, काका, वास्तव में मुझे ऐसा लगता है कि तुझे मैं परास्त ही नहीं कर पा रहा हूँ। तू मुझ से बली है, काका ! इसी लिए तेरी गोद में मुझे संसार की किसी वस्तु का भय नहीं है...” और कहते–कहते पृथ्वीराज ने कौर मुंह में रख लिया।

इसी प्रकार भोजन के बाद पान का बीड़ा प्रस्तुत किया गया और वह भी पृथ्वीराज ने बिना किसी हिचक के ग्रहण किया। सचमुच सुरजू काका दिल और दिमाग से कमजोर नहीं था !

चलते समय पृथ्वीराज ने कहा,–“ काका, तेरी-मेरी लड़ाई अब सुबह को समाप्त होगी। ”

सुरजू काका ने उसे अपनी जख़्मी छाती के साथ लगाते हुए, आँखों में स्नेह का जल भरते हुए कहा–“ बहुत अच्छा, बेटा, जरा जल्दी आना। ”

बेटा सचमुच सुबह को जल्दी आया, पर सारंगदेव ने उस के सारे वार अपने ऊपर झेल लिए। लड़ाई जोरों से चल रही थी। काका सूरजमल के साथी धीरे–धीरे कम होते जा रहे थे। ऐसे अवसर पर न जाने काका सूरजमल को क्या सूझी कि वह बोला : “ बेटा, अगर मैंने तेरे हाथों वीरगति पायी, तो मुझे चिन्ता नहीं है। मेरे बच्चे राजपूत हैं और उन्हें इतने लंबे–चौड़े मारू देश में कहीं न कहीं सहारा मिल ही ज़ाएगा। पर अगर मेरे हाथों तू ने वीर गति पायी, तो मेरे माथे पर सदा के लिए काला दाग़ लग जाएगा और लोग मेरे नाम पर थूकेंगे। मैं नहीं लड़ता ... ” और कहते-कहते उस ने अपना खड्ग म्यान में कर लिया।

पृथ्वीराज ने तीव्र स्वर में अपने लोंगो को आज्ञा दी और देखते ही देखते लड़ाई बंद हो गयी। उसने काका से कहा, “ काका तेरी शंका व्यर्थ है। पर तेरी भावना का सम्मान करना मेरा कर्तव्य है। तेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। तेरे बदन पर घावों से अकड़ पैदा हो गयी है। ऐसे लड़ने में आनंद कहाँ ? मैं मेवाड़ की सूई की नोक बराबर धरती तुझे नहीं दूँगा। यह तू याद रखना, काका। जा मेवाड़ छोड़ दे ... तेरा–मेरा युद्ध समाप्त ! ”



तुम ! तीन तरह से !!!

— ब्रज किशोर ‘ नारायण ’

१

ओ मेरी प्रणय – पुस्तिका के –
द्वितीय संस्करण की नई भूमिके !
तुम्ही बताओ कि
तुम्हें अव्यक्त रखूँ,
व्यक्त कर दूँ,
या प्रकाशित होने दूँ ???

२

तुम कोमल तो हो ही
अपने भी हो
क्योंकि आँखों के जरिए
दिल में चले आते हो !

३

तुम कठोर तो हो ही
पराए भी हो
क्योंकि दिल के जरिए
आँखों में चले आते हो !!!

अनुक्रमणिका





• काका सूरजमल ने होंठ मींचे और संभव था कि उसका खड्ग फिर निकल आता कि उसे लगा मूर्च्छित हो रहा है। सारंगदेव ने स्थिति पहचानी और उसे सहारा देकर डेरे में ले गया। पीछे-पीछे पृथ्वीराज गया। उसने सारंगदेव को पैंतीस घाव लगाए थे और उसे डर था कि वह उसके काका को डेरे तक पहुँचा भी पाएगा या नहीं।

काका को पृथ्वी पर लेटा कर सारंगदेव ने साथियों को फिर से उस के खुले हुए घावों की मरहम-पट्टी करने को कहा। तभी पृथ्वीराज ने सारंगदेव के कानों में कहा–" काका सारंग, हमारा और काका का युद्ध समाप्त हो गया है, काका मेवाड़ छोड़ देंगे तो। आओ, इस समय देवी को बलि दे कर सुखद भविष्य की कामना करें। "

सारंगदेव प्रसन्नता के साथ पृथ्वीराज के साथ-साथ चला। कुछ भैंसे और बकरियां पास के गांव से मंगायी गयीं। देवी के मंदीर में बलि का प्रबंध किया गया। पृथ्वीराज स्वयं बलिदाता के स्थान पर खड़ा हुआ। एक भैंसे का सिर उस ने उड़ा दिया। उस के बाद बकरी सामने लायी गयी। उसी समय पृथ्वीराज ने नंगा खड्ग लिए सारंगदेव की ओर घूम कर ताका। खड्ग से रक्त टपक रहा था। सारंगदेव को तुरंत स्थिति का पता चल गया। पलक मारते उस की म्यान से भी खड्ग निकल पड़ा। अब बिना काका की सहायता के वह भतीजे से उलझ पड़ा।

और...थोड़ी ही देर में...वीर सारंगदेव पृथ्वीराज के रक्त चूते खड्ग की धारके के नीचे खेत रहा! वह उस के काक का एक अंग था! पृथ्वीराज ने मानो काका का दाहिना हाथ ही उड़ा दिया था!

इस के बाद जब पृथ्वीराज काका सूरजमल के डेरे पर पहुंचा तो वह वहाँ नहीं था! उस के साथियों में से भी कोई नहीं था! उसी डेरे लेट कर पृथ्वीराज ने स्वयं अपने कपड़े खोल दिए और उस के साथियों ने उस की मरहम-पट्टी आरंभ कर दी। उस न अपन काका के साथ हिसाब साफ कर लिया था!

मगर काका सूरजमल ने मेवाड़ छोड़ते-छोड़ते अपने सारे गाँव ब्राह्मणों को दान कर दिए, क्यों कि उस समय ब्राह्मणों की नैतिक शक्ति राजपूती तलवार से बड़ी भारी मानी जाती थी—जिस का उन्होंने पर्याप्त दुरुपयोग भी किया। दो-चार साथियों को ले कर काका सूरजमल ने मेवाड छोड़ दिया। जगह-जगह शरीर जख्म थे, मन भी जख्म था। अपने भतीजे के हाथों वह नहीं मरा था, किंतु सारंगदेव के वियोग में उस का तन-मन फुंक रहाँ था। उस का अंत समय जान कर ही उस ने डेरा छोड़ा था। जीवन था, मगर अब काका सूरजमल को जीवन से घृणा हो गयी थी—घोर घृणा। फिर भी जीवित बने रहने की उस की संस्कारगत आग उस के जीवन का आधार बनी हुई थी।

बहुत दिनों तक जो गुहार उस के पीछे पड़ी हुई थी वह कहीं दूर क्षितिज में लोप हो गयी थी—" काका, चमड़ी दे। " चमड़ी नहीं गयी थी, पर जीवन में जो कुछ प्रिय था सब चला गया था। काका सूरजमल की कहानी यहीं खत्म हो जाती, अगर जीवन की आधारभूत उस आग ने एक बार फिर उस के लिए हरे-भरे संसार के द्वारा न खोल दिए होते।

उस की भविष्यवाणी के अनुसार पृथ्वीराज विश्वास का शिकार बना। उस के बहनोई ने ही उसे धोखे से विष दे कर मार डाला। जयमल पहले ही एक युद्ध में मारा गया था। उन्हीं दिनों मीनाओं के क्षेत्र में काका सूरजमल जब एक दिन जंगल में हारा-थका अपने चार साथियों के साथ जीवन-दर्शन के पूर्व स्थापित मूल्यों को कसौटी पर नए सिरे से कस रहा था, उस ने एक विचित्र दृश्य देखा :

एक भेड़िया एक भेड़ के बच्चे को उठा कर ले जाना चाहता था। भेड अपनी समस्त मातृ-भावना से, अपनी समस्त ओछी शक्ति से भेड़िए को इस से वंचित करने के प्रयत्न में लगी हुई थी। भेड़िया बच्चे के मीठे मांस के लोभ उसे मुँह से छोड़ना नही चाहता था। इसीलिए उसे भेड़ से लड़ने की फुरसत नहीं मिल पा रही थी। इसी उहापोह में भेड़ ने उसे काफी जख्मी कर दिया। बच्चे को ले कर चलने लगा, तो उस की गरदन से लिपट गयी—बच्चा यों कभी भेड़िए के पल्ले नहीं पड़ा—मातृ-वात्सल्य की विजय हुई... और...

काका सूरजमल फिर एक नए उत्साह के साथ उठ खड़ा हुआ! अपने चार साथियों के सहारे उस ने आसपास के मीनाओं को पराजित किया और एक दिन उसी क्षेत्र में एक स्वतंत्र व स्वाधीन किले की स्थापना की—देवला का दृढ़ किला। राणा रामयल के बाद राणा सांगा ने सदा उसे सम्मान से देखा।

वह किला आज तक काका सूरजमल के जीवन-संघर्ष की स्मृति के रूप में विद्यमान है। पर अब तो स्वयं काका का जीवन 'संघर्ष' का पर्यायवाची बन गया है। •••



'पल्लवी चल बसी' ये शब्द बंदूक से निकली गोली की तरह मेरे कानों में घुसे।

"नहीं...नहीं...ऐसा हो ही कैसे सकता है?" यकायक मेरे हाथों से रिसीव्हर अनजाने ही गिर पड़ा। मुझे याद आयी वह सीमा-रेखा तक आकर मानों असहाय बनकर लौटा करती थी...

आह!

स्टापपर बस आ चुकी थी। कंडक्टर चिल्लाया, "खाली एक आदमी आ जाव! खाली एक आदमी!!" मेरा पहला ही नंबर था। सोचा, चलो गनीमत हुई और सीधे बढ़ा उसमें चढ़ने। मेरे पीछे लोगोंका जमघट तो था ही। पर कंडक्टरने उन्हें रोका। मुझे भीतर ले लिया गया था और बस चल पड़ी थी। सभी लोग हक्केबक्के से रह गये होंगे! मैं अपनेको संभालते हुए ऊपर की डेकपर जाकर जगह ढूँढ ही रहा था कि आगेकी तरफ एक 'सीट' नजर आयी। मैं गैंगवे से निकलकर तुरंत जा बैठा वहाँ।

इतनेमें कंडक्टर टिकट माँगने पासमें आ खड़ा हुआ। हमेशा की तरह बेपरवाहीसे जेबमें पाकेट टटोलते हुए मैंने कहा, एक शिवाजी पार्क। मगर...मगर पाकेट तो हाथमें नहीं आया। मैंने अब अपनी सभी जेबें ढूँढ़ना शुरू किया। मेरी यह परेशानी कंडक्टरकी नजरसे चूकी नहीं। बड़े अदबसे उसने पूछा — "क्या हुआ साहब?"

इस सवालका जवाब देना सरल था, मगर उससे उसको कोई क्या वास्ता! मेरी आँखोंसे शायद वह मेरी हालत पहचान गया था। पूछ बैठा–"क्या किसी पाकेटमार से सामना हुआ?"

"नहीं, नहीं तो! मैं ही भूला अपना पाकेट आफिस में।" ऐसा कहते–कहते मैंने जगहसे उठनेका अभिनय किया और कहा–"अब अगले स्टापपर उतर जाऊँगा!"

श्री. अच्युत बर्वे :

आप मराठी भाषा के सफल कथालेखक हैं। हर्ष-विषाद, क्रोध-शांति आदि मन की भावनाओंको आप अपनी कहानियों में भली भाँति चित्रित करते हैं। 'आह' कहानी इस बातकी साक्ष देगी।

कंडक्टर मजबूरीसे खिसका ही था कि पड़ोसमें बैठे व्यक्तिने पूछा—" क्यों जी ! अगले स्टापपर उतरकर क्या करेंगे ? "

उसकी नजाकत भरी आवाज ने मेरी नजर को बरबस अपनी ओर खींच लिया ! अबतक मैंने उसकी ओर देखा भी न था। यह बिलकुल अपरिचित युवती अपनी नजरों से जैसे मुझसे पूछ रही थी—" क्यों जी, आप अगले स्टापपर उतरकर क्या करेंगे ? "

मैंने उसकी तरफ़ देखते जवाब दिया–" देखूँगा, उतरकर। कोई परिचित मिल गया तो, ले लूँगा कुछ पैसे उधार ! "

मेरे जवाब पर वह तनिक मुस्कायी जरूर पर मुस्कान को उसने अपने होंठों में दबा लिया कि कोई उसे भाँप न ले। फिर तत्काल उसने अपनी गर्दन मेरी ओर झुकाते हुए पूछा — " आपका टिकट मैं कटवाऊँ तो आपको कोई एतराज तो नहीं ? "

मेरी जेबमें पैसे रहनेपर कोई मेरी इस प्रकार मदद करता तो और बात थी, मगर ऐसी मजबूरीकी हालतमें उससे मदद लेते हुए मुझे बड़े संकोच का अनुभव हुआ। अतः उसका प्रश्नोत्तर मैंने अपनी चुप्पीसे ही दिया। मेरा न बोलना ही मेरी स्वीकृति है इसी विचार से उसने कंडक्टरको बुलाकर 'शिवाजी पार्क' का एक टिकट ले लिया।

आगे बढ़ाए हुए उसके हाथसे टिकट लेकर मैंने कहा–" मेरा धन्यवाद देना आपको शायद जँचेगा नहीं ? "

" ठीक तो है; पर आप ऐसे प्रस्तावसे धन्यवाद ही नहीं तो और क्या दे रहे हैं ? "

उसके इस प्रतिप्रश्न से मुझे हँसी आयी। स्मित हास्य में मैंने कहा–" वैसी बात नहीं, वह मूर्खता मैं नहीं करूँगा ! " धन्यवाद देनेकी मूर्खता तो मैंने नहीं की, किंतु जोरोंसे हँसनेकी मूर्खता मैं जरूर कर बैठा था। शायद वह उसे पसंद नहीं आया था। क्योंकि मेरी ओर ध्यान न देकर वह अब खिड़कीसे बाहर देखने लगी थी।

अब बस कैम्प कार्नरसे आगे बढ़ चुकी थी। सारी परिचित इमारतें और जगहें धीरे-धीरे आँखों से ओझल हो रही थीं। समुद्र की शीतल हवा मुझे अनजाने सुख प्रदान कर रही थी। तथापि पास ही में बैठी उस युवती का भूलसे भी मेरा अंग-स्पर्श न हो इस बात पर मैं सर्वाधिक ध्यान दे रहा था। प्रातःकाल होनेपर पद्मिनी जिस प्रकार दब जाती है उसी प्रकार वह भी दबी बैठी थी। अब बस हाजीअली से आगे बढ़ रही थी। समुद्र से बहनेवाली शीतल हवा अंदर घुसी तब उसने अपने चेहरे को भीतर की तरफ कर लिया। हम दोनों की चार आँखें हुईं तब लाचार होकर उसने पूछा–" हवा तो काफी ठंडी लगती है न ? " मेरे ही मौनको टूटना पड़ा और मैं उसी लहजे में पूछ बैठा—" तो क्या मैं जरा शटर नीचे खींच लूँ ? " मैंने सोचा शायद ठंडी हवा उसके सुकोमल शरीरको बरदाश्त नहीं होती होगी।

उसकी तरफ़से जवाबका इन्तजार किये बगैर ही मैंने खिड़की का शटर लगभग आधा नीचे खींच लिया और कहा–" इस तरह दबी क्यों बैठी हैं ? मुझसे आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं ? "

अबतक वह दबी बैठी थी। उसने अब अंगोंको जरा फैलाया। यही मेरे सवालका शायद जवाब था। वह कुछ बोली तो नहीं, मगर मैंने अपने आप उसके जवाब को समझ लिया। शायद वह कहना चाहती थी — 'मुझ जैसी पतली लड़की के लिये बैठनेको कितनी जगह चाहिये ?'... उसका यह कहना भी योग्य ही तो होता। क्यों कि वह आकारसे पतली और बिलकुल सजी हुई गुड़िया जैसी सुंदर दीख रही थी। उसका सौंदर्य किसीको भी बार–बार उसकी ओर देखनेको मजबूर ही तो करता ! पर इस प्रकार लगातार देखना अनुचित ही कहा जाता—क्योंकि बहुत संभव है कि मेरा दृष्टि–भार उस कोमलांगी को असह्य हो।

पोर्तुगीज चर्चके पास जब बस मुड़ी तब मैंने उससे पूछा–" कहाँ उतरनेवाली हैं आप ? "

थोड़ी शरारत भरी आवाजमें, पर मुस्कुराते हुए उसने पूछा–" आप असलमें पूछना क्या चाहते हैं ? मेरा उतरनेका स्टाप या रहनेका स्थान ? "

उस लड़कीकी चतुरता मेरे ध्यानमें आयी थी। जिस शरारत भरी आवाजमें उसने पूछा, उसी रुखमें मैंने कहा– "रहनेकी जगह आप बताएँ तो ज्यादा अच्छा हो ! "

" क्यों ? "

यह बड़ा ही मुश्किल था कहना कि मैं उसकी रहनेकी जगह क्यों जानना चाहता हूँ। तो भी कोई गलतफ़हमी न हो इसलिये मैंने जल्दीमें कहा — " नहीं ऐसे ही। सोचा, आपने जब मेरी इस आपत्तिमें मदद की है तो...... "

" तो आप वे पैसे लौटाकर कर्जे से मुक्त होना चाहते हैं ? क्यों, ठीक है न ? "

जब मेरे मनके भावोंको उसके मुँहसे मैंने सुना तो मैं जरा सहमा। उस सहमे भावको न दर्शाते मैंने कहा—" आपके पैसे मैं लौटा सकूँ तो सचमुच अपनेको खुशनसीब समझूँगा। "

" लेकिन आप पैसे न लौटाएँ तो मैं अधिक खुश होऊँगी। "–ऐसा कहते हुए उसने अपने सुखद सुविस्तृत नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए कहा–" पैसे वापस लेनेके बारेमें आपका अनुरोध तो नहीं ? "

" बिलकुल नहीं। पर आपका नाम आप बताएँ, ऐसा अनुरोध अवश्य है। "

" हाँ, एहसान करनेवाले का नाम मालूम होना चाहिये ! " ऐसा वह कह तो रही थी, पर अपना नाम बताने को तैयार नहीं दीख रही थी। मैंने एक–दो बार सूचित करने की कोशिश भी की, मगर उसने ध्यान नहीं दिया।

आखिर शिवाजी पार्कका स्टाप आ चुका था। मैं इस आखिरी मौकेपर सवाल कर ही बैठा—" आपने अब तक अपना नाम नहीं बताया ? "

अनुक्रमणिका





" फिर जब इसी प्रकार मुलाकात होगी तब जरूर बताऊँगी " मुस्कुराते हुए उसने कहा।

मैं तुरंत बससे उतर गया। उतरनेपर, एकबार उपर देखूँ और हाथोंको उठाकर ' टा ऽ ऽ टा ऽ ' करके बिदाई की सूचना दूँ, ऐसा विचार मेरे मनमें आया भी, लेकिन उतना साहस मुझमें नहीं आ सका। उस दूर जानेवाली बसकी ओर मैं काफ़ी समयतक ताकता रहा। वह बसका टिकट, हमेशाकी तरह मैंने फाड़ नहीं डाला। एक विशिष्ट भावनासे उसको सुरक्षित रखा। * *

वैसा तो मुझे यकीन था कि यह लड़की और कभी जरूर दीख पड़ेगी। बड़ी अपेक्षासे मैं उसी समय, उसी स्टापके पास खड़ा रहने लगा। दो-चार दिनोंसे मैं बड़े अरमान भरे दिलसे बसमें चढ़ा करता था, पर बार-बार वही निराशा। अनजाने वह लड़की मेरे जीवनमें आयी थी, बिलकुल शांत पानीमें कंकड़के गिरनेकी तरह। मेरी हालत भी उसी पानी जैसी हुई थी। वह लड़की मुझसे मिली, उसने मेरा टिकट कटवाया। मुझसे उसने दो-चार बातें भी की थीं पर उसने अपना नाम-पता नहीं बताया था। आश्वासन दिया था बतानेका दूसरी मुलाक़ात में; पर वह आश्वासन कब सफल होनेको ! मानों असंभव हो। मैं उसका विचार टालने की कोशिश करता, मगर दिल कहाँ उसकी यादको छोड़नेवाला। कोई हमें गुदगुदाये और हमारी जान आफत में डाले, तो भी हमें हँसी जरूर आती है। ऐसी ही मेरी हालत थी। उसका विचार आते ही मन अस्वस्थ होता था, पर एक भिन्न प्रकारका सुख भी उस में मिलता था। उसके मिलने की आशा में मैं हर उषःकाल का बड़ी खुशीसे स्वागत करता और मुलाकात न होनेपर निराश भी हुआ करता ! पर ऐसे दिन हमेशा नहीं आया करते !

एक रोज यकायक वह बस में ही मुझसे मिली। शिवाजी-पार्क के स्टापपर मैं चढ़ा था, बसपर। हमेशाकी तरह ऊपर के डेक पर जा बैठा। और आश्चर्य ! मैंने उसको सामने की खिड़की के पास बैठी देखा। मनमें आया सीधे सामने जाऊँ और पूछूँ कि उसने पहचाना या नहीं। और हो सके तो बगलमें बैठ भी जाऊँ-पर वैसा कुछ मैं कर नहीं सका। कंडक्टरके आते ही मैंने अपने टिकट के साथ उसका टिकट भी कटवाया। सोचा यह बात वह अपने आप समझ जायेगी और चुप बैठा।



कंडक्टर उसके पास गया। उससे वह क्या बोला यह मैंने नहीं सुना पर उसने यकायक आश्चर्यसे पीछे देखा। मैं दीख पड़ा। उसका मुखड़ा खिल उठा। वह वहाँसे उठी और सीधे मेरी बगलमें आ बैठी और आश्चर्यसे बोली- " अजी आप ! मैंने सोचा और कोई होंगे ! "

इस लड़कीसे मिलनेके लिये मैं गत आठ दिनोंसे तड़प रहा था। वही लड़की आज मेरी बगलमें, सीटपर बैठी है मगर उससे बात करने के लिये मेरा मुँह क्यों बंद ! मैं कुछ सोच ही नहीं सका था। इसी तरह दोनों ओर चुप्पी हो तो उतरनेका स्टाप आ जायेगा और मौका मिलनेपर भी कुछ बातचीत किये बग़ैर ही हमारा वियोग होगा इस भावनासे व्यथित होकर मैंने उससे पूछा- " आप कुछ बोल क्यों नहीं रही हैं ? "

" यही तो सवाल मैं आपसे अभी करनेवाली थी ? " इसपर हम दोनों काफ़ी हँसे। हँसते-हँसते ही मैंने पूछा-" आज तो आप अपना नाम-पता देंगी न ? "

" बताऊँगी क्यों नहीं ? नाम बताने में भी क्या है ? " ऐसा कहते हुए उसने बताया कि उसका नाम ' मिस् देशपांडे ' है।

इसपर मैंने कहा—" यह तो आपका उपनाम हुआ। "

" फिर ! "

" मैं आपका अपना नाम जानना चाहता हूँ। "

" तो आप यह भी चाहते हैं "-यह कहने की भावना से ही शायद उसने कहा, " मेरा नाम पल्लवी है। मिस् पल्लवी देशपांडे ! "

मैं बड़ा ही प्रभावित हुआ इस नामसे। मानों उस नामका रस चखते हुए मैंने पूछा-" तुम्हें किस नामसे पुकारते हैं, घरमें ? "

" बेबी "—

" अच्छा, तो यह बात है ! बिलकुल ठीक है फिर...! "

" क्यों जी ? हुआ क्या ? "

" कुछ नहीं ! आप जैसी कोमल, आकर्षक लड़की को ' बेबी ' ही तो कहना चाहिये ! "

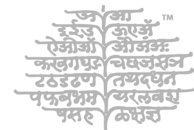
बातचीत के प्रवाह में मैं यह जाहिर कर चुका था कि वह कोमल और आकर्षक है। मेरे इन विशेषणों से वह थोड़ी और खिल उठी। कुछ मेरी तरफ सरकते हुए उसने कहा-" मेरा नाम तो पूछ बैठे, लेकिन अपना नाम भी तो बतायेंगे। "

गंभीरतासे मैंने कहा—" अगली बार मिलेंगे तो बता दूँगा। "

" नहीं जी, ऐसा क्यों ? वह तो मैं नहीं मंजूर करनेवाली ! ! "

" अच्छा तो, आपकी मर्जी ! " ऐसा कहते हुए मैंने अपना नाम उपनाम, सब बता दिया। उसके अपेक्षित प्रश्नोंके सब जवाब मैंने एकसाथ दे दिये तब वह हँसने लगी। शायद मेरी विनोद वृत्तिको जान गयी थी और इसीलिये वह अब दिल खोल बातें करने लगी।

उस रोज तो हम इतना बोलते रहे कि मानों हम चिरपरिचित हों। मैंने लगभग अपनी सभी विशेषताओं को उसके सामने पेश किया और बड़ी चालाकीसे उसके गुणों को भी निकलवा लिया। कहाँ रहती है, किस कालेज में और क्या





पढ़ती है। अपने शौक आदिका उल्लेख तो उसने अपनी बातोंमें कर ही दिया।

आपेरा हाऊस का स्टाप आया। मैं अभी उतर जाऊँगा यह उसके ध्यानमें शायद आ चुका था। झट उसने अपने पिताजी का टेलीफोन नंबर मुझे दिया और इसी जल्दी के सिलसिले में मेरा टेलीफोन नंबर भी नोट करवा लिया।

* *

संयोगसे और थोड़े समयके लिये ही क्यों न हो, हमारी दो मुलाकातें हुई थीं। मैं अब चाहता था कि, खास 'ऍपॉयन्टमेंट' लेकर मिलें। यह कोई नामुमकिन बात थी नहीं। क्योंकि उसका टेलीफोन नंबर जो था मेरे पास। लेकिन बिना कारण टेलीफोन करना मुझे जँचा नहीं। वैसा करना ठीक भी नहीं था। वर्ना वह समझती कि मैं बहुत ही अधीर बना हुआ हूँ और इसीसे शायद वह मेरे स्वभाव के बारेमें कुछ और ही समझ लेती। समझनेमें वैसी कोई भूल न हो इसलिये मैं ही टेलीफोन करना टालता था। वह खुद करेगी मैं इसीका इन्तजार करता रहा।

और, आखिरमें मेरी इंतजारी कामयाब हुई। एक रोज शामको दफ्तर बंद होनेके समय उसका टेलीफोन आया। कोयल की भाँति मीठी आवाजमें उसने पूछा–" संदीप रणदिवे बोल रहे हैं ? "

" जी, मैं संदीप, पर आप कौन ? " मैंने ऐसा सवाल जान बूझकर किया था।

मेरे इस सवालपर वह शायद हँसी होगी। उसने कहा–" अच्छा तो आप ही पहचानिये न ? तीन चान्स हैं आपको ? "

मुझे टेलीफोन करनेवाली और कोई मेरी परिचित लड़की तो थी नहीं। फिर भी विचार करनेका बहाना करते हुए मैंने कहा...... तो...... शायद मिस् पल्लवी देशपांडे ? क्यों ठीक है न ? "

" तो फिर आपने पहचान ही लिया "–ऐसा कहते उसने लंबी साँस-सी ली और कहा, तो कहिये जी...... ? "

वैसा तो कहनेके लिये काफ़ी था। पर टेलीफोन उसने किया था और इसलिये स्वभावतः शुरूमें बोलनेकी जिम्मेदारी भी उसी की थी। मैंने यह बात निःसंकोच बनकर कह भी डाली। उसपर उसने कहा– " अच्छा तो मैंने टेलीफोन किया यही भूल हुई शायद ? "

" ऐसा क्यों समझती हैं आप ? मैंने ऐसा थोड़े ही कहा है ?"

" फिर बोलिये न आप ?"

और, अनजानेही मेरे मुँहसे निकला–"अच्छा तो आप ही बोलिये न ?"

मैंने सोचा इस प्रकार हम बोलते रहें तो एक दूसरे को प्रथम बोलनेके अनुरोधके अतिरिक्त कुछ बातचीत ही नहीं होगी। इसलिये मैंने कहा–" हाँ, तो आप महोदयाने मुझे क्योंकर याद किया ? "

" कोई विशेष बात नहीं ! आयी थी इसी तरफ़, सोचा, पूछूँ आपसे, साथमें दादर तक चलनेके बारेमें !"

प्रसन्न चित्त से मैंने कहा–"चलेंगे, क्यों नहीं ! पर...मिलें कहाँ ?... अच्छा, तो फिर आप मेरे दफ्तरमें ही क्यों नहीं चली आती सीधे ?"

" मैं क्यों न आऊँ वहाँ ? "

" तो क्या मैं आ जाऊँ सीधे ? "



उ पे क्षा

—तारकेश्वर मैतिन

एक था आदमी जिसे पेड़-पौधों से बड़ा प्रेम था। एक दिन उसे एक अच्छे फल के पेड़ का बीज मिल गया और वह बड़ा खुश हुआ। उसने उसे अपनी चारदीवारी के भीतर रोप दिया।

धीरे-धीरे पौधा बढ़ने लगा, बढ़ते-बढ़ते पूरा वृक्ष भी बन गया। पर दुर्भाग्य देखिए, उसमें एक भी फल नहीं लगता। वह बेचारा बड़ा परेशान हुआ। सोचता देखो तो, मैंने कितने प्रेम से इस पेड़ को रोपा था, फिर भी यह किसी योग्य नहीं हो पाया।

संयोग, ऐसा, एक तूफान में वह पेड़ गिर पड़ा और बेचारे मालिक का पूरा मकान क्षत-विक्षत हो गया।

* * *

मुंशीजी को जब पुत्र होने की सूचना मिली तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़े प्यार से उसे पाला-पोसा और बड़ा किया।

एक दिन मुंशीजी बहुत बीमार पड़े। मगर दुर्भाग्य देखिए, पास में कोई ऐसा न था जो उनकी सेवा करता, उनके दुःख में हाथ बंटाता। पत्नी पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थी और पुत्र को अपनी आवारागर्दी से अवकाश ही नहीं मिलता।

मुंशीजी अपनी किस्मत पर हाथ देकर रोते। सोचते देखो तो, मैंने कितने प्रेम से इसे पाला-पोसा, इतना बड़ा किया, फिर भी यह किसी योग्य नहीं बन पाया।

संयोग की बात, जब मुंशीजी अपनी दवाइयों के लिए भी आर्थिक विषमताओं से घिरे थे, उनका पुत्र रोज ही उनका कुछ न कुछ रुपया चुरा कर फूंकता।

टिमटिमाता दीपक कब तक टिक पाता ? एक दिन उसकी सांस उखड़ गई, मगर किसी ने एक सिसकी भी नहीं भरी।

" आप ही आइये न ! " ऐसा कहकर उसने जगह बतायी। मेरे मुँहसे तुरंत निकल पड़ा " अभी जो चीला, " और मैंने काफ़ी जल्दीबाज़ी की और दफ़्तरके दरवाज़ेसे बाहर चल पड़ा।

आज तो पल्लवी अधिक सुंदर दीख रही थी। आसमानी रंगकी साड़ीमें उसकी पतली देह आज कुछ स्थूल-सी नज़र आ रही थी। मेरे दीख पड़तेही विगड़े रुखमें उसने कहा-" आपको टेलीफोन करते थक गयी मैं ! "

मैं तुरंत समझ गया कि, हमेशा 'इन्गेज्ड' रहनेवाले हमारे टेलीफोनने उसको तंग किया होगा। फिर मी अनजानेपनका दिखावा करते हुए मैंने कहा-" क्यों ? क्या हुआ ! "

" कितनी बार टेलीफोन करूँ ? नंबर फिराते-फिराते मेरी उँगलियाँ दर्द करने लगी ! "

मुझे लगा कि उससे कहूँ कि चाहें तो उंगुलियाँ दबा दूँ। पर ऐसा साहस उचित नहीं था। मैं कुछ बोला नहीं। केवल 'अरेरे !' उच्चार करते हुए दुःख प्रकट किया और कहा-" तो फिर आप सीधे दफ्तरमें ही क्यों न चली आयीं ? "

" आपने बुलाया भी था ? जो पूछ रहे हैं ? "

इसका जवाब मैं दे सकता था, पर मैंने वह न देना ही योग्य समझा। क्योंकि कभी कुछ ऐसे सवाल भी होते हैं जिन का जवाब न देना ही योग्य होता है।

उसका यह सवाल भी उसी प्रकारका था। मैंने उसे अपने दफ्तरमें बुलाया नहीं था या टेलीफोन भी करनेको नहीं कहा था। सत्य बातको प्रकट करके सारा मज़ा किरकिरा न हो इस ख्यालसे मैं चुपचाप बैठ रहा ! फिर विषयको बदलनेकी दृष्टिसे पूछा-" कहाँ चलना है ? "

" क्यों ? दादर ही तो ! "

" दादर तो जाना है ही, मगर पहले कुछ चाय वग़ैरह पी ले तो क्या हर्ज़ है ? " जवाब की अपेक्षासे मैं उसकी ओर देखता रहा।



बीबी की है सारी माया... !

मुझे निराश किया उसने। मेरे इस प्रस्तावको उसने मीठे शब्दोंमें ही ठुकरा दिया और कहा "-चाय लेनी हो तो दादर में हमारे घर जाकर लें। " कुछ रुक कर फिर बोली, " तो चलेंगे न मेरे घर ? "

बस अब वरली-नाका तक आयी थी; तो भी वह चुप थी। एक शब्द भी बोली नहीं, केवल बैठी रही वह। मैंने भी उसीका अनुकरण किया। दो प्रिय व्यक्तियों का पास में बैठकर एक दूसरे की तरफ़ लुक-छिपकर देख लेना कुछ कम प्रसन्नता प्रदान नहीं करता। जिसका पूरा आनंद मैं ले रहा था। मगर उसकी तरफ़ देखते समय एकबार भी हम दोनों की चार आँखें नहीं हुई। मैं ज़रा सहमा। अनुमान नहीं कर सका कि उसके मनमें क्या चल रहा होगा। समझमें नहीं आ रहा था कि उसका यह 'मूड' ऐसा यकायक क्यों बदला !

बस अब 'एमेच्युअर क्लबसे' आगे बढ़ी। मैंने उसकी ओर देखा और पूछा-" काहे का विचार कर रही हैं आप ? " इसपर उसने अपने अपनी आँखें उठाकर देखा। मैं थोड़ा-सा डरा और धीमी आवाज़ में मैंने पूछा-" आपकी आँखों में आँसू कैसे ? "

अपने छोटे-से रुमालसे उसने अपनी आँखें पोंछ लीं और कहा-" मेरी तबियत जरा ठीक नहीं। "

" क्या हो रहा है आपको ? "

" छाती भारी महसूस हो रही है। अस्वस्थ-सी हो रही हूँ। अगले स्टापपर उतरकर हम सोडा लें तो आपको कोई आपत्ति...... ? "

" नहीं, नहीं ! ठीक भी है ! सोडा लेनेपर आप निश्चित स्वस्थ होंगी। " ऐसा कहते हुए मैंने उसकी हिम्मत बाँधी और बसके रुकनेका इंतजार करने लगा।

बिल्कुल सावधानीसे और बड़ी दक्षतासे मैं उसे 'बर्तोरेली' में ले गया। न चाहनेपर भी उसे बुरा न लगे इस दृष्टिसे मैंने अपने लिए भी सोडा मँगवाया। वह अब चेहरे पर से जरा स्वस्थ दीखने लगी मैंने तब कहा-" थोड़ा और समय आप आराम से बैठें तो आपकी तबियत अपने आप ठीक होगी। "

" नहीं नहीं ! अब ठीक हूँ मैं। घर जाने पर अच्छा लगने लगेगा। "

मेनरोड पर आते ही मैंने टैक्सी बुलायी। भीतर टैक्सीमें बैठते-बैठते उसने कहा-" कितनी तकलीफ उठा रहे हैं, आप मेरे लिये? "

" असल में आपका यह बोलना मुझे अधिक व्यथा पहुँचाता है। "

मेरी व्यथित आवाज़से शायद वह पिघली और मेरी तरफ सरकते हुए बोली-" अच्छा तो फिर मैं और कभी ऐसा नहीं बोलूँगी। "

टैक्सी अब उसके घरके पास आयी थी ! मैंने पूछा, " आपके पिताजी नाराज तो नहीं होंगे मेरे घर आनेसे ? "

" आपका आना भला क्यों नहीं पसन्द आयेगा उन्हें ? मैंने तो सारी बातें पापा को बतायी हैं कि हम दोनोंकी भेंट कैसे हुई, मैंने आपका टिकिट कैसे कटवाया, फिर आपने कर्जा कैसे चुकाया... । "

" इससे ऐसा लगता है कि आप बाहर की हर बात अपने 'पापा' को बताया करती हैं ? क्यों ? "





"मैं तो उनसे कोई बात छिपाकर नहीं रखती।" इससे मैं ज़रा अस्वस्थ हुआ। तय कर लिया कि ज़रा संभलकर रहना होगा।

हम दोनों ने उसके घरमें प्रवेश किया। अपने पिताजी से उसने पहचान करा दी। उसने अब भी सारी बातें पापा को बता दीं। घर आते हुए उसकी तबियत कैसी बिगड़ी, मैं उसे बर्तेरिली में कैसे ले गया, किस प्रकार बड़ी सावधानी से, संभालकर उसे घर तक लाया। सारी की सारी बातें उसने बतायीं। वह तो कहते जा रही थी और उसके पापा मेरी तरफ़ देखते हुए 'हां, हां' करते जा रहे थे। दो चार मामूली सवालों के बावजूद उन्होंने मेरे बारेमें विशेष दिलचस्पी नहीं प्रकट की।

मेरा एक घंटे भरका समय, उसके सहवास में बड़ी खुशी में बीता। नौकर चायका ट्रे ले आया। मेरे लिये उसने अपने हाथों से चाय तैयार की। मैं शक्कर कितना लिया करता हूँ, मुझे स्ट्रॉंग चाय पसंद है या 'वीक', दूध कितना लिया करता हूँ आदि बातों की जानकारी उसने बड़ी दिलचस्पी के साथ ले ली। यों तो, वह अलग-अलग विषयोंपर गप्पें मारती रही। बड़े उत्साह से वह बातें करती थीं और मैं दिलचस्प होकर सुनता था। वह इतना बोली कि बादमें थक गयी और तब उसने अंग्रेजी रेकार्ड चुन-चुन कर बजाना शुरू किया। हर एक विषयमें उसकी विशिष्ट सौंदर्य-दृष्टिकी मैं प्रशंसा करता रहा। तब उसने कहा-"ठीक भी है। अच्छी-अच्छी चीजोंकी बड़ी शौकीन हूँ मैं!" और यह कहते हुए मेरी ओर देखती रही।

पल्लवी के इस वाक्य से और नजरसे मैं जरा फूल गया। मैं सुंदर था यह कोई अनजानी बात नहीं थी। पर क्या यह मेरा सौंदर्य उसको आकर्षित कर सका था? अच्छी-अच्छी चीजोंमें मुझे भी वह सम्मिलित तो नहीं कर रही थी? या सिर्फ उसे कुछ बोलना था इसीलिये वह बोली?

यही विचार करते हुए मैं उठा। विदा होते हुए मैंने कहा- "कल टेलीफोन करके अपनी तबियत का रिपोर्ट देंगी तो मुझे जरा तसल्ली हो जायेगी?"

"क्या टेलीफोन हमेशा मैं ही करूँ?"

"मैंने ऐसा थोड़े ही कहा है?"

"आप कहते तो नहीं पर आपका बर्ताव जो बता रहा है।" उसका वह कहना सोलह आने ठीक था। आजतक मैंने खुद-ब-खुद उसकी बाबतमें कुछ भी नहीं किया था। बसमें मेरी बगल में वही आकर बैठी टेलीफोन उसीने किया, बुलाया भी मुझे उसने ही। इस विचार से मैं थोड़ा मुस्कुराया और बोला-"अच्छा जी कल मैं ही कर लूँगा टेलीफोन! अब तो खुश होंगी?"

* *

उसके बाद अनेक जगह अनेक बार हम दोनों मिले। पहले किसी साधारण कारण से हम मिला करते थे। फिर मिलनेके लिये किसी कारण की जरूरत नहीं लगी। इच्छा हुई ही तो टेलीफोन करते और मिल लेते।



जीना तीन प्रकारका है-
आत्माका शरीर में जीना,
आत्माका आत्मामें जीना,
आत्माका परमात्मा में जीना।

हम एक दूसरेसे मिलते, गप्पें मारते और एक दूसरेको चाहने लगे थे अब। हम दोनों एक दूसरेके शौकोंको अच्छी तरह जान गये थे। किसी रोज मेरा कहना कि 'अमुक साड़ी तुम्हारे शरीरपर खुलकर दीखती है!' उसके लिये काफ़ी था। वह बार-बार वही साड़ी पहनती मेरी प्रसन्नता के लिये। आँखोंमें काजल और होंठोंपर लाली लगाना उसने अब बंद किया था केवल मुझे पसंद नहीं इसलिये। मेरे खातिर ही यह सब वह कर तो रही थी, पर मैं अबतक यह जान नहीं पाया था कि वह मेरे बारे में असलमें कौन-सी भावनायें रखती है। मैंने तो अपनी ओरसे एक बार कह डाला था- "तू मुझे बड़ी अच्छी लगती है!"

इसपर उसने कहा था-"पापा भी तो यही कहा करते हैं। मैं हूँ ही ऐसी कि कोई मुझे चाहने लगे!"

ऐसे नाजुक अवसरपर उसे याद भी आयी तो उसके पापा और उनके शब्दोंकी। मुझे दुःख जरूर हुआ, पर उसे दबाते हुए मैंने पूछा-"हमारे इस प्रकार बार-बार मिलने-जुलने की बात भी क्या तू घरमें पापाको बताया करती है?"

"जरूर! क्यों नहीं? पापाको बताये बगैर मैं कुछ करती ही नहीं। और न कहने जैसा उस में है ही क्या?"

उसका कहना ठीक भी तो था। हम दोनों में ऐसी कोई बात नहीं हुई थी जो कि औरोंसे छिपायी जा सके। हम दोनों मिलते थे, साथमें घूमते-फिरते थे, पर किसी मर्यादा का उल्लंघन हमने नहीं किया। एक दूसरेके शरीरको स्पर्श करने की बात तो दूर रही पास में बैठते हुए भी हम बड़े संभलकर बैठा करते थे।

वैसे तो बार-बार इच्छा हो आती थी कि उसका हाथ अपने हाथ में लूँ, उसके नाजुक कपोलोंपर धीरेसे थपथपाऊँ। चेहरेपर की लटोंको जरा सरकाकर ठीक कर दूँ। ऐसी हरकतों से मैं उसकी प्रतिक्रिया को जान लेनेको बड़ा ही उत्सुक था। यह बात अनावश्यकतासे बढ़ायी जा रही थी और इसीसे मैं तंग आ गया था। मैं बड़ा ही अधीर बना हुआ था। 'इसका कोई फैसला कर दो' ऐसा मैं अपने दिलको बता रहा था। तो दूसरी तरफ़से 'जरा रुको! जरा रुको! वर्ना सारा मजा किरकिरा हो जायेगा, यह सारा रंग बेरंग हो जायगा और सारी जिंदगीभर हाथ मलते बैठोगे!' ऐसा भी अपने मनको समझा रहा था। कुछ जल्दबाजी करके अविचारसे मुझसे कुछ अनहोनी बात हो भी सकती थी, लेकिन ऐसे मौकोंपर मुझे उसके पिताजीकी याद आया करती थी

और अपनी भावनाओंकी बाढ़को मैं रुकनेको मजबूर करता। मेरे मनमें कभी विचार आता, हो न हो, हमारा इस तरह मिलना, घूमना आदि सब बातें वह अपने 'पापा' को बताती है!

हमारा साथमें घूमना अब कई लोगोंकी नजरमें आ चुका था। कुछ ऐसे व्यक्तियोंने हमको देखा था कि जिनका न देखना ही अच्छा होता। वैसी तो किसी की हिम्मत नहीं थी कि मुझसे सीधे कुछ पूछ बैठे। आपसमें बोला तो वे अवश्य करते थे। उनके तर्कोंने अब चरम सीमाको पार कर लिया था। वे चर्चा करते थे अब हम दोनोंके विवाहकी संभाव्यता और असंभाव्यतापर। एक बार हम दोनों 'कॅफे' से बाहर निकल ही रहे थे कि एक पुराने दोस्तसे मुलाकात हुई। मुस्कराते हुए उसने पल्लवीके गलेकी तरफ पहले देखा और मेरी पीठ थपथपाते पूछा–" यार अब लड्डू कब खिला रहे हो?"

उसके इस सवालसे एक बार मैं प्रसन्न हुआ और साथही–साथ शरमिंदा भी। उसका यह सवाल उसने सुना होगा इस विचारसे मैं मन में जरा अस्वस्थ हुआ। कुछ क्षण बिना उससे बोले मैं कुछ आगे चुपचाप चलता रहा। पर मुझसे यह चुप्पी, आप सही नहीं गयी और मैंने उसकी ओर देखा। उसने शायद मुझे सुनवानेके उद्देश्यसे मन–ही–मन पर जरा जोरसे कहा–" मुआ कितना बेशर्म है?"

उसका यह शाब्दिक आघात मेरे दोस्तपर ही था। फिरभी मैंने पूछा–" वह तो बोल बैठा! मेरी इसमें क्या भूल?"

" आप क्यों नाहक बुरा समझ रहे हैं? मैंने आपको उद्देश्य करके थोड़े ही कहा था?"

मुझे क्यों बुरा लगा, उसका कारण मैं उसको बताऊँ भी कैसे? जब तरुण स्त्री–पुरुष साथ–साथ घूमा करते हैं और एक दूसरेको चाहने लगते हैं, तब दोनोंका दिल यह चाहा करता है कि इस रिश्तेका स्वरूप निश्चित हो। हर एक अपनी अपनी ओरसे दूसरेके मनके विचार तथा भावनाको जान लेनेकी कोशिश करता है। पर स्पष्ट कोई कुछ नहीं बोलता। ऐसे अवसरपर कोई पहचानवालों में से चालाकीसे बोलकर उस रिश्तेको निश्चित करने के लिए सूचित करे तो सचमुच लाभकर ही सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे मेरे मित्रकी दिल्लगी मुझे बड़ी पसंद आयी थी। लेकिन इसकी इस दिल्लगी से वह गुस्सा हुई थी। जो विचार मैं कर रहा था वही क्या वह नहीं कर रही थी!

सच! इस लड़कीका बर्ताव बड़ा ही विचित्र था। मुझसे मिला करती थी। बार-बार खुद बुलवा लेती थी मुझे। पर मेरे दिलकी बातको प्रकट करने का मौका नहीं दे रही थी। वह उस सीमातक जाती थी, पर सीमा को पार नहीं कर रही थी। सीमारेखाका उल्लंघन नहीं करती थी। उस रेखातक आकर मानो वह असहाय बनकर लौटा करती थी। हम दोनोंका घूमना–फिरना वह घर में न बताती तो शायद मैं चालाकी से उस सीमा को तोड़ भी जाता। चालाकी से मैं उसे बोलने को बाध्य करता। मगर वह रास्ता जो रोके खड़ी थी। अब कुछ आगे बढना भी हो तो वह सूचना

उसीसे आना जरूरी था। वह चतुर तो थी पर आगे बढ़ने में शायद हिचकती थी। उसी स्थानपर वह सुन्न बनी खड़ी रहती थी और मुझे भ्रम में डालती थी। वैसा बर्ताव उसका क्यों था? संस्कारों का परिणाम था यह कि किसी डरका? यह बात मेरी समझ में भी नहीं रही थी। इस विचार से मैं व्याकुल हो रहा था। फिर वह चाहती भी थी तो क्या? चाह पैदा करके एकबारगी रिश्ता तोड़ना या दिल-लगी होने पर भी दिल न देकर सारा खेल खत्म करना तो वह नहीं चाह रह थी?

* *

इस तरहका हम दोनोंका यह खिलवाड़ मुझे पसंद नहीं था। किसी खेलमें भी दिलचस्पी की कुछ हद होती है। लगातार खेलते रहनेसे उसकी दिलचस्पी गायब होने लगती है और खिलाड़ी ऊबने लगता है। हमारा यह खेल भी इसी प्रकारका हो रहा था। वैसा न हो इस विचार से मैंने एक बार उसे टेलीफोन किया और पूछा—"आज कुछ समयके लिये मुझसे मिल सकती है तू?"

"काहे के लिये?"

"मैं तुझसे मिलना चाहता हूँ।"

"कल ही तो हम मिले थे न?"

"तो भी मैं मिलना चाहता हूँ। कुछ जरूरी बातें करनी है!"

"अच्छा, तो यह बात है। ऐसे अचंभेसे कहते हुए जरा रुकी और पूछने लगी—"तो फिर कहाँ मिलूँ आपसे?" मैंने स्थान बता दिया। तब वह कहने लगी—"पापाको बताती हूँ और तुरंत निकलती हूँ घरसे!"

"पापाको बता रही है, तो यह भी बता कि जरा देर होगी लौटनेमें।"

"क्यों कोई खास प्रोग्राम है?"

साहस बटोरते, दबी आवाजमें मैंने कहा—"देखें, हो सके तो पिक्चर देखने जायेंगे।" फिर रुककर पूछा—"चलेगी न?"

"चलूँगी क्यों नहीं?"

उसके मिलनेपर कौन कौनसी बातें की जायें, इसके बारेमें मैंने तय किया। पर हमेशाकी तरह वह मिली ही नहीं कि उसकी नजरने मुझे पूरा पिघला दिया। सिनेमा देखनेपर शायद वह कुछ बोलनेकी परिस्थितिमें आ जायेगी इस इरादेसे में उसे सिनेमा ले गया। सिनेमा शुरू होकर आधा-पौना घंटा हो रहा था कि वह बोल उठी— "क्यों जी हम जरा बाहर चलें?"

"क्यों? क्या हुआ?"

"मेरी तबियत ठीक नहीं"

"कुछ दिन पहले जैसा हुआ था वैसाही तो नहीं हो रहा है?"

"हाँ, बिलकुछ वैसाही; पर आज तो साँस लेनेमें रुकावट महसूस हो रही है, सीनेमें दर्द भी।"

इतना कहते हुए वह खड़ी हुई और दरवाजेकी तरफ़ बढ़ने लगी। बाहर आनेपर मैंने 'सोड़ा' मँगवाया तब उसने पूछा—"आप कैसे समझ रहे हैं यह सब?"

मैं सब समझ रहा था। पर वह कुछ समझती नहीं थी। और कोई मौका होता तो मैं सारी बातें प्रकट भी करता, मगर इस मोक़ेपर जबकि उसकी तबियत ठीक नहीं, ऐसा कहना योग्य नहीं था।

इस तरह जी कि तेरी जवान और दमकती हुई छाती विना आह के मौत का ख्याल कर सके।



दादरके रास्तेसे हमारी टैक्सी दौड़ने लगी तब मैंने कहा—"बार-बार इस तरह हो तो अच्छा नहीं!"

"मैं भी जानती हूँ, पर करूँ भी तो क्या?"

"किसी अच्छे कन्सल्टेंटसे क्यों नहीं जाँचवा लेती?"

"अब जँचवा लूँगी! पर आप व्यर्थ चिंता न कीजियेगा!"

"चिंता न करूँ भी तो कैसे?" यह वाक्य कहते हुए अनजाने हमारी चार आँखें हुई। पर मेरी आँखोंके भावोंको वह समझ चुकी थी, इसलिये उसने अपनी नजर दूसरी तरफ़ खींच ली। पर ऐसा करते समय के उसके कष्टोंको मैं भली भाँति जान गया था।

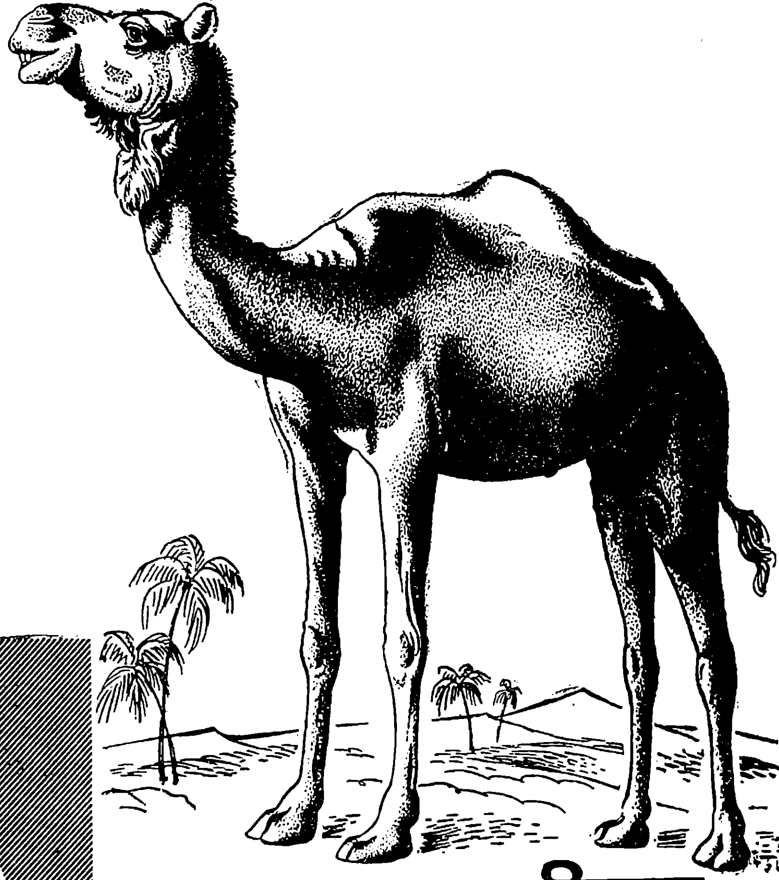
उसके घरके सामने टैक्सी खड़ी हो गयी, तब मैंने कहा—"चल, तुझे दरवाजेतक पहुँचा आऊँ?"

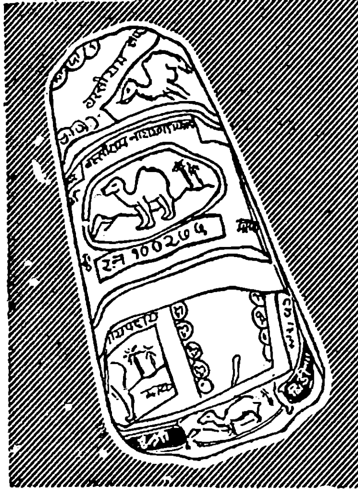
"ना, ना, आप क्यों इतनी तकलीफ़ ले रहे हैं? मैं अब ठीक हूँ! जा सकूँगी मैं अकेली!"

तो भी मैंने अनुरोध किया तब बड़ी ही करुण आवाज में उसने कहा—"मेरी इतनी भी नहीं सुनेंगे आप?"

"तेरी इच्छानुसार ही हो!" रूखी आवाज में मैंने जवाब दिया। मेरा यह रूखापन शायद वह जान गयी, इसलिये थोड़ा मेरी तरफ़ सरकी और मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर बोली—"इतनी नाराजगी क्यों? कल कर लूँगी मैं आपको टेलीफ़ोन, तब तो नहीं नाराज होंगे?" यह कहते हुए उसने मेरा हाथ दबाया और 'गुड नाईट' कहा।

दूसरे रोज मैं आफिस में गया। उसके टेलीफ़ोन को इन्तजार करता रहा। ग्यारह बज गये, बारह बीत गये, मैं लंच लेकर आफिस में लौटा भी, पर उसका टेलीफ़ोन नहीं। टेलीफ़ोन की घंटी बजतेही सोचता था उसीका टेलीफ़ोन होगा और बड़ी आशासे मै टेलीफ़ोन रिसीव्हर उठाता मगर निराशा ही पल्ले पड़ती। ऐसा कई बार हुआ। अब पाँच बज चुके थे, तो भी टेलीफ़ोन नहीं। तब मुझसे रहा नहीं गया। विचार बिना ही किये मैंने उसके टेलीफ़ोन कर नंबर घुमाया। टेलीफ़ोन काफी समयतक बजता रहा। कोई रिसीव्हर उठाने नहीं आता। समझमें नहीं आ रहा था कि हुआ क्या है आज! मैं अपना रिसीव्हर रखनेवाला ही था कि उस तरफ़का रिसीव्हर उठाया गया




रजि १००२७५


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

हॅलो की एक अपरिचित आवाज कानोंमें आयी। जल्दीसे मैंने पूछा, " पल्लवी घरमें है ? "

" आप कौन ? "

" मै संदिप रणदिवे ! पल्लवीसे जरा बात करना चाहता हूँ ! "

" उससे आप अब बात नहीं कर सकेंगे ! "

" यह क्या कह रहे हैं आप ? "

" याने शायद आप कुछ जानते ही नहीं ? "

" पल्लवी की तबियत ठीक तो है ? "

" क्या बताऊँ आपको ! पल्लवी ... पल्लवी तो सदा के लिये छोड़ गयी हमको। कल रातको चल बसी वह ! "

' पल्लवी चल बसी ' ये शब्द बंदूकसे निकली गोलीकी तरह मेरे कानों में घुसे। ' नहीं, नहीं, ऐसा हो ही कैसे सकता है ? ' यकायक मेरे हाथों से रीसिव्हर अनजानेही गिर पड़ा। अपनेको संभालते मैं खड़ा रहा और लड़खड़ाते सीधे आफिस के बाहर चल पड़ा। टॅक्सी स्टॅड की तरफ़ मानों मैं दौड़ता गया।

एक डाकू जिस तरह किसी घरमें प्रवेश करता वैसा मैंने उसके घरमें प्रवेश किया। सारे घर में बिलकुल सूना-सूना नजर आ रहा था। पल्लवी के पिताजी से मिलनेके लिये आये हुए व्यक्ति उनको घेरकर बैठे थे। और उसके ' पापा ' उन्हें आहें भरके थम-थमकर कुछ कह रहे थे। मुझे तो कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि क्या पूछूँ ? क्या बोलूँ ? धीरे-धीरे मैं आगे सरका और उन व्यक्तियों के बीच जा बैठा। पल्लवी के ' पापा ' कह रहे थे, तो भी मैं कल शामको उससे कह रहा था कि तुम्हारी तबियत ठीक न हो तो मत जाना पर वह सुने तब न ! जिद करने लगी सहेली के यहाँ जानेके लिये !

मैं आनजाने ही पूछ बैठा-" आपने क्या कहा अभी ? कहाँ गयी थी वह ? "

" उसकी एक सहेली के यहाँ ! कुछ दिनों से वह बार-बार जाया करती थी उसके यहाँ। इतनी लगन काहेकी थी, पता नहीं। दो व्यक्तियों में वियोग होनेवाला हो तो ऐसी ही लगन निर्माण होती है ! " यह कहते वे रो पड़े।

मेरी आँखें चौंधिया गयीं। कुछ बोले बिना ही मैं खड़ा रहा। मैंने दरवाजे की तरफ मुँह किया। पल्लवी के ' पापा ' कह ही रहे थे—" तो भी मेरा भाग्य ही बलवान समझना चाहिये। वह अपने साथ और किसी को दुःख के समुद्र में डूबा नहीं गयी। शादी होती और कुछ होता...। " मैं उनके आगे के शब्द सुन नहीं सका। एकबारगी मेरे मन में आया, पीठ फेरकर उनके सामने प्रकट करूँ कि, ' शादी न होते हुए मी विधुर बना हुआ आपका दामाद आपके सम्मुख खड़ा है, तब आप ऐसा क्योंकर कहे रहे हैं ? ' मगर ऐसा न बोलते हुए मैंने अपनी सिसकी को थामा और पल्लवीके अब सुनसान पड़े हुए कमरेकी ओर बावलेकी भाँति ताकता रहा !

रूपा : **मनोहर चंदावरकर**



कुमार योगी

मेरी आंखें धोखा नहीं खातीं। मैं कहता हूँ यह औरत वही है। इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है।

मेजर नायर ने विस्फारित नेत्रों से अपने मित्र के उत्सुक और उत्तप्त चेहरे को देखा और एक हलका निःश्वास छोड़ा। उसे मेनन की यह आदत पसंद नहीं थी। कई बार उसे वह समझा चुका था। अतः आज फिर जब मेनन इतना उत्सुक और उत्साहित हो गया तो मेजर नायर की मनःस्थिति अस्थिर हुए विना न रही। लेकिन मेनन से वह कहता ही क्या? सेना से अवकाश प्राप्त करने के बाद वह यहीं बम्बई के एक उपनगर में रहने लगा था। मेनन उसका पड़ोसी था। पिछले बारह बरस से वह खुफिया–विभाग में इंस्पेक्टर था। मेजर नायर के साथ उसकी मैत्री काफी पुरानी थी। दोनों केरल के एक ही गांव के निवासी थे।

मेजर नायर, मेनन के इन शब्दों को अपनी स्वाभाविक उदासीनता के भीतर गायब नहीं कर सका। डाक्टर लेले उसका पड़ोसी था। इसलिये यह रहस्योद्घाटन उसकी परेशानी का कारण बन गया। श्रीमती सावित्री लेले के आवरण में सामंत–हत्याकांड की नायिका सुमित्रा का उसके पड़ोस में ही रहना उसे सहन नहीं। सावित्री लेले का चित्र उसके सामने नाचने लगा।

“तुम बड़ी लम्बी बात याद रखते हो मेनन?”

“कहाँ की लम्बी बात है यह सिर्फ छः बरस और तीन महीने ही तो बीते हैं। मालूम है न वह मुकदमा?” मेनन ने पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा।

सावित्री ने तेज निगाहों से मेनन के चेहरे को देखा। उनमें भय नहीं था। वे आँखें अत्यन्त गहरी हो गयीं थीं। उनमें व्याकुलता नहीं थी, किन्तु एक ऐसी अचलता थी कि उनके स्पर्श से पर्वत भी विचलित हो सकता था। इस एक क्षण में ही उसके चेहरे पर संकडों रंग आये और उड़ गये...!

"मुझे तो ये बातें याद नहीं रहतीं......हाँ, धुंधली स्मृति उसकी मैं समेट पाता हूँ।" मेजर ने कहा।

सामंत के विषय में यह सावित हो गया था कि वह शराब बहुत पीता था और उस रात को जब वह लौटा था तो काफी बीमार था। उसकी पत्नी सुमित्रा ने डाक्टर की साक्षी दी थी। इसलिए अदालत ने सुमित्रा को निर्दोष बता कर छोड़ दिया था।

मेजर ने मेनन के शब्दों को विशेष ध्यान के साथ नहीं सुना। सुनने की उसकी इच्छा भी नहीं थी। लेकिन मेनन सारे कांड की पुनरावृत्ति का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा था। जिस व्यवसाय में वह बरसों संलग्न रहा उसने उसकी वृत्तियों को एक खास दिशा में निश्चित रूप में मोड़ दिया था। मेजर नायर ने देखा मेनन की परिस्थिति एकदम उस शिकारी कुत्ते जैसी हो गयी है जो अपने स्वामी के ड्राइंग रूममें भी शिकार की गंध लेता फिरता है। वर्षों तक सैनिक अनुशासन में रहनेसे सामाजिक जीवन से संबंधित मामलों के प्रति एक विकृत विराग और तटस्थता पैदा हो गयी थी। सावित्री लेले के शब्द का उद्घाटन उसे इसीलिये पसंद नहीं था।

"अरे! छोड़ो भी इस मामले को। क्या करना है हमें, जाने दो उस बेचारी औरत को। वह निर्दोष है अभी–अभी तुमने कहा था...।"

"मैंने निर्दोष कभी नहीं कहा, अदालत ने कहा है। मैं उसे कभी निर्दोष नहीं कह सकता।" मेनन ने सशक्त अस्वीकृति की मुद्रा में कहा मानों वह किसी बड़े भारी अपराध से मुक्त होने की चेष्टा कर रहा हो।

"निर्दोष न हो, तो न होने दो! हमें आखिर करना ही क्या है? हम क्यों हस्तक्षेप करें? हमें इस सब से मतलब ही क्या है?" मेजर ने फिर सारे मामले को वहीं समाप्त करते हुए कहा। वह व्यर्थ उलझन में नहीं पड़ना चाहता था।

"मेजर, मेरी सारी सहानुभूति डाक्टर लेले के साथ दिन-प्रतिदिन तीव्र होती जा रही है। उसके भविष्य के प्रति कई आशंकाएं मेरे भीतर पैदा होती हैं। मुझे उस पर दया आती है। कहीं लेले को भी वही दुर्भाग्य न देखना पड़े जो सामंत ने देखा था...! मेजर, कितना अच्छा हो यदि डाक्टर लेले को यह ज्ञात हो जाय कि यह सावित्री वही सावित्री गुप्ते है जिसने सामंत को जहर दिया था।"

"मुझे क्षमा करो, मेनन। मैं यह रहस्य डाक्टर पर प्रकट न कर सकूँगा। डाक्टर मेरे मित्र हैं। मेरे ऊपर उसका अचल विश्वास है। मैं उसके हृदय को चोट पहुँचाना उचित नहीं समझता। आखिर इससे लाभ ही क्या होगा?... सावित्री के स्नेह में डाक्टर सारे संसार को विस्मृत कर चुका है। वह इतना गहरा डूब चुका है कि मृत्यु का भय भी उसे सावित्री से अलग नहीं कर सकेगा।"

मेनन ने मेजर के शब्दों पर जैसे कुछ ध्यान नहीं दिया। क्षण भर तक मेजर के चेहरे को शून्य दृष्टि से देखने के बाद वह फिर सुमित्रा के प्रसंग पर आ गया– "कैसा निःशंक स्वभाव है इस डाक्टर का भी। दुनिया में कई व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो अपने शत्रु को आखिरी वक्त तक नहीं पहचान पाते। समाज में अधिकांश दुर्घटनाएँ ऐसी ही बेखबर व्यक्तियों के कारण होती हैं हम अकसर सोचने लगते हैं कि ऐसी दुर्घटनाओं का असर केवल व्यक्ति तक ही रहता है। किन्तु हमारी यह धारणा गलत ही नहीं वरन् सारे समाज के लिए घातक है। समाज की जो आज हीनावस्था है वह इसलिए कि हमने व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को मानना अस्वीकार कर दिया है। समाज के प्रति अपनी जो जिम्मेवारी है उसकी कितनी उपेक्षा करते हैं; सामाजिक जीवन को विषाक्त करते वाले व्यक्तियों को हमें समाज की पहुँच से परे रखना चाहिए।"

"मैं मानता हूँ, किन्तु सुमित्रा के अपराध को मैं अचानक स्वीकार कैसे कर लूँ? मैं किसी के साथ अन्याय नहीं करना चाहता। मान लिया कि सुमित्रा निर्दोष नहीं है, तो भी मैं यह उचित समझता हूँ कि उसे पश्चात्ताप और आत्मसुधार के लिये अवकाश मिलना चाहिये। मैं उसे स्वभावगत अपराधिनी कैसे मान लूँ? अधिकांश बुराइयाँ व्यक्ति में स्वभावगत न होकर परिस्थितिजन्य होती हैं। ऐसी अवस्था में समाज का कर्तव्य है कि वह व्यक्ति को सुधार के लिए स्वस्थ और सहानुभूतिमय वातावरण दे।"

"तुम्हारी सहिष्णुता उचित है मेजर, पर तुम हत्या का मनोविज्ञान नहीं समझते? हत्यारे की प्यास एक हत्या से नहीं बुझती, सारी दुर्घटना के पीछे एक लम्बी शृंखला होती है। जिसमें अनेक अपराध परस्पर बँधे रहते हैं। मेरा तो यह व्यवसाय ही है। मेरा यह अनुभव है कि हत्यारे को यदि थोड़ा समय दिया जाये या अपर्याप्त साक्षी के कारण उसे बरी कर दिया जाय तो वह फिर दूसरी हत्या करता है; ९९ प्रतिशत मामलों में मैंने यही पाया है! हत्यारे को एक हत्या से कभी संतोष नहीं होता।"

"तो, क्या नियम के अपवाद नहीं होते? तुम्हारे तर्क का आधार ही गलत है। तुमने सुमित्रा को दोषी मानकर भविष्य की आशंकाओं को बीजारोपित किया है। मान लो, सुमित्रा निर्दोष है तो वह दूसरी हत्या कैसे करेगी? तुम्हारे व्यावसायिक सत्य के साथ उसे इस प्रकार बलात् बांधना वास्तव में उसके साथ अन्याय करना है।



सपने !

—शैवाल सत्यार्थी

नीला – नीला आकाश है,
रंगीन सपने हैं,
तुम हो,
मैं हूँ,
और अमर विश्वास है !

फूला – फूला पलाश है,
सपने अपने हैं,
तुम हो,
मैं हूँ,
और अधूरी प्यास है !

भीगी – भीगी श्वास है,
सपने, सपने हैं —
तुम नहीं,
मैं नहीं,
और बीता मधुमास है !

मेजर को मेनन के स्वभाव में एक अनुचित असहिष्णु हठ का आभास मिला। जीवन के दोषों को कुरेद कर देखने की आदत उसके भीतर विकसित नहीं हो पायी थी। अनुसंधान और विश्लेषण की मनोवृत्ति दैनिक मनोविज्ञान के विपरीत पड़ती है।

"सुमित्रा को दोषी मानने के मेरे सामने कारण हैं, उसका सारा अतीत और वर्तमान मेरे सामने मौजूद है जो मुझे विवश कर देता है कि मैं उसे अपराधिनी नहीं बल्कि यह भी मानूँ कि उसकी हत्या की प्यास अतृप्त है और सामंत की भाँति और व्यक्तियों को भी उसकी इस पैशाचिक तृप्ति का साधन बनाना होगा। मेजर सामंत की हत्या के बाद सुमित्रा गुप्ते यदि अपना नाम बदल कर सावित्री लेले न बनती तो मैं थोड़ी देर के लिये यह विश्वास अवश्य कर लेता कि परिस्थितियों के तकाजों ने उसे सामंत की हत्या का कारण बना दिया था। किन्तु जब उसने दूसरे नाम से जीवन का अध्याय शुरू कर दिया है तो मैं आँख मींच कर कैसे विश्वास कर लूं कि वह दूसरे आदमी की हत्या न करेगी ?"

"तुम्हारा विश्वास बड़े भयानक नतीजे पर पहुँचा।"

"और, इतने पर भी तुम कहते हो कि हमें इस मामले से कोई मतलब नहीं और सुमित्रा अपराधिनी नहीं है।" मेनन ने अपने पक्ष को विजयी होते देख तर्क को आगे बढ़ाया।

"सो तो मैं अब भी मानने को तैयार नहीं हूँ। सामंत की हत्या के मामले में जैसे जूरी को विश्वास नहीं हुआ वैसे मुझे भी नहीं होता है। सामंत की हत्या के मामले के सिवाय तुम्हारे पास ऐसी और कौन-सी घटनाएँ हैं जिससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सुमित्रा में स्वभावगत हत्या की प्यास है।"

"मेरे पास और भी प्रमाण हैं, मेजर ! सुनो, तुम्हें एक और घटना से परिचित कराता हूँ। सत्रह वर्ष की एक लड़की अपने चाचा के पास रहती थी।वह अपने कालेज के एक साथी से प्रेम करती थी। चाचा को यह हाल ज्ञात हो गया और उसने उस लड़की का कालेज जाना बंद करवा दिया और उसकी शादी भी एक दूसरी जगह पक्की कर दी। गर्मी के दिन थे। चाचा अपने बरामदे के कुएँ की जगत पर बैठे थे। रात के कोई ग्यारह बजे होंगे। भतीजी भी उनके पास ही बैठी थी। थोड़ी देर में भतीजी की चिल्लाहट से पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये। चाचा कुएँ में गिर पड़े थे। गर्मी के मौसम में कुआँ काफी गहरा हो गया था और नीचे चट्टानें निकल आयी थीं। चाचा के गिरते ही मरने में कोई संदेह नहीं था। पुलिस आयी और अचानक दुर्घटना के सिवाय वह अपने रजिस्टर में और दर्ज ही क्या सकती थी ! चाचा ने सामंत गुप्ते नाम के व्यक्ति के साथ उसकी शादी तय की थी। आज्ञाकारिणी भतीजी स्वर्गस्थ चाचा की पवित्र आज्ञा का उल्लंघन कैसे करती ? सामंत गुप्ते के साथ उसका विवाह हो गया। लेकिन श्रीमती सुमित्रा गुप्ते का सौभाग्य अधिक समय तक अखंड नहीं बना रह सका। सामंत ने एक रोज शराब के घूंट ज्यादा पी लिए और सुमित्रा बेचारी विधवा हो गयी। आगे की कहानी तुम्हें याद ही है।"

"याद है ! लेकिन जब अपने प्रेमी से विवाह करने के लिए सुमित्रा ने चाचा की हत्या की तो फिर चाचा के ही द्वारा निश्चित वर से उसने ब्याह क्यों किया ? चाचा की हत्या के बाद तो उसके लिये मार्ग में कोई बाधा नहीं थी ! सुमित्रा स्वच्छंद थी अपने प्रेमी से विवाह कर सकती थी !"

"नहीं कर सकती थी, कभी नहीं कर सकती थी। सुमित्रा इतनी मूर्ख नहीं थी। वह पुलिस के संदेह का समर्थन नहीं करना चाहती थी। पुलिस और लोगों की निगाह में वह अपने चाचा की परम आज्ञाकारिणी भतीजी ही बनी रहना चाहती थी। यदि वह अपने प्रेमी से अपना विवाह कर लेती तो चाचा की हत्या का लोग उस पर संदेह करते। ब्याह करने के बाद उसने सामंत को समाप्त करके चाचा की मंशा को भी पलट दिया और लोगों के संदेह से भी मुक्त हो गयी। मेजर ! सावित्री साधारण स्त्री नहीं है। वह बड़ी चतुर और दूरदर्शी है......!"

"लेकिन मेनन, कई बार घटनाओं का परस्पर प्रसंग भी ऐसा ही षड्यंत्र पैदा कर देता है। जितना सरल तुम समझते हो यह जीवन

अनुक्रमणिका





उतना है नहीं ।" मेजर ने अपनी बलिष्ठ गरदन हिलाते हुए कहा। सुमित्रा को वह अपराधिनी स्वीकार नहीं कर पा रहा था।

"मेजर, तुम कुछ भी कहो सुमित्रा को निर्दोष नहीं मान सकता। मैं साफ देख रहा हूँ कि वह तीसरी हत्या करने का आयोजन कर रही है। उसने सारी भूमिका तैयार कर ली है और उसका शिकार डाक्टर है—डाक्टर लेले, तुम्हारा मित्र।"

"मेरा मन गवाही नहीं देता! डाक्टर लेले जैसे निर्लिप्त और सीधे सादे व्यक्ति को मारकर सुमित्रा अपने किस उद्देश्य की सिद्धि कर सकेगी? डाक्टर की किसी से शत्रुता नहीं है। उसके अंतःकरण में बुराई के लिये कहीं गुंजायश नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तुम अपने कर्तव्य का पालन न करो। यदि डाक्टर का जीवन खतरे में है तो तुम उसे निरापराद करने का प्रयत्न करो। यह तुम्हारा अपना काम है। मैं क्या हस्तक्षेप करूँ?"

अतः जब मेनन मेजर को अकेला छोड़कर पुलिस आफिस की ओर चला तो उसे मेजर पर जरा भी क्रोध नहीं आ रहा था क्योंकि वह मेजर के स्वभाव से परिचित था। मेजर नायर तटस्थ वृत्ति का व्यक्ति था और वर्षों के सैनिक जीवन ने इस वृत्ति को और भी गहरा कर दिया था। अतः मेजर की आलोचनाओं से मेनन की सावित्री-विषयक धारणाओं में जरा भी शिथिलता नहीं आयी थी। वह पिछले एक हफ्ते से इसी गुत्थी को सुलझाने में संलग्न था और आज भी वह उसके ही सूत्र मिलाने जा रहा था।

इन्सपेक्टर मेनन विचार-मग्न शहर के मध्य भाग से जा रहा था। अपने भीतर की दुनिया के साथ वह आज वह इतना गुथा हुआ था कि रास्ते में परिचितों की मुलाकात से भी उसे चिढ़ हो रही थी। उसकी कल्पना के परदे पर एक बड़ा भयानक नाटक चल रहा था जिसकी केन्द्रस्थ नायिका सुमित्रा थी। सुमित्रा उसके लिये एक अगाध जलराशि हो गयी थी जिसकी थाह पाने का वह असफल प्रयत्न कर रहा था।

इसी प्रकार विचार-मग्न जब वह सह्याद्रि बीमा कंपनी के ऑफिस के पास पहुँचा तो दूर से ही उसने सीढ़ियों पर से उतरती एक स्त्री को देखा। बिल्कुल सावित्री ही थी। सावित्री ने अपनी उसी मोहक मुसकान के साथ नमस्ते किया।

"अरे आप हैं सुमित्रा गुप्ते, मेरा मतलब है सावित्री लेले, क्षमा कीजिये। मेरा दिमाग आज बड़ा अस्तव्यस्त है। कहाँ से आ रही हैं आज?"—मेनन ने कूटनीति से वाणी ओतप्रोत करते हुए कहा। वह सावित्री को डंक मारना चाहता था।

"कहीं नहीं, यहीं बीमा-कम्पनी में आयी थी। डाक्टर लेले आनेवाले थे, किन्तु एक घंटा हो गया उनका कहीं पता नहीं है। क्या आपने उन्हें कहीं देखा है?" सावित्री ने अविचलित स्वर से जवाब दिया। मेनन ने सुना, उसकी वाणी में जरा भी परेशानी और उलझन नहीं है जैसे उसके तीर का उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ हो। वह स्तब्ध खड़ा रह गया।

"अरे तुम्हारे नए पति डाक्टर लेले से मेरा मतलब है, वे तो अभी थोड़ा समय हुआ घर की तरफ गए हैं। बड़े थके हुए मालूम पड़ते थे। नई गृहस्थी जमाने में झंझट भी तो कई होते हैं।"

मेनन ने अपना मार्ग बदल दिया और सावित्री के साथ – साथ घर की तरफ चलने लगा। रास्ते में सावित्री चुप नहीं थी। मेनन को वह सोचने का मौका नहीं देना चाहती थी। मेनन की कुटिलता ने उसके हृदय पर काफी बड़ा आघात किया था।

"आज बीमा कम्पनी में काम था। डाक्टर को मेरे भविष्य की बड़ी चिन्ता है। वे बीमा करना चाहते हैं मेरे नाम पर, काफी विरोध करने पर भी डाक्टर नहीं मानते ...।"

बीमा के प्रसंग ने मेनन और भी विचलित कर दिया। उसे याद आ गया सामंत की हत्या के पूर्व भी उसने अपनी पत्नी के नाम पर बीमा किया था। कुछ हफ्तों बाद फिर उसकी मृत्यु हो गयी थी। उसके मानस में डाक्टर लेले की मृत्यु के कई चित्र बने और बिगड़े। हत्या के सारे साधन उसकी कल्पना पर आते – जाते रहे। उसे विश्वास हो गया कि, डाक्टर लेले की मृत्यु निकट है। यह विश्वास के लिये समस्या थी। वह हत्यारे को रक्त – रंजित हाथों पकड़ना नहीं चाहता था। इससे उसे लाभ ही क्या हो सकता था और जब कि हत्यारा जाल में फंसनेके लिये अत्यन्त सतर्क था। कितनी बार उसने पुलिस की बुद्धिको पराजित किया है। अतः मेनन के सारे विचारों का मूल उद्देश्य स्वयं हत्या को ही रोकना हो गया था। इसी दिशा में सोचने के लिये वह विवश हो गया था। हत्या अत्यन्त निकट थी। सारे जाल का उसे अनुभव हो गया था।

"अभी तो आपको एक महीना भी आए नहीं हुआ है, लेकिन इतने थोड़े समय में ही आपने डाक्टर को प्रसन्न कर लिया। आप बड़ी चतुर हैं।"

"डाक्टर को धन का उपयोग करना अब तक नहीं आया है। मेरे ससुर जो सम्पत्ति छोड़ गये हैं उसका उन्होंने दुरुपयोग ही किया है। आप लोग उनके मित्र हैं किन्तु मार्ग-दर्शन के मामले में आपने उन्हें कभी कोई सहायता नहीं दी। अब यह सारा भार मेरे ऊपर आ पड़ा है।"

मेनन ने देखा, सुमित्रा को पराजित करन आसान नहीं है। उसका स्वभाव बड़ा सतर्क है। कब वह अपनी गुत्थी में दूसरे को उलझा लेती है यह पता लगाना बड़ा कठिन है। रास्ते भर मेनन का हृदय सुमित्रा की तीव्र बुद्धि की प्रशंसा करता रहा। कितनी विचित्र नारी है सुमित्रा, अपने आप पर इसका कितना संतुलन है! साधारण व्यक्ति में इतना आत्मानुशासन नहीं होता। पर सुमित्रा असाधारण है। असाधारण नारी है पर कितनी भयंकर है! मृत्यु से खेलवाड़ करती है, किन्तु चेहरे पर एक भी शिकन नहीं आती।

सुमित्रा घर पहुँची तो डाक्टर दरवाजे पर खड़ा था। सुमित्रा की राह देख रहा था। कुछ चिंतित-सा था। किंतु मेनन को देखकर मुसकरा दिया–"आओ, आओ मेनन! अरे कहाँ घूम आए? सावित्री के साथ तुम्हें देखर तो मैं चौक पड़ा। पुलिस वालों का साथ सदा खतरनाक होता है। आओ, सावित्री चाय बनाती है। एक प्याला पीते जाओ। सावित्री, मेनन से डरो मत। इन्हें बैठाओ। मैं एक रोगी को देखकर अभी दस मिनट में आया। तुम्हारे ही आने का रास्ता देख रहा था। मिस्टर मेनन कृपया मुझे क्षमा करें।

डाक्टर पास के मकान में सीधा घुस गया। मेनन सावित्री के घर जाना नहीं चाहता था। उसका हृदय विचित्र अनुभूतिओं के बीच उलझ रहा था। वह एकान्त में बैठ अपनी भावनाओं के सारे बिखरे तारों को मिलाकर एक सुसम्बद्ध योजना गढ़ना चाहता था। डाक्टर को आपत्ति से मुक्त करने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले रक्खी थी और उस दिशा में अत्यन्त तेजी से विचार करना था। किन्तु डाक्टर ने इतनी जल्दी और आतुरता में आमंत्रण दिया कि मेनन न तो स्वीकार कर सका और न अस्वीकृति व्यक्त कर सका। वह सुमित्रा के पीछे–पीछे ड्राइंग रूम में जाकर बैठ गया।

सावित्री चाय बनाने लगी। उसने केटली में चाय डाली और हीटर बुझा दिया। चम्मच से हिलाने लगी। मेनन ने देखा सावित्री की आँखों में जैसे प्रकाश का अंकुर प्रस्फुटित हो गया। वह साँस खींचकर देखने लगा। सावित्री ने तीन प्यालों में चाय डाली और एक प्याला मेनन के सामने एक अपने और एक खाली कुर्सी के सामने डाक्टर के लिये रख दिया। डाक्टर का प्याला रखते समय सावित्री ने अपने होंठ संकुचित किये और गौर से चाय के ऊपर छाई दूधिया झिल्ली को देखा। मेनन का हृदय भयभीत हो गया। उसने खतरे की गंध को पहचान लिया। कितना अप्रत्याशित था यह सब!

यह सुमित्रा कितनी साहसी है और कितनी भयंकर! प्रती क्षाभी नहीं करती अपने उद्देश्य की पूर्ति का, कभी नक्शा भी नहीं बनाती। अपने आखेट पर निर्विलम्ब आक्रमण करती है। तैयारी करना वह नहीं जानती। अवसर वह नहीं खोजती। आंधी की तरह काम करती है। संदेह का अवकाश ही बाकी नहीं रखती। मेनन का हृदय सुमित्रा के साहस की प्रशंसा से आप्लावित हो गया। कितनी चतुराई से वह अपना जाल बिछाती है। आज ही डाक्टर का अन्त कर देना चाहती है। मेरे ही सामने उसको मौत के हवाले करना चाहती है जिसमें उसके खिलाफ कुछ भी प्रमाण दे सकूँ। मुझे वह गवाह बनाना चाहती है। वह जानती है कि इतनी जल्दी जाल बिछाने का मतलब संदेह को अवकाश देना है।...लेकिन यह क्या हो गया मैं तो डाक्टर की हत्या की आशंका इतनी जल्दी नहीं करता था। सावित्री ने मुझे पराजित कर दिया। विचार और कर्म की प्रगति उसके भीतर कितनी तीव्र है। नहीं–नहीं, मैं यह सब न होने दूँगा। मैं तो व्यावसायिक गुप्तचर हूँ। यदि जरा भी देरी करूँगा, तो डाक्टर की हत्या निश्चित है। सावित्री के साथ प्रतिभा की होड़ लगाना बड़ा खतरनाक है। नहीं, देर नहीं करनी होगी।

मेनन बड़ी गम्भीरता के साथ उठा और अपना प्याला डाक्टर की खाली कुर्सी के सामने रख दिया। डाक्टर का प्याला उसने बड़ी सावधानी से उठाया और सावित्री के सामने रक्खा और स्वयं सावित्री का प्याला अपने हाथों में ले लिया और कहा "श्रीमतीजी, आप यह प्याला पीजिए। मेनन ने स्वर में आज्ञापालन करवाने की शक्ति थी।

सावित्री ने तेज निगाहों से मेनन के चेहरे को देखा। उनमें भय नहीं था। वे आँखें अत्यन्त गहरी हो गई थीं। व्याकुलता नहीं थी, किन्तु एक ऐसी अचलता थी कि उनके स्पर्श से पर्वत भी विचलित हो सकता था। इस एक क्षण में ही उसके चेहरे पर सैकड़ों रंग

अनुक्रमणिका





आए और उतर गए। मेनन की साँसों में आत्मविश्वास और विजय की दृढ़ता थी। उसने फिर सावित्री की प्याले की चाय पीने की आज्ञा दी।

सावित्री ने प्रतिरोध के भाव से अपने सामने का प्याला उठाया और होटों के सामने ले जाने के बजाय अचानक उसे नीचे गिरा दिया। मेनन ने स्तब्ध भाव से सावित्री की स्फूर्ति को देखा। एक बवंडर आया और अचानक चला भी गया। सावित्री पिंजरबद्ध पक्षी की भांति सभीत दृष्टि से मेनन को घूर रही थी। उसकी वाणी मूक थी और चेहरे पर मुकाबिले का भाव स्पष्ट था। मेनन ने सांत्वना की साँस ली।

तुम बड़ी चालाक हो सुमित्रा, लेकिन अब तुम्हें मालूम हो गया होगा कि मैं तुम्हें पहचान गया हूँ। अब तुम्हारी व्यूह-रचना सफल नहीं हो सकती। खैर, जो कुछ हुआ उसे जाने दो सुमित्रा, अब नई जिंदगी शुरू करो। जो कुछ किया उसका प्रायश्चित्त करो। मैं तुम्हारे भेद को कभी न खोलूंगा। मैं चाहता हूँ, तुम डाक्टर के साथ सुखी जीवन व्यतीत करो।

सावित्री की आंखों में पानी की बूँदें छलक आयी। मेनन की दृष्टि को काफी संतोष मिला। चाय ठंडी हो गयी थी। बवंडर आकर चला गया था और अपने पीछे एक रिक्तता छोड़ गया था।

मेनन ने प्याला उठाकर मुँह में उँडेल लिया। सावित्री की आँखों में आंसू छलक रहे थे। मेनन का हृदय कोमल हो गया। उसे अकस्मात् चक्कर-सा आने लगा और शरीर के जोड़ों में एक जकड़ तीव्र वेग से सख्त होने लगी। उसने उठने की कोशिश की, मगर उठ न सका, चिल्ला भी न सका। नीचे लुढ़क कर वह मछली की भांति फर्श पर तड़पने लगा। चेहरे का रंग ताम्रवत् होता जा रहा था। सुमित्रा उसे मृत्यु से जूझते देखती रही। अकस्मात् उसकी मुद्रा पर मुस्कान बिखर गयी।

"मेनन, आखिर तुम सुमित्रा को नहीं समझ पाए। तुम्हारे सोचने में गलती हो गयी तुमने सोचा था कि मैं डाक्टर की हत्या करूँगी। कितने मूर्ख हो तुम? तुम नहीं जानते, लेके मेरा प्रेमी है, वही कालेज का सहपाठी जिससे चाचा ने मुझे अलग करने की सोची थी और मुझे सामंत से विवश होकर शादी करनी पड़ी थी। सामंत इस रहस्य को जानता था। उसके जीवित रहते मैं कभी डाक्टर के साथ नहीं रह सकती थी। अपने मार्ग को स्वच्छ करने के लिये ही मैंने सामन्त की हत्या की थी। उन दोनों हत्याओं का भेद तुम्हें ज्ञात था। डाक्टर को कुछ भी ज्ञात नहीं है कि मैं कौन हूँ। यदि तुम्हारे द्वारा मेरी सारी कहानी उसे मालूम हो जाती तो मैं उसके पास एक क्षण के लिये भी न रह सकती। तुम्हें रास्ते से हटाना मेरे लिये आवश्यक था। अपने प्रेमी से मुझे अलग करने वाले तुम तीसरे व्यक्ति थे।"

सुमित्रा की मुसकान गहरी व्यंग्यभरी हँसी में बदल गयी। उसने देखा मेनन कुछ ही क्षण का मेहमान है। लेकिन इस मौत के समय भी वह सुमित्रा की तरफ घूर-घूर कर देख रहा था। चेतना जड़ होती जा रही थी लेकिन फिर भी वह गुत्थी सुलझा रहा था। ●●●

जग्गू अपना सब कुछ हार चुका था। इस घरमें न उसका कोई था और न वह था किसी का।...

गूँगे, अपंग और बावले एक मांसपिंड के सामने उसे पराजित होना पड़ा। ... ...



रघू के आगमन का जब समाचार जग्गू ने प्रथमतः सुना तब वह प्रायः साढ़े तीन वर्ष का था। 'देखो न! तुम्हें अब भाई मिलनेवाला है!... अजी सुनते हो न? तुम्हारी माँ को अब बच्चा होनेवाला है।' आरंभ में इन्हीं वाक्यों में वह समाचार उसे सुनाया गया। वैसे तो आरंभ में उन वाक्यों का उसपर कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। अपनी माँ को बच्चा होने वाला है इस वाक्य के अर्थ के संबंध में उसके मन में बिलकुल अस्पष्ट कल्पनाएँ थीं। परंतु जैसे-जैसे दिन व्यतीत होने लगे तैसे-तैसे सगे-संबंधी तथा आसपास के लोग वही विषय अधिक उत्साह से दुहराने लगे। उसकी माँ को होने वाले बच्चे के संबंध में उसका परामर्श लिया जाने लगा। 'क्यों जग्गू? तुम्हें बहन चाहिये या भाई?' यह प्रश्न 'तुम्हें हाथी चाहिए या घोड़ा?' इसी स्वर में पूछा जाने लगा।

बच्चा होने के बारे में जग्गू को जो ज्ञान था उससे अधिक समझ उसे बहन ओर भाई के विषय में थी। उसके अड़ोस-पड़ोस में भाई-बहन के कई जोड़े थे। उदाहरण के तौर पर, चंदा तथा मंदा ये भाई-बहन थे, अथवा गोपाल और गोविंद ये भाई-भाई या नमू व यमू ये बहनें थी। भाई-बहनें साधारणतः एकही घरमें रहती हैं, प्रायः एकही प्रकारके कपड़े पहनती है, समान मिठाई खाती है और एक ही कतारमें सोती है, यह उसने देखा था। अतः 'बच्चा होने' के कथन की अपेक्षा भाई-बहन होने का कथन उसे अधिक स्पष्टतया ज्ञात था। सो जब कोई उसे प्रश्न पूछता — "क्यों जग्गू? तुझे भाई चाहिए या बहन?" तब इस सवाल का भावार्थ उसे विशेष गूढ़ न लगता। अपने आपको बहन चाहिए या भाई इस संबंधमें उसे थोड़ी गंभीरतासे विचार करना पड़ता। बहन और भाई ये दोनों समान प्राणी नहीं है यह बात उसके बाल-बुद्धिने ताड़ ली थी। बहनें वेणियाँ गूँथती हैं, वे फ्राक या घाघरे पहनती हैं और वे हाथों में चूड़ियाँ पहनकर माथेपर कुंकुम-तिलक लगाती हैं आदि स्पष्ट भेद उसके ध्यान में आ चुके थे। 'धत् बेटा। क्या रोते हो छोकरी जैसा?' इन जैसे शब्दों से उसके बाल-मनपर असर हुआ था। इसलिए 'मुझे भाई चाहिए या बहन' इस प्रश्न को जग्गू थोड़े विचारसे ही उत्तर दे देता। कई बार वह कहता, — "मुझे बहन चाहिए बहन!" और कभी-कभी वह कह उठता, "मुझे भाई चाहिए!" परंतु उसकी झुकाव बहन की ओर ही अधिक था। उसके घरके बड़े लोग भी उसके इस विचारसे

अनुक्रमणिका

अबोध बालक के मनोविश्लेषण पर प्रकाश डालनेवाला, प्रौढों की विचारधारा पर जबरदस्त धक्का दे विचार-परिवर्तन के लिए विवश करनेवाला, पाठकों को अथ से इति तक मंत्रमुग्ध रखनेवाला और हिंदी साहित्य संसार में अजिब तहलका मचानेवाला लघु उपन्यास।

सहमत थे। इन दिनों उसकी नानी उसके घरमें आ कर रही थी। उसका तो दृढ़ मत था कि जग्गूको अब बहनही चाहिए। और वह वृद्धा घरमें एक बेटी होनेके महत्त्व का प्रवचन देने लगती।

गाँव में ही चंद्रिका नामक जग्गू की एक मौसी रहती थी। यह छोटी मौसी गोरी-गोरी तथा चपल थी। जग्गू को वह बहुत भाती थी। जग्गू की माँ की वह ममेरी बहन थी। उसके कपड़े नित्य साफ़सुथरे रहते। वह कालेज में पढ़ती थी। और हँसते-हँसते बातें करनेकी आदी थी। उसका बोलना बड़ा मजेदार होता। लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ कितनी भली होती हैं यह बात वह नकलसे बता देती। इसीलिए जग्गू के पिताजीने उसका नाम रखा था 'ऊधमी मौसी'। इस 'ऊधमी मौसी' का तो निश्चित मत था कि जग्गू को अब बहन ही चाहिए। जग्गू के घर वह बार-बार आया करती। इन दिनों तो वह अधिक बार आने लगी। और झपटकर जाह्नवी के दो चार काम पूरे कर चली जाती। 'ऊधमी मौसी' थी बड़ी फुर्तीली। वह आते ही जग्गू को लगता कि उसके आसपास कोई अनोखा, सुंदर प्रकाश फैला है। उसकी चमकीली आँखें, उसका जगमगाता हुआ रंग, उसके चमचमाते हुए कपड़े और उसके स्नेहामृत भरे चुम्बन—सब कुछ जग्गू को बड़ा प्यारा लगता। सभी बड़ों के चुम्बन बच्चों को पसंद नहीं आते। पड़ोस की नमूबुआ के चुम्बन जग्गू को नापसंद थे। उन्हें जग्गू बहुत अच्छा लगता। परंतु वे बहुत मोटी थी, उनके पीले दांत जरा बाहर आये हुए थे और उनके कपड़ों को रसोई घर के मसाले की बू आती थी। 'ऊधमी मौसी' के कपड़े तो नित्य नवीन फूलों के जैसे रहते। अपनी माँ के सिवा जग्गू को वही मौसी पसंद थी।

चंद्रिका को केवल 'ऊधमी मौसी' कह कर विश्वनाथ का समाधान नहीं होता था। वह उसे कभी 'मधुमक्खी' कहता, तो कभी उसे 'बर्रे' कह के पुकारता। मौसी-मीठे गीत गुन-गुनाया करती इसलिए उसका नाम था 'मधुमक्खी' और वह सबको चुभ जाने लायक टनकार बातें करती इसलिए उसका नाम था 'बर्रे'। प्राणि जगत् के ये दो नाम जग्गू को बिलकुल पसंद थे। जब वह उसके गालों को धीरेसे काटती तब वह कह उठता 'ततैया!' और जब वह गुनगुनाने लगती तब वह चिल्लाता — मधुमक्खी। जाह्नवी के घर आते ही जग्गू के गालों को काट देना तो मानों इस ऊधमी मौसी का चिरंतन अभ्यास था, पर आजकल घरमें कदम रखते ही वह उसे पूछती — "क्यों जग्गू? भाई या बहन?" तब जग्गू कहता— "पहले काटो! बादमें कहूँगा।" वह उसे धीरेसे काटती और अपने मीठे स्वरमें पूछती—"बताओ न? बहन या भाई?" जग्गू खिलखिलाकर कहता—"पहले गाना गाओ! बादमें बतलाऊँगा!" और ऊधमी मौसी गाना गुनगुनाने लगती और फिर उसे प्रश्न पूछती,—"अब बताओ। भाई या बहन?" तुरन्त जग्गू एक नयी शर्त बताता, "पहले एक कहानी कह दो तो बाद में मैं वह कहूँगा!" इतना होतेही ऊधमी मौसी आँखें निकालकर कहती— "पहले बताओ! उसके बाद मैं कहानी सुनाऊँगी!" जग्गू मौसी की इच्छा जानता है। इसलिए वह चिल्लाने लगता "बहन! बहन!" और चंद्रिका खुश होकर उसे चूमती और कहानी सुनाने लगती।

जब जाह्नवी का प्रसूतिसमय निकट आने लगा तब चंद्रिका का उस के घर आना बढ़ गया। वह काम भी अधिक करने लगी। और उसके बाद तो जाह्नवी केवल नाममात्र ही काम करती। और यदि कभी वह वहाँ आना भूल जाती तो वह उसे बुला लेती। आतेही चंद्रिका



श्री. पु. भा. भावे

आप अब 'दीपावली' के रसज्ञ पाठकों के लिए कोई नवीन कलाकार नहीं हैं। गत सात वर्षों में आपकी कई कहानियाँ और एक लघु उपन्यास— अनुलीना 'दीपावली' में प्रकाशित हो चुके हैं।

आप ज्वलंत पत्रकार, ज्वलंत वक्ता तथा श्रेष्ठ नाटककार भी हैं।

आप के साहित्यमें मनोविश्लेषण की सूक्ष्मतर इन्द्रधनुषी छटाएँ देखकर पाठक मुग्ध हो उठते हैं। आपकी सभी कलात्मक विशेषताओंका उज्वल-प्रतीक है यह 'दुश्मन'!

जग्गूको पुकारकर पूछती — "क्यों जग्गू! बहन या भाई ?" और वह उसी स्वरमें चिल्लाकर उत्तर देता, "बहन! बहन!" चंद्रिका उसे फिर पूछती — "बेटा या बेटी ?" और जग्गू जवाब देता — "बिटिया! बिटिया!"

यह पाठ चंद्रिका ने काफ़ी बढ़ाया था। वह प्रतिदिन उसे नये प्रश्न पूछती और उसे नये उत्तर पढ़ाती।

'बेटा कैसा ?'... 'काला काला!'

'बिटिया कैसी ?'... 'गोरी गोरी!'

'बेटे की आँखें ?'... 'छोटी छोटी!'

'और बिटिया की ?'... 'बड़ी बड़ी!'

'बेटे का चलना!'... 'टेढ़ा मेढ़ा!'

'और बिटियारानी ?'...'जैसी मोरनी!'

ऊधमी मौसी के इस प्रचारतंत्र के परिणाम-स्वरूप बेटे की अपेक्षा बेटी भली है-जग्गू के बाल-मन को यही पुष्टि मिलती थी। उसे लगने लगा कि नया बच्चा गुड़िया जैसी एकाध लुभावनी चीज होगी और इस विचार से वह उस नये बच्चे के आगमन की अब राह देखने लगा था। 'नया बच्चा क्या करेगा ?'... 'खेलेगा!' 'नया बचा क्या करेगा ?'... हँसेगा!' 'नया बचा क्या करेगा ?'... 'नाचेगा!' 'और नया बचा क्या करेगा ?'... 'काटेगा' ऐसा...!" आदि प्रश्नोत्तर ऊधमी मौसीने उसे पढ़ा रखे थे। नये बचे के संबंध में जग्गूका कुतूहल अब शीघ्रतासे बढ़ने लगा था।

एक दिन ऊधमी मौसीने अपनी प्रश्नमाला आरंभ करने के पहले ही जग्गू ने उसे पूछा— "मौसी! कब आयेगा नन्हा मुन्ना मेरे साथ खेलने ?"

तब नाक-भौं सिकोड़ते लम्बे स्वरमें उसने उत्तर दिया—"पूछो तुम्हारी माँ से!"

जग्गू वही सवाल लेकर जाह्नवी की ओर मुड़ा, तब उसे उत्तर देने के बजाय चंद्रिका को धमकाती जाह्नवी बोली—

"बस हो गयी तुम्हारी दिल्लगी! चंद्रा! क्यों वह विचित्र सिखावन देती हो उसे ?"

"अरी दीदी! बालकों को विश्वास में लेना चाहिए! समझी न ?"—चंद्रिका बोली।

"तुम पहले कालेज के किसी लड़के को ले लो विश्वास में!" वहाँ आये हुए विश्वनाथ ने चंद्रिका को सलाह दे दी और तब चंद्रिका उस दिन चुप रही। लेकिन उसके और जग्गू के सवाल-जवाब चलते ही रहे। 'नन्हा बच्चा कब आयेगा खेलने ?' जग्गू के इस सवाल को जवाबी तौर पर वह कभी कहती— "पूछो तुम्हारी माँ से!" लेकिन माँ से इस सवाल का जवाब जग्गू को मिला नहीं! मौसी को ही वह अपना प्रश्न बारबार पूछने लगा। तब मजाक में जाह्नवी की ओर देखते चंद्रिका उसे कहने लगी — "नन्हा बच्चा न ? अभी आयेगा बेटा! अब तो वह रास्ते में ही है!"

"लेकिन आयेगा कब ?"

"आयेगा, दो महीनोंके बाद। सही है न जाह्नवी ?"

और जाह्नवी उसे डाँटकर कहती – "काफी हो गयी दिल्लगी! तुम्हारी भी बारी एक दिन आयेगी!"

"लेकिन दीदी! आज तो तुम्हारी ही बारी है न ?"

"अब चुप बैठती हो या नहीं ?" लेकिन ऊधमी मौसी चुप थोड़े ही बैठनेवाली थी। उसकी प्रश्नमाला जारी ही थी। घरमें कदम रखतेही वह जग्गूसे पूछती — "बेटा या बेटी ?" और जग्गू तोते जैसा कहता "बिटिया रानी!"

चंद्रिका फिर सवाल पूछती – "भाई या बहन ?" और जग्गू फिर बतलाता—"बहन!" ऊधमी मौसी के सवाल खतम होते ही वह उसे प्रश्न पूछता – "कब आयेगा नन्हा बच्चा मुझसे खेलने ?" उसपर चंद्रिका उत्तर देती –"पूछो न अपनी माँ से!" "लेकिन माँ कहती नहीं! तुम्ही बताओ। कब आयेगा नन्हा मुन्ना ?"

"आयेगा, आयेगा। निकल पड़ा है आने के लिए। अपनी राह चल रहा है।"

"कितने दिनों की राह है यह ?" और चंद्रिका आँखें मूँदकर उसे दिन गिनकर ठीक बतला देती—

"दो महीनों के बाद!"

"डेढ़ महीने के बाद!"

"पौने महीने के बाद!"

जाह्नवी इस दिल्लगी के लिए इसे डाँटती रहती थी और विश्वनाथ भी कई बार उसके ही शब्दों में बाजी मार लेता। परंतु जैसे-जैसे जाह्नवी के दिन पूरे होने लगे, वैसे ही विश्वनाथ का जी धड़कने लगा और वह स्वयं कभी-कभी जग्गूसे पूछ बैठता—"क्यों रे जग्गू! अब बताओ, बेटा या बेटी ?"

अपने पिताजी कौन-सा उत्तर चाहते हैं यह बात जग्गू निश्चित रूपसे जानता नहीं था। चंद्रिका तथा नानी जैसी कुछ लोगों की माँग बेटी की है, इतना

उसे ज्ञात था। स्वयं उसके मन में भी एक बालिका की इच्छा थी जिसके कारण घर में कुछ तब्दीली दिखायी पड़े। फिर भी बेटेका महत्व जाननेवाले भी अड़ोस-पड़ोस में काफी लोग थे। साक्षात् पिताजीने ज्योतिषीका काम सौंपा है यह जानकर जग्गूको कुछ उत्तर नहीं सूझा अतः वह पलभर ठिठक गया, उतने में उसने ऊधमी मौसी को आते हुए देखा। और वह तालियाँ बजाते चिल्लाया —

"बहन ! बहन !"

"अब कौन हँसी-मजाक कर रहा है ?"

विश्वनाथ की ओर कुछ कनखियाती हुई चंद्रिका बोल उठी।

"इसी हँसी-मजाक के लिए तो हम शादी करते हैं।"

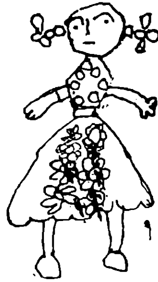
विश्वनाथने मनमाना उत्तर दिया– "और तुम भी वही करोगी।"

यह उत्तर सुनते ही चंद्रिका अंदर दौड़ गयी और जाह्नवी विश्वनाथ से बोली—

"छीः छीः...अब आप भी मजाक करने लगे हैं ?"

"उस में क्या शक !" उसकी ओर आँखें फिराकर जग्गू को सहलाते हुए वह बोला—"लेकिन तुम क्या चाहती हो ? बेटा या बेटी ?"

"मुझे न मालूम !" गरदन झटकाकर जाह्नवी ने जवाब दिया और वह भी धीरे से भीतर चली गयी। "अगर खुद तुम्हें मालूम नहीं तो और कौन जानेगा ?"–विश्वनाथ का यह सुनने जैसा वाक्य उसने सुना या नहीं, पता नहीं। **



लेकिन अंत में जाह्नवी को बेटा ही हुआ। नन्हे मुन्ने के विषय में बातें सुनते-सुनते उस रात जग्गू अपनी माँ की बगल में सो गया था। नन्हा मुन्ना अब किसी क्षण आ जायेगा ऐसा उसे बताया गया था। नन्हे मुन्ने के रंग, रूप, तथा प्रकृति के बारे में बातचीत जारी रहते ही वह जाह्नवी के शरीरपर हाथ रख कर सो चुका था। और सुबह जब वह उठा, तब उसे पता चला कि अपना हाथ जाह्नवी के शरीर पर नहीं है। कोई दूसरी व्यक्ति अपनी बगल में सो गयी है।

उसने एकदम बगल के व्यक्ति को टटोल कर देखा। नहीं...नहीं...यह जाह्नवी का स्पर्श नहीं। यह तो और ही कोई है। जाह्नवी की नींद बिलकुल सचेत रहती है। जग्गू की जरा भी हलचल होते ही वह जाग उठती और उसे पूछती—"क्यों जग्गू ? क्या चाहते हो ?" लेकिन अब वह उठ बैठा तो भी बगल में सोयी हुई व्यक्ति नहीं जागती थी। वह थी कोई स्त्री ही, लेकिन वह जाह्नवी न थी। गत साढ़े तीन साल तक जग्गूने जाह्नवी को एक दिन भी नहीं छोड़ा था। दिन भर वह गाँव में भटकता रहता फिर भी रातको उसे उसकी माँकी जरूरत लगती थी। दिन में नानी या पिताजी से उसका काम चल जाता; लेकिन रातको माँ के बजाय एक क्षण भी न चलता। माँ की बगल में वह घुस जाता और उसके शरीर को जब वह सहला देती तभी उसे नींद आती थी। माँके सहलाये बिना वह आज तक कभी न सोया था। कल रात भी वह इसी प्रकारसे सो गया था। उसकी माँने उसे सहलाया था और उसने उसके शरीर पर हाथ रखा था। लेकिन जो कभी न हुआ था वही आज हुआ ! जग्गू की माँ बिछौने में से ही गायब थी। अब वहाँ दूसरी ही कोई सोयी थी। जग्गू को यह ज्ञात हुआ और वह रुँआसा होकर चिल्लाने लगा – 'माँ...माँ ! माँ कहाँ है मेरी ?" और उसके बगलमें सोयी स्त्री ने उसे अपने पास खींचकर कहा– "सो जाओ जग्गू। मैं हूँ न तेरे पास !" यह स्वर चंद्रिका मौसी का था। चंद्रिका मौसी जग्गूको पसंद थी। लेकिन इस समय वह उसे न चाहता था। सिसक कर उसने पूछा —

"कहाँ है मेरी माँ ?"

"माँ न ? इधर ही है ! मेरा बेटा सयाना है। तुम सो जाओ पहले !"

"पहले माँको दिखाओ!"

चंद्रिका का हाथ उसने हटा दिया और वह उठ खड़ा हुआ। चंद्रिका ने दिया जलाया और उसे अपने पास लेकर बोली – "हम नन्हा मुन्ना चाहते हैं न? माँ नन्हे को लाने गयी है! समझे न?"

"नानी कहाँ हैं?"

"नानी भी नन्हे को ही लाने गयी है।" जग्गू अपनी माँ का स्थान थोड़े समय के लिए भी उसे देने को तैयार नहीं है। उसे माँ चाहिए, नानी चाहिए, पिताजी भी चाहिए और उसका क्रमांक कहीं चौथा-पाँचवा है। कुछ समय खेलने के लिए वह उसे पसंद है। लेकिन इस समय वह उसे नहीं चाहता है। वैसे तो इस समय घर में कोई भी नहीं है। सब प्रसूति-गृह में चले गये हैं। पर जग्गू रोना बंद करता नहीं था। फिर एक बार उसे चुप करानेकी कोशिश में चंद्रिका बोली–"सुनो न! मैं तेरे लिए गाना गाती हूँ।" वह गाना गुनगुनाने लगी। लेकिन जग्गूने अपना स्वर और भी ऊपर चढ़ाया।

"मुझे मेरी माँ दिखाओ।" वह बोल उठा।

"मैं तुझे कहानी सुनाती हूँ।"

"ना... ना... कहानी नहीं, माँ।"

"पापा कहाँ हैं?"

"वे भी नन्हे को लाने गये हैं।"

नन्हे को लाने के लिए घर के तीन प्रिय व्यक्ति गये हैं – यह सुनते ही जग्गू एकदम मुँह फुलाकर रोने लगा। वह तो यह चाहता था कि उसके सारे सगे लोगोंको उसके पास ही रहना चाहिए। आज तक उसके इन प्रिय व्यक्तिओं ने उसे कभी इस प्रकार अकेला नहीं छोड़ा था। और आज वे सब उसे अकेला छोड़कर रात ही में चले गये थे। जग्गू को यह बात बहुत भयानक लगी और वह तिलमिलाकर रोने लगा। आँचल से उसका मुँह साफ़ करती चंद्रिका बोली – "रोना नहीं बेटा! मैं तो तेरे पास हूँ न?"

"मुझे तुम्हरी जरूरत नहीं!"–जग्गूने यह कह चंद्रिकाका हाथ दूर हटा दिया। चंद्रिका के हृदय को इस से कुछ ठेस लगी जरूर फिर भी उसे जग्गू का मन किसी तरह बहलाना उसे ज्यादा महत्व का था। उसने कहा–"जग्गू बेटा, चलो, हम घोड़ा–घोड़ा खेलें!"

'हैक हैक' करती करती चंद्रिका घोड़े जैसी झुक गयी। लेकिन उसका यह रामबाण भी इस समय विफल हो गया। जग्गू जोरसे चिल्लाया– "घोड़ा नहीं चाहिए। माँ के पास ले चलो।"

"माँ नन्हा लाने गयी है, जग्गू बेटा। हमें नन्हा चाहिए न?" रोते–रोते जग्गू पल भर रुक गया। क्या वह सचमुच नन्हा चाहता था? उस का रोना पलभर रुकते ही चंद्रिका तालियाँ बजाती नाचने लगी, और मुँह बनाकर गाने लगी :



गोरा गोरा मुन्ना
प्यारा प्यारा नन्हा
उसकी आँखें काली काली
कानों में बाली।

कुछ क्षण जग्गू उसका विचित्र अभिनय देखता रहा और उसके बाद उच्च स्वर में उसने रोना फिरसे शुरू किया।

"माँ!" वह व्याकुलतासे चिल्लाया "मुझे मेरी माँ के पास ले चलो!"

"माँ डाक्टर के यहाँ गयी है न! सुबह होते ही हम जाएँगे उसके पास!"

"सुबह को नहीं ... अभी ले चलो!" जग्गू रोकर कुहराम मचाने लगा। चंद्रिका समझ न पायी कि उसे कैसे रोका जाय। मध्यरात्रि में जाह्नवी का पेट दुखने लगा था और वह जब प्रसूतिगृहमें चली गयी थी तब चंद्रिका ने जग्गूकी नानी तथा विश्वनाथ से निश्चित स्वर में कहा था कि जग्गू जाग नहीं उठेगा और यदि जाग उठेगा भी तो वह उसे रोने तक न देगी। लेकिन जग्गू जाग उठा था। उसकी गहरी नींद में भी माँ की अनुपस्थिति उसके अंतर्मन को ज्ञात हुई थी और अब वह रोने लगा था। उसे चुप कराने के लिए चंद्रिका ने भरसक कोशिश की। पावडर की डिब्बी पर जग्गू हमेशा नजर रखता। छलनीके छिद्रों से पावडर पड़ते देखकर उसे बहुत आनंद होता। यह महँगा आनंद पानेका मौका वह कभी जाने न देता। चंद्रिका ने अब वह सफ़ेद पावडर की डिब्बी ही उसके हाथ सौंप दी। कुछ समय तक जग्गू पावडर की डिब्बी तोड़-फोड बैठा और फिर एक बार 'माँ-माँ' कहते जोर से चिल्लाने लगा। इत्र की शीशियाँ, शीशे, हाथी–दाँत की अमोल मूर्तियाँ – प्रायः अप्राप्य कई चीजें चंद्रिका ने एक के बाद एक उसके हवाले कर दीं। वह थोड़े समय के लिए रोना बंद करता और बादमें हाथमें उठायी चीज फेंक कर आक्रोश करता – "माँ!" सुबह होते ही विश्वनाथ जब घर आया तब जग्गू बड़े जोश से पैर पटकता था और चंद्रिका उसे संभालते-संभालते पसीनेसे तरबतर हो गयी थी। हँसने का प्रयत्न करते उसने विश्वनाथ से पूछा–"जच्चा-बच्चा ठीक हैं?"

"बिलकुल ठीक!" जग्गू को अपने पास लेते विश्वनाथ बोला।

"बेटा या बेटी?"

"बेटा!"

"जाह्नवी ठीक है न?"

"तुमही उससे अधिक थकी मालूम होती हो चंद्रिका! जग्गूने तुम्हें काफी परेशान किया न? मैंने तुझे पहले ही कहा था कि यह हमारे पुत्र ठीक होनेपर सूत, नहीं तो भूत हैं भूत!"

"भूत वगैरा कुछ नहीं! वह अपनी माँ से मिलन चाहता है!"

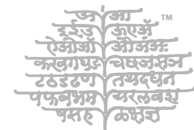
"माँ के पास ले चलो!" जग्गूने फिर होंठ फुलाये।

"चलो बेटा, चलेंगे!"–खूँटीपर कोट लटकाते हुए विश्वनाथ बोला– "लेकिन जरा चाय तो पिओगे न?"

लेकिन जग्गू चाय भी नहीं चाहता था। वह सारे कमरे में दौड़ने लगा और चंद्रिका के सामने अपने जूते रखकर बोला, "मौसी, मुझे बूट पहनाओ!"

सूतिकागृह के बरामदे में अपने बूटोंकी आवाज करते जग्गू सब के आगे दौड़ रहा

अनुक्रमणिका




था और हर कमरेका पर्दा हटाकर चिल्लाता,– " माँ ! ऐ माँ ! कहाँ हो तुम ? पापा, कहाँ है मेरी माँ ? "

विश्वनाथ उसके पीछेसे दौड़ते आया और उसे कंधे से खींचकर चिल्लाया– " शोर न करो ! यहाँ इस प्रकार शोर करना मना है। "

जग्गू उदास हुआ और धीरे–धीरे चलने लगा, लेकिन माँको देखने और उसे चिपकने को वह लालायित हो उठा था। जाह्नवी के कमरे तक वह किसी तरह सीधा चला। लेकिन चादर ओढ़े पड़ी जाह्नवी का मुख दिखायी देते ही वह प्रसन्नतासे चिल्लाया– " माँ ! " और वह सीधा उसके पलंग के पास दौड़कर गया। जग्गू को देखतेही जान्हवी का मुख चमक उठा और उसने अपनी बाँहें फैलायी। पलंग पर हड-बड़ाते चढ़कर जग्गू अपनी माँको कसकर मिलना चाहता था; लेकिन दोनों हाथोंसे उसे पास खींचने के बजाय एक हाथसे जग्गू को रोकते जाह्नवी बोली,– " जरा धीरे बेटा ! वहाँ नन्हा है ! "

उत्साहसे उछलने वाला जग्गू पलभर वहीं ठिठक गया। वहाँ नन्हा होगा इस बातकी उसे कल्पना भी न थी। नन्हे के बारे में सब कुछ वह भूल चुका था। वह केवल अपनी माँ चाहता था। उसकी बगल में एकदम घुसकर वह उसे कसकर मिलना चाहता था। और एक हाथ से उसे रोककर उसकी माँ उसे कह रही थी 'जरा धीरे बेटा ! उसे कुचलोगे ! तुम इस ओर आओ !' और जग्गूको उसने अपनी दुसरी ओर ले लिया ! उसी क्षण जग्गूके मनमें आया कि कुछ भूल हो रही है। कुछ अजीब हो रहा है। माँ के पलंगपर आजतक वह अकेला सोता था। अब वहाँ और एक हिस्सेदार दिखायी दे रहा था। और माँ का मुख उसकी ओर था। जग्गूको उसकी ओर माँ का पीठ फिराना जरा भी पसंद न था और फिर भी अब उसकी ओर माँ की पीठही थी। यद्यपि वह उसे काफी समय के बाद मिल रहा था। जग्गू यकायक उसके शरीर पर अपने पाँव और हाथ डालकर उसका मुख अपनी ओर खींचने की कोशिश करते बोल उठा–" मेरी ओर देख न माँ ! "

" जरा अपने नन्हे की ओर तो देखो। क्या अपनी माँ को कभी देखा नहीं तुमने ? " विश्वनाथ बोला।

" मेरी ओर देखो ! " विश्वनाथ के शब्दों की ओर बिलकुल ध्यान न देते जग्गू फिर बोल उठा। उस क्षण जग्गू की ओर मुख फेरना जान्हवी के लिए असंभव था। उसने नन्हे को उठाया था। जग्गू का हाथ हटाते वह बोली, "शोर क्यों मचाते हो ! क्या तुम छोटे हो अब ? "

जग्गू फिर एक बार उदास हुआ। वह खुद को बिलकुल छोटा समझता था। 'तुम अब तक छोटे हो' इस वाक्य के आधारपर उसे कई बातें करना आज तक मना किया गया था। और आज उसकी माँ उसे पूछ रही थी, 'क्या तुम छोटे हो ?'

" यह अपनी माँ जैसा गोरा होगा, सुना न ? " जाह्नवी की बगल के मांस पिंड को उंगली लगा कर विश्वनाथ बोला ।

" जग्गू जब मुन्ना था तब कितना ' लाल लाल ' दिखायी देता था ! "

" इसीलिए वह मेरे जैसा काला हुआ! "

" छीः छीः " जाह्नवी बोली, " आप कहाँ हैं काले ? आप गेहूँआ वर्ण के हैं । "

" यह तो पसंदगी का सवाल है । लेकिन यह मुन्ना तो बिलकुल गोरा होगा तुम्हारे जैसा ! "

जग्गू देखने लगा । सब कोई उस मुलायम बिछावन में पड़े नन्हे की ओर ध्यान दे रहे थे । उसी की ओर सब देख रहे थे और उसी के बारे में बातचीत कर रहे थे । जग्गू की ओर किसीका भी ध्यान न था । उसकी माँ की भी उसकी ओर पीठ थी । उसकी पीठसे झुक कर जग्गू उसके सामने रखे उस छोटेसे जी की ओर देखने लगा । गुडिया जैसा वह नन्हा दिख रहा था । लेकिन वह आँखें मूदकर पड़ा था । वह न बोल पाता था, न चल सकता था । ऐसा क्या था उसमें कि सब कोई उसके बारेमें ही बोलते थे और उसकी ओर ही देख रहे थे ? आज तक घरवालों को बातचीत के लिए जग्गू के बिना अन्य विषय न था । उसकी बातचीत, उसकी चाल, उसका हँसना और उसका रोना—हर बात सराही जाती थी । लेकिन आज मानों सभी उसे भूल गये थे । कुछ समय तक वह माँके पीछे चुलबुलाता रह गया और बाद में पागल जैसा चिल्लाया— " मेरी ओर मुँह फेर ! "

" अरे क्यों चिल्लाते हो इस प्रकार ? "— विश्वनाथ जोरसे बोला, " नन्हा जाग उठेगा ! "

"आप क्यों शोर मचाते हैं जी ?" जाह्नवी बोली और उसने जग्गू की ओर मुँह किया । जग्गू एकदम उसके गलेसे लिपट गया । उसने जग्गू का शरीर हाथ से सहलाया । जग्गू ने छुटकारे की साँस छोड़ी । फिर भी अबतक सब कोई नन्हे के संबंधमें ही बोल रहे थे । बार-बार लोग नन्हे के रूप के बारे में अपने मत देते थे । कोई कहता नया नन्हा बिलकुल गोरा-चिट्टा है, उसकी आँखें बड़ी बड़ी तथा घनी काली हैं । उसने माँ का वर्ण लिया है । लेकिन उसकी नाक पिताजी के नाक जैसी पैनी है ।

नन्हे के अंग प्रत्यंग के संबंध में चर्चा हो रही थी । और उसकी मौसियों, मामाओं, बुआओं में क्या साम्य है वह ढूँढा जा रहा था । उसके बाद नन्हे का नाम क्या रखा जाए इस संबंध में चर्चा शुरू हो गयी । वे बातें सुनते-सुनते जग्गू का जी ऊब गया । इतने में नन्हा जाग उठा और धीमी आवाज में रोने लगा । जाह्नवीने जल्द करवट बदल ली । अब जग्गू का गुस्सा आपे में न रहा । माँ की पीठ में घूँसा मारकर वह चिल्लाया— " इधर देखो ! "



विश्वनाथ को जग्गूकी यह आक्रमणात्मक वृत्ति पसंद न आयी । वह आगे बढकर बोला—

" तुम हटो यहाँसे ! "

"मैं न हटूँगा !" जग्गू जिद कर ते बोला ।

" क्या, तुम न उठोगे ! " विश्वनाथ ने स्वर ऊपर चढाया—" क्या लत सीख रहा है, दुष्ट ! "

अपनी माँ पर हाथ उठाने का प्रयोग जग्गू आज पहली बार ही कर रहा था । पिता को उलट कर जवाब देने की धृष्टता वह प्रायः कभी न करता था । वैसे तो जग्गू जरा-सा ऊधमी लेकिन बहुत ही कोमल विचार का, तथा बड़ा भला लड़का था । उसके ऊधम को उसकी कोमलता ढँक लेती, लेकिन अब वह सचमुच उपद्रव मचा रहा था । वह मन में घायल हुआ था और हठीला बना था । लगता था कि घरके बड़े लोग उसपर भयंकर अन्याय करने के बाद अब उसे डाँट रहे हैं । उसने अपनी माँ को कसकर पकड़ा और गुर्राते बोला—" मैं नहीं उठूँगा ! "

" क्या करते हो यह ?" जग्गू की माँ उसे समझाते हुए बोली—" अब तुम दाऊ बन गये न ? नन्हा तुझे हँसेगा !"

उसका स्थान छीन कर फिर उसे ही हँसने को तैयार बने नन्हे का यह बर्ताव उसे चुभने लगा । वह फिर जिद्से बोला—" हँसने दो, मैं न उथूँगा ! "

" चलो उठो ! " विश्वनाथने उसे कंधेसे उठाया—"कहता है न उठूँगा ... "

जग्गू हक्का-बक्का हो गया और रोने लगा । वह जानता था कि पिताजी के सामने उसका कुछ भी न चलेगा । उसने अपने पिताजी की ओर एक बार देखा और उसके बाद अपनी माँ की ओर अत्यंत व्याकुलतासे देखा और जोरसे रोने के लिए उसने होंठ फुलाये ।

" बस ! रोना नहीं जरा भी " विश्वनाथ आँखें निकालकर बोला – " चलो, यहाँसे ! "

" बैठने दो, बैठने दो पाँच मिनट उसे मेरे पास " जाह्नवी ने जग्गू को अपने पास खींचकर सहलाया ।

" अरे, दफ्तर जानेका समय हुआ न ! अब घर जाना ही होगा ! चल, रे बुद्दू ! अगर ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें यहाँ न ले आऊँगा फिर ! "

ये शब्द सुनते ही जग्गू का कलेजा बैठ गया । मतलब कि उसे यहाँ से फिर घर जाना ही होगा और उसकी माँ यहीं रहनेवाली थी ?

" मैं नहीं आता ! मै यहीं रहूँगा " शोर मचाते वह चिल्लाया । उसकी चिल्लाहट सुनकर सफेद पोशाक पहने एक नर्स अपने जूते टपटपाती दौड़ आयी और मुँहपर अँगुली रखकर बोली—

" श्शः ! उसे चूप करना । पड़ोस में एक क्रिटिकल पेशंट है । "

" मैं इधरही रहूँगा, मै नहीं उथूँगा " जग्गू ने फिर एक बार जोर से कहा ।

जग्गूकी तोतली बोली सुनकर वह नर्स हँस पड़ी । लेकिन अब जग्गूका क्रोध और दुःख असीम हो गये । उसका हँसना वह न सह सका । उसने बगल में पड़ा पुष्पपात्र उठाया और उस युवा नर्स के रंगीन मुख का लक्ष्य लेते हुए फेंका । अब उस नर्सकी हँसी समाप्त हुई । सूरत बदली । उसी क्षण विश्वनाथ की और बादमें जग्गूकी भी सूरत बदली । क्योंकि विश्वनाथ ने जग्गू के कोमल गाल पर अपनी चारों उंगलि-



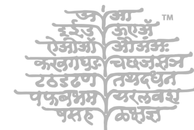


यांसे एक थप्पड़ जमा दी थी। इतने गुस्सेसे और आवेश के साथ जग्गू पर उसने पहले कभी हाथ न उठाया था। यह प्रहार होते ही जग्गू अत्यंत करुण स्वरमें चिल्लाया; उसे मार पीट का नहीं, बल्कि उसे अपमान तथा अन्यायका बहुत दुख हुआ था। वैसे तो जग्गू स्वभावतः रोनेवाला न था। लेकिन आज पराये स्थानपर और पराये लोगों के सामने उसपर थप्पड़ जमायी गयी थी। जग्गू आक्रोश करने लगा। विश्वनाथने फिर गुस्सेसे कहा, — "मुँह बंद कर! क्या रोते हो छोकरी जैसा! अब फिर तुम्हें यहाँ न ले आऊँगा!" और उसकी बाँह पकड़कर वह उसे चलाने लगा।

अभिमानसे और भयसे जग्गूने अपने होंठ सिमटा लिये। फिर भी उसके सिमटे हुए होंठोंसे एकाध सिसकी बाहर निकल रही थी और उसकी प्रतिध्वनि अस्पताल के बरामदे में गूंज रही थी। घर पहुँचने तक जग्गू का सीना फूटने लगा।

विश्वनाथने अपना वचन ठीक तरह से निभाया। अर्थात् प्रसूतिगृहमें वह जग्गू को कभी भी नहीं लाया। दस दिन जग्गू अपने घरमें तड़पता रहा। जग्गू का अपराध बड़ा था लेकिन उसकी उम्र बिलकुल छोटी थी इस लिए यह सजा बड़ी भारी थी। माँ के बिना पूरे चौबीस घण्टे भी वह कभी न रहा था। उन दस दिनोंमें वह कभी अपनी नानीके पास सोता तो कभी चंद्रिका के पास। वैसे तो वह विश्वनाथ के पास भी सो जाता, लेकिन अब वह विश्वनाथ के पास सोनेका नाम तक न लेता। विश्वनाथ अपने बेटे का अवश्य प्यार करता था; लेकिन पुरुष जिस रीतिसे प्यार करते हैं; वही उसके प्यार की रीति थी। उसका प्यार 'हट्टाकट्टा' और कठोर था। प्यार की बारीकियाँ सँभालनेवाला वह न था। इसलिए उसने गत दस दिन जग्गू को घरमें रखा था और चुप बिठाया था। जाह्नवी ने उसे एक दो बार पूछा था कि आप 'जग्गू को क्यों न लाते?' उसपर उसने उत्तर दिया था – "क्यों ले आऊँ? तमाशा दिखाने को?"

वह उसे पूछती – "जग्गू कैसा है?" तब वह बोलता, "ठीक है।" लेकिन जग्गू का कारोबार ठीक नहीं चलता था! पहले एक दो दिन उसने रोने का प्रयोग किया। चंद्रिका या उसकी नानी उसे चुप न करा सकीं। लेकिन अंतमें उसे विश्वनाथ की दंडनीति के सामने विवशतासे झुकना पड़ा। विश्वनाथ ने प्यार से उसे एक दो बार अपने पास सोने के लिए बुलाया, लेकिन जग्गू उसके पास न गया। वह नानी के पास या चंद्रिका के पास खामोशीसे लेटा रहता और नींद में चिल्लाता "माँ-मैय्या! ऐ माँ!" वह माँ की राह देखता, उसके आगमन के दिन गिनता। जग्गू की नानी जान चुकी थी कि जग्गू को मैयाकी लगन है। विश्वनाथकी बातको न मानते वह जग्गू को प्रसूतिगृह में ले जाने के लिए एक दिन तैयार भी हुई थी, लेकिन

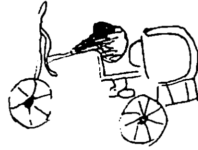

मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

उसी दिन जग्गू थोड़ा बीमार-पड़ा और नानीको अपना विचार छोड़ना पड़ा। लेकिन जग्गू अपनी माँ का इन्तजार करता रहा। उसके सिवा उसे सब कुछ विफल लग रहा था। सब कुछ सूना – सूना लग रहा था कहाँ और कैसे भूल हो रही है यह तो वह समझ न पाता था। उसकी नानी, चंद्रिका या विश्वनाथ उसकी ओर ध्यान देते थे। लेकिन जग्गू मानता था कि माँ के आने के बाद ही सब कुछ ठीक हो जायेगा। * *



लेकिन वास्तवमें कुछ अनोखी बात हुई। दूसरे दिन जाह्नवी के घर वापस आने की नौबत झड़ने लगी। जग्गू का जी आनंदसे उछलता था। अपने पर हुए अन्याय और मिले हुए थप्पड को वह विसर चुका था। विश्वानाथ को भी उसने मनसा क्षमा दे दी थी और उसके निकट ही अपना दैनिक मिष्टान्न लेते समय उसने पूछा —

"पापा, कल मैया आयेगी न ?"

"आयेगी! आयेगी!" विश्वनाथने उसे उठाकर ऊपर फेंक कर लोकते कहा– "अवश्य आयेगी और अपने लोकप्रिय प्रयोग शुरू करेगी!"

लेकिन जाह्नवी के आने के बाद जो प्रयोग शुरू हुआ वह भला कितना भी लोकप्रिय क्यों न हो, लेकिन जग्गू को ज़रा भी पसंद न आया। जाह्नवी प्रसूतिगृह से जब आयी उसदिन लगभग चौवीस घण्टे उसने उसका पीछा न छोड़ा। उसे खुश करने के लिए, अपना प्यार प्रकट करने के लिए वह विविध चेष्टाएँ करता रहा। पड़ोस के छोटूसे उसने कलाबाजी सीखी थी, ताश का जादू सीखा था। 'मदमाखी' ने उसे अंग्रेजी कविता 'तिंकल तिंकल लितिल स्तार' पढ़ायी थी, और नानीने 'शांताकारं भुजग शयनम्' यह पाट सिखाया था। अपनी यह सारी अर्जित सम्पत्ति अपनी माँ को दिखाने के लिए वह उत्सुक था। उसका मुँह अपनी छोटी हथेलियों में पकड़कर वह उसे पूछता–'मैं तुम्हें कलाबाजी दिखाऊँ!' और वह बोलती, 'दिखाओ!' वह पूछता–'मैं तुम्हें तिंकल तिंकल लितिल स्तार सुनाऊँ?' और वह बोलती "सुनाओ बेटा!" वह बोलता–"अब मैं शांताकाल बोलता हूँ!" और वह बोलती "हाँ बेटा।"

उसके बाद उसने उसके सामने गत दस दिनों में इकट्ठे किये काँच के टुकडे, सिगरेट के चंदेरी कागज, चित्र आदि चीजोंका प्रदर्शन रचाया और वह हठ करने लगा कि वह उसे गोदमें लेकर हर चीज निहारें।

जब कभी वह नन्हे को उठा लेती तब वह दौड़कर आता और उसका मुँह अपनी ओर मुड़ाकर कहता, "यह देखो नीला पत्थर!"... "वाह! कितना घना नीला है!"–वह बोलती और फिर नन्हे को उठाने लगती।

तुरन्त उसके हाथ पकड़कर जग्गू चिल्लाता–"इस गोलीका रंग कौन-सा? जानती हो? लाल लाल!"

"ओह कितना लाल!" जग्गूकी माँ कहती और फिर नन्हेकी ओर देखने लगती। जग्गू फिर दौड़ता आता और उसका मुँह घुमाकर बोलता–"पत्ता देखो पत्ता, पत्ता देखो न! कौन-सा है यह पत्ता? लाल पान का एक्का है। समझी न?

"लाल पान का एक्का!" जाह्नवी बोलती। लेकिन जग्गूका उससे समाधान न होता। वह अपनी कलाबाजी दिखाने के बाद ताश खेलनेका आग्रह करता। इस प्रकार पहला सारा दिन जग्गूने जाह्नवी को अपने काम में लगाया।

"अरे जग्गू। माँ परेशान हो रही है। जरा बाहर खेलने जाओ तो सही।" उसकी नानी ने उसे जब कहा तब वह बोला – "मैं माँ के सात खेलूँगा।" और उसने जाह्नवी का साथ न छोड़ा। उस रात भी उसने जाह्नवी का पीछा न छोड़ा। जग्गू की नानी उसे बोलती, "ओ जगन्, दिन भर तो तुमने अपनी माँ को परेशान किया ही है। अब रात को तो उसे सुख से नींद लेने दो। चलो, मेरे साथ सोने आओ।"

उसपर जग्गूने साफ जबाब दिया — "मै न जाऊँगा तुम्हारे साथ सोने। मैं माँके पास ही सोऊँगा।"

"अरे सुनो तो! माँ के पांस नन्हा है न?"

"रहने दो।"

"इससे तुम्हारी माँ को तकलीफ होगी न।"

"होने दो!"

"नन्हा तुम्हें हँसेगा!"

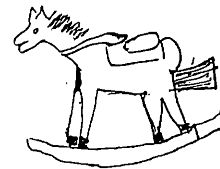
"हँसने दो।"

'नन्हा हँसेगा' इस धमकाने का जग्गू पर उल्टा ही असर हुआ। वह झट पलंगपर कूदा और जाह्नवी से बोला–"मेरी ओर मुँह कर!"

विश्वनाथ अपने मार्ग से जग्गू का बंदोबस्त करने के विचार में था, लेकिन उसे जाह्नवी बोली – "सोने दो उसे मेरेपास!"

लेकिन उस रात जग्गू न स्वयं सोया, न जाह्नवी को उसने आरामसे सोने दिया। माँ का मुख नन्हे की ओर मुड़ते ही वह सचेत होकर बोलता – "मेरी ओर मुँह करो!"

अपनी बेटी को होनेवाली यह तकलीफ जाह्नवी की माँ सह न सकी। दोनों बच्चों के बीच जाह्नवी सिकुड़ गयी थी। सुबह जग्गू जब गहरी नींदमें था तब नानीने उसे धीरे-धीरे वहाँसे उठाया और जग्गू को अपने पास सुलाया। लेकिन थोड़ी ही देरमें जग्गू चिल्लाने लगा और अपनी माँ के पास दौड़ा–"मुझे लो! अपने पास लो!"



रात भर ठीक न सोने की वजह जाह्नवी काफी परेशान हुई थी। जग्गू को झटके से पलंग पर खींच कर वह बोली–"चल आ! दुष्ट कहीं का!" उसी समय नन्हा जाग उठा इसलिए जाह्नवी ने मुँह फेर लिया। तुरन्त जग्गू हठ करने लगा–"मेरी ओर मुँह कर!" जाह्नवी उसकी ओर मुड़ी और जोर-जोरसे उसे थपकियाँ देने लगी। वह सहलाना नित्यकी रितिका नहीं यह बात जग्गूने तत्काल

जान ली। – " गुस्सा न कर! अच्छी तर थपथपा " वह बोला– " नहीं...नहीं...नहीं ऐसे नहीं। थीक पास ले लो। नन्हे को लेती हो न वैसी। "

जाह्नवी को नन्हेसे जितना अपनी ओर खींचना संभव था उतना खींचने की वह भरसक कोशिश करता रहा। और उस प्रयत्न में उसे पूरी सफलता मिलती नहीं है यह भी वह जान चुका था–जाह्नवी के शब्दोंसे समझ चुका था। उसके स्पर्श से उसे यह बात मालूम हुई थी। उन शब्दों तथा स्पर्श की उसे आदत न थी। वैसे शब्द और स्पर्श सिर्फ उसके बारेमें ही उपयोग में लाये जा रहे थे। उस नन्हे के संबंधमें उसका बर्ताव बिलकुल भिन्न था। इस अनोखे बर्ताव से जग्गू रातभर असंतुष्ट था।

दूसरे दिन तो जग्गू और ही अस्वस्थ हो गया! आज नन्हे की बारहीं थी। और आज जग्गूकी ओर ध्यान देने किसी को भी समय न था। उस बित्ते भर गूँगे और लूले नन्हेने जग्गू की सारी दुनिया ही ले ली। उस दुनिया में मानो जग्गू ही पराया बना था, अनाथ बना था! हर कोई उस नन्हे के बारेमें ही बोल रहा था। कोई उसके रंग के बारेमें, तो कोई उसके शरीर के बारेमें, तो कोई सूरत के बारे में बोल रहा था। उसका वर्ण उसकी माँ के जैसा, उसकी नाक पिताजी की नाक जैसी, कान बूआके जैसे और उसकी आँखें मौसी की जैसी हैं, इस प्रकारके वाक्य बोले जाते थे। मानों वह नन्हा उसकी माँ और पिता के सम्बधियों के अंग–प्रत्यंगों का प्रदर्शन था।

नन्हेका नाम क्या रखा जाए इस संबंध की चर्चा अबतक समाप्त न हुई थी। " नन्हेका नाम अनिलकुमार रखा जाए " ऊधमी मौसीने सुझाव पेश किया।

" छी : छीः ! " विश्वनाथ बोला–" इस अनिल–अशोक आदि नामसे मैं ऊब गया हूँ। मेरा नाम है ' विश्वनाथ '। मेरी इज्जत बढ़ानेवाले किसी नामका सुझाव रखो ! "

" अच्छा जी, तो उसका नाम रखो अवनींद्रनाथ ! "–चंद्रिका बोली–" विश्वनाथ नामसे यह मिलने जुलनेवाला है। "

" अरी छोड़ दो यह मिलना–जुलना। " विश्वनाथ बोला— " ऐ ऊधमी मौसी, बंगला कायह माऊ यहाँ क्यो खपाती हो ? "

" अच्छा जी, रहने दीजिये। "–चंद्रिका बोली, "बेटा आपका है। आप ही नाम रखिए। हमें क्यों पूछते हैं। ? रखिए अघोरनाथ, पागलनाथ — चाहे जो नाम रखिए। "

" अरी, गुस्सा क्यों करती हो, चंद्रा ? " जाह्नवी बोली— " और एकाध नाम बताओ न ? सचमुच, यह नाथ और कुमार से मैं तंग आ गयी हूँ। "

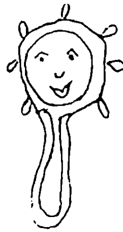
" अरी, सुनती हो ? "–जाह्नवी की माँ बोली —" किसी देव हा का नाम रखिए। बड़े का नाम है जगन्नाथ, इसलिए छोटे का नाम रखिए रघुनाथ ! "

' रघुनाथ ? ' ऊधमी मौसी नाक–भौं सिकुड़ा कर बोली–

" क्योंरी ? " विश्वनाथ बोला–" रघुनाथ नाम कैसे खराब है ? जानकी, पार्वती, सीता,

रघुनंदन रघुनाथ! हमारे देव-देवताओं के ये पुराने नाम कितने सुंदर हैं। हैं न ?”

“हाँजी!”–ऊधमी मौसी सोचती हुई बोली। जग्गू पासही बैठा था। वह सारी चर्चा सुन रहा था, लेकिन उसकी ओर किसी का ध्यान न था। उसकी नानीने उसके नाम का एक बार निर्देश किया था. लेकिन वह कुछ खास न था।



इस प्रसंग का और बातचीत का असली नायक था वह कपडों में लिपटा गुड्डा। अब भी सब लोग उसीके बारेमें चर्चा कर रहे थे।

“कहते हैं रघुनाथ!”–ऊधमी मौसी कह रही थी–“लेकिन नाम रखते समय बेटे का रंग तो ध्यान में लीजिए! जग्गू का नाम रखते समय रंग का विचार करने की जरूरत न थी। क्यों कि वह नाम ही वैसा है। जगन्नाथ का रंग कैसा था यह कहीं भी किसी ने बताया नहीं। लेकिन राम के बारेमें वह स्थिति नहीं है। राम घननील, घनश्याम था, इस प्रकारका हर जगह वर्णन है। और यह नया नन्हा तो बिलकुल सफेदचिट्टा है। जग्गू जैसा काला-साँवला नहीं है।”

पंडित के जैसे बोलते, ‘मधुमक्खी’ ने अनजाने जग्गू को घायल किया था। पहलेसे ही असंतुष्ट जग्गू अब ऊँचे स्वरमें चिल्लाया–“माँ मैं अब कलाबाजी दिखाता हूँ, देखो सब कोई!”

उसकी इस चिल्लाहट ने चर्चा में मग्न हुई सभा को बदरंग किया और विश्वनाथ बिगड़कर बोला,–“तुम्हारी कलाबाजी बाहर जाकर करो, यहाँ नहीं!”

“नहीं इधर ही करूँगा!”–जग्गू ने माथा जमीन को लगाकर पाँव ऊपर उठाये।

“यहाँ बातचीत चल रही है। तू बाहर जा।” विश्वनाथ स्तुत्य आत्मसंयमन दिखाते बोला, लेकिन उसका स्वर बदल चुका था। उसके आत्मसंयम का बाँध कब टूटेगा इसका पता न था। परिस्थिति स्फोटजनक है यह जग्गू की नानीने जान लिया और जग्गूको सीधा करते वह बोली– “क्या तुम पागल हो? हमेशा बड़ों का सुनना चाहिए। जा, बाहर जाकर खेल बेटा!”

“हम इधर ही खेलेंगे!”–नानी का हाथ झकझोरते, जमीन को माथा लगाते जग्गू बोला।

“दिन-ब-दिन निकम्मा बन रहा है, शैतान।”–विश्वनाथ कुड़बुड़ाने लगा– “पहले ऐसा कभी न करता था। अब सब अवगुण सीख रहा है।”

विश्वनाथ ने जग्गू की नानी की ओर एक बार देखा। उसे मानों कहना था कि तुम्हारे वाहियात लाड-प्यार से बेटा बिगड़ गया है और उसने आँखें निकालकर जग्गूकी ओर देखा तथा जोरसे कहा–“ए गधे कहींके! चल हट यहाँ से! बाहर जा नहीं तो जोर का एक तमाचा दे दूँगा!”

“सुनिये न?”–जाह्नवी बोली–“कम-से-कम आज तो उसे न दुतकारना।”

“अरी, क्या मुझे शौक है दुतकारनेका? लेकिन वह किसी की भी बात मानता नहीं। अब बताओ क्या करें?”

“मानेगा! मेरी बात अवश्य मानेगा! है न जग्गू?”–जाह्नवी बोली। लेकिन उस के लिए जो जाह्नवी ने हामी भरी थी वह विफल हो गयी क्योंकि जग्गूकी ओरसे जरा भी सहायता न मिली। वह जिदसे बोलते वहीं खड़ा रहा और ताश उसे दिखाते हुए कहने लगा—“अब मैं तुझे ताश का जादू दिखाऊँगा!”

“मैं बाद में देखूँगी तेरे जादू! अब तू जरा पड़ोस के शामू के साथ खेल।”

“मैं इधर ही खेलूँगा।”

“यह क्या करते हो? यहाँ बड़ों की बातचीत चली है न? अगर ऐसा करोगे तो तो मुन्ना तुझे हँसेगा!”

“हँसने दो! मैं उसे हँसूँगा!”

आँखे मूँदकर खामोश पड़े हुए उस लाल माँसल गोले की ओर अंगुलि-निर्देश करते जग्गू बोला—“उसे भेजो बाहर खेलने!”

“अरे, वह नन्हा है अबतक!”

‘वह नन्हा है,’ ‘तुझे हँसेगा’— उसकी माँ भी उसे उन शब्दों के दाग़ दे रही थी! अपनी व्यथा किन शब्दों में प्रकट करनी चाहिए, अपना मनोगत उसे कैसे प्रकट करना होगा–यह बात जग्गू समझ नहीं पाता था। अकारण आवाज बुलंद करते वह चिल्लाया–“हम भी छोटे हैं!”

उसकी वह कान के परदे फाड़नेवाली चिल्लाहट सुनते ही विश्वनाथ संतप्त होकर उठा और उसकी बाँह पकड़कर उसे बाहर ढकेलते बोला–“कैसे चिल्लाते हो राक्षस जैसे? चल, हट यहाँसे!”

* *

बाहर आँगन में जाकर एक पेड़ के नीचे जग्गू अकेला सिसक रहा था। उसे कहीं एक कीला मिला। उसे उठाकर, रोते-रोते वह पेड़ के नीचे गड्ढा खोदने बैठा। “हम अकेले खेलेंगे! हम माँ के सात न खेलेंगे! हम उसका घल धूप में बाँधेंगे!...” वह रोते-रोते कुड़बुड़ाता था। पड़ोस की नमूबूआने उसे अकेला देखा और उसके पास आकरके बोलीं–“जग्गू! क्या करते हो अकेले यहाँ?”

“खेलता हूँ!”

“अकेले ही?”

“हाँ”... बाँहें आँखों पर फेरते जग्गू बोला। नमू बूआ को उसकी यह करुण अवस्था देखने को मिल गयी यह बात उसके मान-सम्मान की दृष्टिसे उसे पसंद न आती थी।

“अरी, आज तुम्हारे घर नन्हे की बारहीं है न?”

“है...!” नीचे सर झुकाकर जमीन खोदने का उद्योग उसने जारी रखा।

“तो क्या है खाने?” नमूबूआ ने पूछा

“बहुत हैं... बहुत हैं!” गृहछिद्र न दिखाने के निश्चय से जग्गू बोला।

“लेकिन क्या है? बताओ न!”

सचमुच घरमें कुछ बन रहा था। लेकिन क्या बन रहा था इस ओर जग्गू का ध्यान ही न था। अपना अज्ञान छिपाने के लिए वह बोला–“है कुछ न कुछ। बहुत कुछ है!”

“नये नन्हे के लिए है न? और तुम्हारे लिए?” नमूबूआने सवाल पूछा।

"मेले लिए भी है!" हाथ का कीला अकस्मात् जोशसे चलाते और चारों ओर मिट्टी फेंकते जग्गूने जवाब दिया।

"नन्हा कैसा दिखता है?"

नमूबूआकी प्रश्न-माला जारी रही।

"भौत अत्ता...!"

कुलकीर्ति को प्रथम स्थान देते अपनी भावनाएँ छिपाते हुए जग्गू बोला।

"तुम्हें पसंद है न?"

"हाँ...पछंद है!" जग्गू का स्वर चढ़ रहा था।

"नन्हा गोरा-गोरा है न?"

"है...!"

जग्गू के कीले का वेग बढ़ने लगा।

"नन्हा कैसा? गोरा चिट्टा और जग्गू काला कलूटा!"

नमूबूआ सहज ठहेमें बोलीं लेकिन उस एक ही वाक्य ने जग्गू का सारा तौल खत्म हो गया। हाथ का कीला फेंक कर उसने दोनों मुट्ठियोंसे मिट्टी उठाकर नमूबूआ पर फेंकना शुरू किया और वह पागल जैसा, चिल्लाने लगा–"नन्हा काला कलूता है। काला कलूता...खराब है...दुष्ट है!"

और शोर मचाते वह छाती- फूटनेवाला आक्रंदन करने लगा। देखते–देखते, घरसे जग्गू की नानी, चंद्रिका तथा विश्वनाथ 'क्या हुआ? क्या हुआ?' यह सवाल पूछते बाहर आये।

सचमुच क्या हुआ था यह नमूबूआ भी ठीक तरहसे जानती न थी। उन्होंने जो कुछ कहा था वह केवल सीधी सादी वत्सलतासे कहा था और उसे पारिश्रमिक के तौर पर उसके बालोंमें, मुँहपर और कपडोंपर मिट्टी ऊँडेल दी गयी थी। आज तक जग्गू को ऐसा बर्ताव करते उसने कभी देखा न था। 'क्या हुआ' इस सवाल को जवाब देते वह इतना ही बोलती रही– "नानी, कुछ खास नहीं हुआ। सुनिये न ..." और 'सुनिये न ...' इन शब्दोंपर नमूबूआ अटक गयी। कारण उससे क्या हुआ था यह वह स्वयं जानती न थी। अधिक कुछ समझ लेनेकी किसीकी इच्छा न थी। नमूबूआको क्या हुआ था यह स्पष्ट दिखायी देता था। और, वह किसने किया था यह भी स्पष्ट था। विश्वनाथ की आँखें क्रोध और संकोच से लाल हो गयीं। जग्गू का उसके हाथोंमें आ जाना उचित न था। जग्गू को नाममात्र सज़ा देना भी आवश्यक था। इसलिए जग्गूकी नानी ने जग्गू की पीठ पर एक धमाका जमाया और उसके कान पकड़कर उसे खींचते बोली–"चल घरमें! दुष्ट कहीं का! अब तुम्हें ठीक पीटूँगी!"

और, थोड़े ही समय पहले निष्ठुरतासे घरसे निकाला जग्गू उसी निर्दयता से घरमें खींचा गया। आँखोंसे आँसू झाड़ती नमूबूआ बता रही थी– "अरे उसे न पीटना। आखिर वह बच्चा है। उसे न मारना! आज के शुभ दिन उसे क्यों मारते हो?"

लेकिन जग्गू की नानी जग्गू को केवल घसीटती घरमें ले गयी। उसने उसे पीटा नहीं।

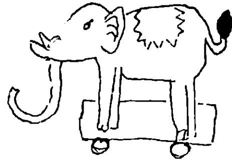
बाहरका कोलाहल जाह्नवी के कानतक गा पहुँचा था। अंदर आनेवाली चंद्रिकासे उसने पूछा— "अरी चंद्रा, क्या हुआ? क्या मेरे जग्गूने कुछ किया?"

लेकिन इस प्रश्न का उत्तर चंद्रिका को देना ही न पड़ा। मिट्टी से भरा चेहरा और गालोंपर आँसूओं की माला इस अवस्था में जग्गूको लेकर उसकी नानी भीतर आयी।

"सम्हाल तेरे बेटे को!"–वह बोली, "कौन–सा पिशाच उसके सरपर सवार है राम जाने!"

जग्गूके सरपर कौन-सा पिशाच सवार है यह पूछने की झंझट में जाह्नवी न पड़ी। जग्गूका वह म्लान, उदास और मिट्टी-गर्द से मिले चेहरे को देखते ही उसके हृदय में तीव्र वेदना हुई। उसने जग्गू को अपने पास लेकर साड़ी के पल्लेसे उसका मुँह पोंछ लिया और उसे चूमकर बोली– "कितना धुतकार लेते हो! जा बेटा! 'मधुमक्खी' से 'हरगंगे' कर लो! आज बिलकुल सयाने जैसा बर्ताव करना है। भूलना नहीं। समझे न?"

उसने फिर एक बार उसे सहलाया। जग्गू की म्लान हुई कांति पलभर में प्रफुल्लित हो गयी। अपनी माँ का यह स्पर्श उसने पहचाना था। यह स्वर भी उसने जान लिया। यह स्वर और स्पर्श ही सचमुच उसके परिचय के थे। उनकी ही उसे प्यास लगी थी। जाह्नवी का हाथ पीठपर फिर जाते ही मानों उसके घाव भर आये और चंद्रिका के साथ कूदते–फाँदते वह स्नानगृह की ओर चला गया।



उसी आनंद में जग्गू ने खाना खाया और वह पेड़ के नीचे खेलने गया। श्यामू, रामू, सदू, गोदी जैसे चार साल से लेकर दस साल तक के बहुत-से बच्चे उस पेड़ की छाया में खेलने आते। जग्गूके घर में बड़ी गड़बड़ी मची थी। परिचित स्त्रियाँ और रिश्तेदार धीरे–धीरे इकट्ठा होने लगे थे। शामको जग्गूके नये भाईकी बारहीं थी। अड़ोस-पड़ोस के सभी बाल-बच्चों को बारहीं का समाचार और निमंत्रण मिले थे।

श्यामू, रामू, सदू, गंगी, गोदी – सबको जग्गू के यहाँ मिठाई खाने के लिए जाना था। उन बच्चों में भी नये नन्हे की बारहीं के बारेमें ही चर्चा जारी थी। इस चर्चामें सदूका सबसे अधिक हिस्सा था। क्यों कि वह दस वर्षोंका ज्ञानी पुरुष था। गंगी, गोदी, रामू ये बच्चे भी वैसे ही लगभग आठ-नौ साल के थे। जग्गू और श्यामू से वे खुदको अधिक विद्वान समझते। अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करनेके लिए वह बोला– "जग्गू के भाई का नाम क्या रखनेवाले हैं जानते हो? क्यों गंगा, गोदा, तुम्हें मालूम है?"

"नहीं नहीं...।" गंगा और गोदा एक साथ बोलीं।

"श्यामू तुम–जानते हो?"

"मुझे नहीं मालूम!"

"जग्गू, क्यो तुम्हें तो पता होगा!"

"मुझे भी नहीं!"

"धुत् तेरी! भाई का नाम मालूम नहीं? कल बड़ा होकर वह तुम्हारा कान पकड़ेगा! जानते हो?"

इसका यह वाक्य सुनते ही जग्गू के चेहरे पर बादल छा गये। सदू आगे कहने लगा–"तुम्हारे घरमें झूला लाकर रखा है। क्या वह तो जानते हो न? कितना शानदार है वह झूला! उसपर रंगीन चिड़ियाँ लटक रही हैं।"

"क्या चिड़ियाँ लटक रही हैं?"–आँखें फाड़कर जग्गू ने पूछा!

"हाँ...हाँ...चिड़ियाँ!"–सदू बताने लगा, "असली नहीं...झूठमूठ की! समझे न? उन के झूले में नन्हे को सुलाया जायेगा और झूले को जोर से झुलाएँगे।"

"क्या उसे झुलाएँगे?"–जग्गू ने पूछा

"और मुझे?"

"तुझे कौन झुलायेगा?"

"माँ झुलाएगी!"

"माँ करेगी मारपीट!" सदू मुट्ठी दिखाते बोला–"–क्यों गंगा? सच है न?"

"सच, सच, सच!" गंगी, गोदी और रामू नाचते बोले– "माँ देगी मार!"



इस भविष्यवाणी के बारे में जग्गू सोचने लगा। आजकल मारपीट से उस का काफी परिचय हुआ है। ईश्वर जाने क्यों! शायद माँ भी उसे मारती! फिर भी उस चिड़ियाँवाले झूलेमें बैठने की इच्छा उसके मनमें उत्पन्न हुई थी। वैसे तो घर के झूलेपर बड़े भी बैठते और झूलते। तो चिड़ियोंवाला झूला उसे अपवाद क्यों होगा?

यह विचार आते ही जग्गू घरमें दौड़ते हुए घुसा। घर में काफ़ी गड़बड़ी मची थी। विविध प्रकार के कामकाज जारी थे। और एक कमरे से दूसरे कमरे में चिड़ियोंवाला झूला ढूँढने के लिए भटकने वाले जग्गू को 'बीच में क्यों आते हो?' ऐसा सवाल पूछ कर हर कोई दूर हटा रहा था। जग्गू की निगाह वही झूला खोज रही थी। अंतमें स्त्रियों के दालान में उसे वह झूला दीख पड़ा। वह रंगीन झूला सचमुच शानदार सजाया हुआ था। और उसपर चहकनेवाली और कूदनेवाली चिड़ियाँ लटक रही थीं। इस प्रकार का झूला जग्गू ने कभी देखा न था। इस झूलेमें बैठकर झुलाया जाना सचमुच बड़े मजे का होगा। उस झूले की ओर दौड़ते पास ही बैठी चंद्रिका से जग्गू बोला—

"मधमासी, मैं इस झूलेमें बैठूं?"

"अरी, ना...ना!" फूलों की माला गूँथनेवाली चंद्रिका बोली।

"लेकिन क्यों?" ईर्षा से जग्गूने पूछा।

"वह झूला न? अपने नन्हे का है!"

"वह मेला भी है!"

इतनेमें नन्हे को लेकर जाह्नवी वहाँ आयी और पूछने लगी–"क्या कह रहा है जग्गू?"

"मैं बैठूँगा झूलेमें!" जग्गू झूलेसे लटकते बोली।





"अरे, पागल कहीं का!" जान्हवी बोली "अपने नन्हेका है वह झूला!"

"मेला भी है। मैं बैठूँगा उसमें।"

जग्गू झूलेसे लटकने लगा। उसपर टँगी हुई चिडियाँ हिलने लगीं और हिलते-हिलते चहकने लगीं।

"जगन्! " जाह्नवी चिल्लायी।

"अरी जाह्नवी, बच्चेको यह छल्ला और पहुँची पहनाओ और यह झगा भी..." शीघ्रतासे भीतर आयी जाह्नवी की माँ जग्गूको झूलेसे लटकते देखकर अचम्भेसे बोली— "अरे यह क्या कर रहे हो!" और फिर पलभर सोचकर वह बोली–"अरे, यहाँ देखो न? क्या मज़ा लायी हूँ।"

उसने जगन्नाथ की आँखों के सामने नीली मखमल की किनारीवाला **सेलर** सूट हिलाया। जग्गू झूला छोड़कर अपनी नानी के पास दौड़ा और बोला–

"वह क्या है?"

"सेलर सूट"–नानीने जवाब दिया।

"नहीं... वो... वो...?" झगे की ओर अंगुली निर्देश करते जग्गूने पूछा। "वह झगा है!"

"और वह...?"

"यह तो हैं नन्हे के छल्ले!"

"और ये?"

"ये है पहूँची, नन्हे की!"

"मेले छल्ले कहाँ हैं?"

"क्या तू नन्हा है छल्ले पहननेवाला?"

"मुजे छल्ले दे दो और सबकुछ!"

"क्या झगा भी चाहिए?" जग्गू की नानी खिल-खिलाकर हंसती बोली।

"हाँ... मुजे ये चाहिए वो चाहिए" जग्गूने अपनी बात दोहरायी।

"अरे, तेरे लिए यह सूट है!"

"नहीं...नहीं ... मुझे सूत नहीं... झगा चाहिए!"

"झगा?"

"खी : खी : खी : !" अब चंद्रिक भी हँसने लगी।

"उस पगले से क्यों बोल रही हो? जाह्नवी, चलो जल्द! नन्हेको यह रेशम का झगा पहनाओ... और ये छल्ले!"

जान्हवी की माँ ने छल्ले अपनी हथेली पर रखे और उनकी चमक वह निहारने लगी। देखते ही देखते जग्गूने चील के जैसा नानी की हथेलीपर झपटकर छल्ले उठाये और वह भागने लगा।

"अब क्या करूँ री? कैसा दुष्ट है? सोने के छल्ले लेकर भाग गया!"

और वह बूढ़ी जग्गू के पीछे दौड़ने लगी। उसके पीछे चंद्रिका दौड़ने लगी। सदू, गोदू, गंगू आदि बालगोपालों को भी वह दृश्य बड़ा मनोरंजक लगा। देखते ही देखते पूरी वानरसेना उस भागदौड़ में शामिल हो गयी। यों जग्गूको पकड़ना वैसा कुछ खास कठिन काम न था। लेकिन जग्गूको पकड़ने के लिए दौड़नेवाले एक दूसरे से टकराकर गिरने लगे थे। अंतमें चंद्रिका ने जग्गूको लगभग पकड़ ही लिया। लेकिन उसके हाथ

अनुक्रमणिका



भेंट
का
अनर्घ
अलंकार





शृं गा र ना यि का

सांस्कृतिक जीवन की श्रेष्ठ धरोहर

- आकार १०"×१३" ◆ पृष्ठ संख्या ८४ ◆ मुहरदार काग़ज
- ज़िल्द घना पुट्ठा ◆ १० ऑफसेट चित्र ◆ ६० अधिक रंगीन चित्र
- स्मरणीय भेंट ◆ हिंदी का श्रेष्ठ ग्रंथ ◆ मूल्य १२·५०+१रु. पोस्टेज

प्रकाशक :

दलाल आर्ट स्टुडिओ
४२ केनेडी ब्रिज
मुंबई–४

आज
ही
मंगाइए





अनुक्रमणिका

आनेके पहले ही जग्गूने छल्ले गटर की ओर फेंक दिये थे। उनमें से एक ऊपर ही रहा और दूसरा सीधे भीतर चल पड़ा।

विश्वनाथ पेड़े खरीदकर जब बाजार से लौटा तब उसने घर के सामने लगी हुई यह भगदड़ देखी। इस भगदड़ का कारण सदूने झट समझा दिया। दिनभर के कष्ट से थके विश्वनाथ का सर यह समाचार सुनते ही भन्ना उठा। जग्गू को जोरसे खींचकर बोला– "चलो, तुम्हें अभी सीधा करता हूँ!"

जग्गू की नानी को ये शब्द ठीक न जँचे। वह बोली–"सोना गया सो जाने दो। अब कम-से-कम बच्चे को न पीटना!"

"ठीक है। उसे सीधा करनेके और भी मार्ग मैं जानता हूँ!"

और बिलकुल एकांतवाले नौकरोंके खाली कमरेमें जग्गूको उसने बंद कर दिया। जग्गू का पक्ष कैसे लेना चाहिए यह किसीकी भी समझमें न आता था। क्योंकि वह क्या कर बैठेगा इस का अंदाजा किसी को न था। धीरे–धीरे निमंत्रित लोग आने लगे। हँसीमजाक शुरू हुआ। पेड़े बाँटे जाने लगे। बच्चे आनंदसे चिल्लाने लगे; पर उस अंधेरे कमरे में जग्गू अकेला सिसक रहा था। "मैं पापा का घल धूपमें बाँधूंगा!" वह बोल रहा था, "मैं नन्हेका घल धूपमें बाँधूंगा! मैं छबका घल धूपमें ..." और उसके मनमें असीम दुःख और क्रोध भर रहे थे। उस दुःख को कैसे प्रकट करना चाहिए यह बात वह समझ न पाता था।

मानों सभी लोगोंने उसे छोड़ दिया था। इतनेमें दरवाजेकी कुँडी की आवाज हुई और दरवाजा खोला गया। नन्हे को लेकर जाह्नवी अंदर आयी थी। नन्हे के हाथमें छल्ला था और नया झगा उसने पहना था। माथे पर शानदार टोपी थी। जाह्नवी जग्गू का सूट लेकर आयी थी और उसे कह रही थी–"क्या, करते हो पागल जैसा? चल बेटा! यह सूट पहनो!"

लेकिन चाहे जो हो जग्गू सूट नहीं पहनता था। वह पैर झटकने और चिल्लाने लगा– "नन्हा काला कलूता है, काला कलूता है। उस का घल मैं धूप में बाँधूँगा। पापा का घल मैं धूप में बाँधूंगा!..."

जग्गू का चिल्लाना जारी था उतनेमें ही विश्वनाथ शीघ्रता से वहाँ आया और बोला– "बस हुआ तुम्हारा मातृप्रेम। यह लड़का पूरा शैतान है। क्या लोगों को तमाशा दिखाना है? चलो जल्दी, वहाँ सब तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।"

जाह्नवी 'आँखें' पोंछती निकली और विश्वनाथ ने फिर दरवाजा बंद कर दिया। जग्गू जोरसे सिसकने लगा और बोलने लगा— "नन्हेका घल मैं धूपमें बाँधूंगा पापा का घल मैं धूप में बाँधूंगा!"

वह सिसकता था और रुकता था; रुकता था और फिर सिसकता था। उद्वेग और व्यथा से उसका पूरा शरीर काँप रहा था। उस वेदना को और व्यथा को किस प्रकार मार्ग देना चाहिए वह उसके ध्यानमें न आता था। काफी समय के बाद कमरेका दरवाजा खोला गया और जग्गूकी नानी हाथमें पेड़े लेकर अंदर आयी। किसी एक बेंत की पुरानी कुर्सीमें अंग सिमटाकर सोये जग्गू को उसने देखा। उसका संताप और उसकी व्यथा नींद में भी उसके चेहरेपर अंकित हुई स्पष्ट दिखाई दे रही थी। * *

दिन पलटते थे। छः महीने बीत गये तो भी जग्गूका दुःख घटनेका कुछ भी चिह्न दिखायी न देता था। रघू दिन-ब-दिन बड़ा हो रहा था और जग्गूका दुःख भी बढ़ रहा था। रघू की तरफदारी करने पर 'वह छोटा है' यह धुन घरके ज्येष्ठ लोगोंने लगा रखी थी। एक तरफ वे आश्वासन देते कि रघू जल्द बड़ा हो रहा है, मोटा होता जा रहा है और दूसरी तरफ लोग बताते हैं कि वह अब-तक छोटा है। माँके पलंगपर रघू अब अधिक जगह घेरने लगा और जग्गू दूसरी ओर धकेल दिया जाता। माँ का मुँह अब भी प्रायः रघूकी ओर ही रहता। उसका हाथ उसे सम्हालता और वह उसे आँचल की ओर में छिपा लेती। बेचारा जग्गू अनाथ था और उसे लग रहा था कि वह प्रतिदिन अधिक अनाथ हो रहा है। नये नन्हेके मुखसे बाहर पड़नेवाला अर्थहीन हुंकार भी जितना सराहा जाता था उतना जग्गूका दिनभर का बोलना कभी न सराहा जाता। औंधा होना या चप्पाभर सरकना यही क्या पराक्रम है? जग्गू तो सर पर खड़ा होकर खूब शीघ्रतासे कलाबाजी दिखा सकता था। लेकिन उसकी कलाबाजी की प्रशंसा कोई भी नहीं करता था। उल्टा कहते–"क्या गरदन तोड़ लोगे?...अरे टाँग टूट जावेगी!"

हाथ भर का रघू केवल औंधा हो या जरा-सा सरके तो बड़े लोग तालियाँ

बजाकर कहते–'नन्हा औंधा हुआ! नन्हा सरक गया।' जग्गू को यह भयंकर अन्याय लगता। वैसे तो हर विषय में उसपर अन्याय हो रहा था। रघूको नये–नये खिलौने मिलते, नये कपड़े दिये जाते। नये कपड़े देने का कारण यह बतलाया जाता कि नन्हा प्रतिदिन बड़ा होता है इसलिए कपड़े बदलने चाहिए। नये खिलौने के बारे में स्पष्टीकरण किया जाता कि 'नन्हा अबतक छोटा है!' घरमें आनेवाले मेहमान भी नन्हे को सुंदर–सुंदर खिलौने और कपड़े भेंट दे देते। नन्हे के कपड़े पर रेशमकी नक्काशी की हुई रहती और कलाबत्तू लगाये रहते। जग्गू को केवल खाकी या नीली पैंट और सफेद शर्ट दिये जाते। 'बड़े लड़के को ये कपड़े पहनने चाहिए; तुम तो कपड़े जल्द गंदा करते हो।'—जब वह रेशमी कपड़ोंकी माँग करता तो क्रोध के साथ यही जवाब दिया जाता है। और नन्हा अपने कपड़ोंपर कभी कै करता और कभी किसी तरह गंदा करता रहता था। जग्गू कम–से–कम ऐसी बातें तो नहीं करता था। फिर भी रेशमके और कलाबत्तूवाले कपड़े नन्हे को ही दिये जाते थे। नन्हे के खिलौने भी कितने सुंदर-सुंदर थे। उसकी मुट्ठी में चाँदी का झुनझुना रहता। झुनझुना बजाना जग्गू को भी पसंद था। इसलिए उसने घुंघरूवाले चाँदी के झुनझुने की माँग की थी।

"चार सालका घोड़ा बना है तू! तू क्या नन्हा है जिसे झुनझुना बजाने को दिया जाय?" इस वाक्य से उसकी माँग पूरी कर दी गयी। अगर उसकी नानी वहाँ होती तो वह उसका पक्ष अवश्य लेती। लेकिन वह तो तारामौसी की प्रसूति के लिए कब की चली गयी थी। नानी न थी इसलिए जाह्नवी को समय बिलकुल कम मिलता; और जो कुछ समय मिलता वह नन्हेके लिए खर्च हो जाता। जग्गूको मिल जाता केवल एक आदेश – "जा, बाहर जाकर खेल!" नन्हेको वह झुलाती, उसे गोदमें लेती, उसके लिए गाना भी गाती।

"मुझे गोद में ले लो!" अगर वह कहता, तो वह उसे कभी–कभी गोद में लेती थी। पर ज्यादातर तो यही कहती–'क्या मेरे चार गोदें हैं तुझे लेने के लिये' अथवा 'क्या मेरी गोद तोड़ना चाहते हो?' ...क्या तुम छोटे हो गोद में सोने लायक?'



रात को सोने के बारे में कुछ ऐसी ही अवस्था थी। काम कर के थकी हुई और दो बच्चों के बीच सिकुड़ी हुई जाह्नवी कभी-कभी कहती–"जग्गू मेरी पीठ में कसक है! तुम्हें दूसरा पलंग दे दूँ मेरी बगल में? क्या उसपर तू सोयेगा? या पिताजी के साथ सोओगे तुम?..." पिताजी के साथ सोने की बात उस के लिए असह्य थी। वहाँ तो पलभर भी सोने को जग्गू तैयार न था। और दूसरे पलंग पर सोने की बात भी उसे एकदम नापसंद थी। उसके बदले जग्गू कहता–"रघू को दूसरे पलंग पर क्यों नहीं सुलाती?" जाह्नवी ऐसा सुझाव कैसे मान सकती थी? 'तुम छोटे नहीं हो' यही उस के सवाल का निश्चित और क्रोधजनक जवाब था...

वैसे तो क्रोधजनक कई बातें जग्गू के जीवन में हो रही थीं। वे बातें रुकती न थीं, उनका अंत न था। उसका बोलना ही कोई ध्यान में लेने को तैयार न था। उसका कोई सुनता भी न था। इसीलिए कभी–कभी अपनी बात चिल्लाकर बता देने की उसे आदत पड़ी थी। 'माँ, पापाजी, देखिए न?' इसप्रकार धीमे स्वरमें किसी विषयपर बोलना शुरू करते ही उसका कहना अनसुना किया जाता या अधिकतर 'चुप बैठ! क्यों बीच-बीच में मुहँ डालते हो? इतना ही उत्तर उसके उस सभ्य स्वर को मिल जाता था। यह अनुभव लेकर जग्गू बिलकुल ऊँचे स्वर में चिल्लाता। —'माँ!' और उसका नतीजा यह होता कि उसके पिताजी उसे डाँटते और वह अधिक ऊँचे स्वरमें चिल्लाने लगता। पिताजी के सामने जग्गूको डर के मारे चुप रहना पड़ता। लेकिन मन–ही–मन वह उबलता और जलता था। चिल्लाकर बोलना अब उस की हमेशा की आदत बन गयी थी या अब बन रही थी। चिल्लाने के बगैर अब उसका समाधान नहीं होता था। वह असलमें कितना और किस प्रकार चिल्लाना चाहता था इसकी किसी को भी कल्पना न थी। नये नन्हे के साथ उसकी हमेशा तुलना की जाती थी। नया नन्हा गोरा था और जग्गू काला था; नये नन्हे की आँखें बड़ी बड़ी थीं और जग्गूकी आँखें बिलकुल छोटी। रघू हँसमुख था तो जग्गू रोती सूरतवाला था! रघू को जोरसे चिल्लाकर रोते उसने देखा था। फिर भी उसकी प्रशंसा की जाती थी। जग्गू बोल सकता था। वह थोड़ा तोतला बोलता था फिर भी एक के पीछे एक वाक्य बोल सकता था। लेकिन विश्वनाथ उसे 'शाबाश' कहने के बजाय उसकी गलती दिखाने लगता। वह कहता–"चार सालका घोड़ा बना फिर भी तोतला बोलता है। बुद्धू कहीं का। यह रघू ही तुझे सिखायेगा देखते रहना।" और यह रघू एक शब्द भी बोल न पाता था। बोतल से पानी उँडेलते समय जिस प्रकार की आवाज आती है उसी प्रकारके स्वर वह केवल निकाल सकता था। वही उसका अधिक से अधिक कर्तृत्व था। पर इस कर्तृत्व के लिए उसकी स्तुति की जाती थी। जग्गू चिल्लाते ही उसका बाप उसकी पीटपर घूँसा जमाता। जग्गू के बारेमें जो गुस्सा उसके मनमें पैदा होता वह घूँसा जमा कर प्रकट करनेकी आदत उसे लगी थी। पहले विश्वनाथ ने जग्गूपर कभी हाथ न उठाया था। वैसा कभी प्रसंग ही न आया था। लेकिन रघूका अवतार होते ही जग्गू के ग्रह पलट गये। 'दिन-ब-दिन तू बिगड़ रहा है–' ऐसा कहकर विश्वनाथ प्रायः प्रति दिन जग्गू को तमाचे दे देता। रघूके जन्म से ही सब कुछ बिगड़ चुका है। और विश्वनाथ तो बेहद बिगड़ा है यह जग्गूका मत था। नहीं तो केवल मुखका उपयोग चिल्लाने के लिए करनेके कारण वह उसे क्यों पीटता? वैसे तो नया नन्हा भी चिल्लाता था।

अनुक्रमणिका

अब वह चार छः महीनों का नन्हा अच्छी तरह से जानता था कि उसकी अर्थहीन चिल्लाहट कान तक पहुंचते ही माँ दौड़



आती है। इसलिए समय-असमय चिल्लाने का उद्योग उसने अभी-अभी शुरू किया था। लेकिन इस उद्योग के लिए उसे कोई पीटता न था। उलटा उसकी पागल जैसी चिल्लाहट भी अभिमानास्पद मानी जाती थी। इस अकारण व अगम्य अन्याय के बोझसे जग्गू का छोटा-सा जी कुचला जाता था। उसका दम घुट रहा था और इसीलिए जोर-जोरसे चिल्लाने की उसे इच्छा होती थी, गुस्से में आने की इच्छा होती थी। उसके मन में कई बार आता कि किसी न किसी को काट लूँ, खरोंच लूँ।

चाँदी का झुनझुना जग्गू को देना जब इनकारा गया तब उसके मन में यही विचार आया। 'झुनझुना केवल नन्हे के लिए है' यह तत्त्व उसे बिलकुल नामंजूर था। चांदीका झुनझुना एक अच्छी चीज है और वह कोई भी ले सकता है। यही उसका इस संबंध में मत था और वैसा तो वह स्वयं छोटा था, विश्वनाथ से छोटा था, जाह्नवी से छोटा था, चंद्रिका से भी छोटा था। अगर वे झुनझुना न बजाएँ तो कुछ हर्ज नहीं; लेकिन उसे वह मिलना बिलकुल उचित है ऐसा निश्चित रुपसे उसे लगता था। फिर भी उसे वह देना नामंजूर किया गया था। वह झुनझुना प्रतिपल उसकी आँखोंके सामने आता था। लालची रघू वह खिलौना अपनी मुट्ठी में कस कर रखता था। वह बुद्धू जानता भी नहीं था कि उस खिलौने का कैसा उपयोग किया जाए। हाथ-पाँव अनजाने हिलाते-हिलाते जो कुछ आवाज निकलती थी, बस वही उस का बजाना था। यह आवाज सुनते ही जग्गू के मन को परेशानी होती और उसे लगता कि इस प्रकार का एक झुनझुना उसे मिलना अत्यंत आवश्यक है, वह उस के सुख-दुख का प्रश्न है, वही उस के न्याय-अन्याय का और इज्जत-बेइज्जती का भी सवाल है।...

एक दिन सुबह रघू झूले में नित्य जैसा झुनझुना मुट्ठी में पकड़ कर पड़ा था। उस झूले का उपयोग करना जग्गू के लिए अमान्य था। आते-जाते समय जाह्नवी उस झूलेको झुला देती थी और रघू मुँहसे 'ग ग ग र् र् ' इसी प्रकार के कुछ विचित्र शब्द निकालता था। विश्वनाथ से उसने कहा था-"मैं रसोई घर में हूँ; अपने कमरे में से जरा झूले की ओर ध्यान दीजिये।" बैठे काम करते-करते विश्वनाथ बीच में ही झूले के कमरे में झांकता और झूले को झुलाकर चला जाता। झूला झूलते ही रघू के हाथ का झुनझुना झनझनाता नहीं, हाँ एकाध बार अकस्मात वह बज उठता। लेकिन मूर्ख रघू बहुत-सा समय झुनझुना मुँह में डालकर उसका आस्वाद लेता रहता। उंगलिओंसे पेन्सिल या कोई भी चीज मुँहमें डालनेकी आदत खराब है, यह बात जग्गू को सिखायी गयी थी और रघूको वही निषिद्ध कृत्य करते इसी क्षण वह देख रहा था। झुनझुने की आवाज से अस्वस्थ बने जग्गूको इस विषय में विश्वनाथ की राय पूछनेकी इच्छा हुई। विश्वनाथको झूला झुलानेके लिए कमरेमें आते ही जग्गू उससे पूछने लगा —

"पापा, मुँहमें कुछ डालना ठीक है?"

"नहीं बेटा!"

"वह देखिए लघू झुनझुना मुँहमें डाल रहा है!"

"डालने दो। तू चुगली न करना। वह छोटा है। बड़े भाई ने छोटे भाईके संबंध में चुगलखोरी करना उचित नहीं है।"

एक अच्छे नियमके बारेमें भी विश्वनाथ ने आकस्मात् जग्गू को ही डाँटा। पलभर वह उदास बना। लेकिन इतनेमें रघू के हाथ का झुनझुना बज उठा। जग्गू के विचार एक नयी दिशा में मुड़ गये। दो-चार क्षण वह विचारमग्न दिखायी देने लगा।

उस अवधि में वह विश्वनाथ की वक्रबुद्धि भूल गया और वह क्या बोल रहा है इसका ठीक अर्थ ध्यान में आने के पहले ही वह बोल बैठा--

"पापा! मुझे एक ऐसा चाँदी का झुनझुना ले आओगे?"

"सौ बार तुम्हें बताया था कि बड़े लड़कोंको झुनझुना हाथ में नहीं लेना चाहिए! अबतक मुँहसे तोतले शब्द निकलते हैं और तुम झुनझुना माँग रहे हो! वह रघू तुझे हँसेगा!"

विश्वनाथ ने 'ना' बोल कर उसे घायल किया और उसपर अपमानका नमक छिड़क दिया तथा झूलेको झुलाकर वह अपने कमरेमें चला गया। जग्गू क्रोध से तड़प उठा। एक मिनट के लिए वह रघूके हाथके झुनझुने की ओर केवल देखता ही रहा। जग्गूके हाथ का झुनझुना बज रहा था। मुँहसे वह विचित्र शब्द निकाल रहा था। मानों वह जग्गूसे दिल्लगी कर रहा था।...

जग्गू के दिमागमें तूफ़ान उठ गया। वह वैसा ही दौड़ते रसोईघरमें घुसा। जाह्नवी वहाँ पीठ फेरकर दूध का गर्म बर्तन उतारती खड़ी थी। उसकी पीठपर दोनों हथेलियों से फटकारते जग्गू जोरसे चिल्लाया-"मुझे झुनझुना!"

जोरसे आघात होने से जाह्नवीके हाथोंका बर्तन नीचे गिरा। गर्म दूधसे उसके पाँव जल गये और वह चिल्लायी— "ओह! कैसा दुष्ट है!" और उसी क्षण





"क्या हुआ ?"—पूछते विश्वनाथ भी वहाँ आ पहुँचा।

विश्वनाथ को देखते ही जग्गू रसोई घरसे बाहर भाग गया। झूलेके कमरेमें रघू अब भी हाथ-पाँव हिला रहा था। मुँहसे वह 'गर्र्र्र' आदि अजीब स्वर निकाल रहा था और बीचमें उसके हाथका झुनझुना बज उठता था। भागते-भागते जग्गू पलभर झूलेके सामने रुका और उसने रघू के हाथका झुनझुना खींच लिया। रघूने मुट्ठी भींच ली थी। लेकिन जग्गू की शक्ति बहुत भारी थी। झुनझुना खींच लेते ही रघू चिल्ला उठा और जग्गू भागते बाहर चला गया।

रघूकी चिल्लाहट सुनते ही जाह्नवी वहाँ दौड़ आयी और उसके पीछे विश्वनाथ भी आया।

"पहले तुम्हारे पाँव को वह मलहम लगाएँगे।"—विश्वनाथ कहने लगा।

"पहले इसे देखती हूँ। क्या हुआ है इसे ?" जाह्नवी रघू को उठाते बोली। झूलेमें चिउंटी, काँटा वगैरः कुछ भी न था। रघू के शरीर पर काटने या और किसी प्रकारका चिह्न न था।



"मैं निश्चित कहता हूँ, उस जग्गू ने छेड़-छाड़ की होगी। दिन-ब-दिन दुष्ट बिगड़ चला है।"

"जरा इसे देखो न ?" रघू को सहलाते जाह्नवी बोली ! माँ का स्पर्श होते ही रघू का रोना बंद हुआ।

"पहले तुम्हारे पाँवपर मलहम लगा देंगे।"—विश्वनाथ कहने लगा—"मुझे देखने दो कितना जला है ?"

"कुछ विशेष नहीं"—जाह्नवी ने जवाब दिया—"दो-चार बूँदे ही गिर पड़ीं। भगवान्‌की मेहरबानी। थोड़ा ही पाँव जला !"

जाह्नवी बच गयी थी यह सत्य था; लेकिन उसके पाँवपर केवल दो-चार बूँदे ही तो गिर गयी थीं, "दो-चार बूँदे पड़ने से इतनी जलन नहीं होती।"

जाह्नवी के पाँवको मलहमपट्टी बाँधते विश्वनाथ बोला—"आखिर उबलते दूध का बर्तन कैसे गिर पड़ा, जाह्नवी ?"

"बर्तन हाथ से छूटा !"—जाह्नवीने सारांश में जवाब दिया। वह अधिक स्पष्टीकरण देना न चाहती थी। उसका उसे डर था। आजकल विश्वनाथ जग्गू पर विशेष क्रोध प्रकट करता था। मन चाहे तब बहुत लाड़ करना, नहीं तो चाहे-जितना कठोर बनना-विश्वनाथ का स्वभाव ही था।

जाह्नवी आँख में तेल ऊँडेलना न चाहती थी। जग्गू का अपराध वह जानती थी। अपना गुनाह जानकर ही जग्गू भाग गया है, यह भी वह जानती थी। जग्गू के सम्बंध में वह चिंतित थी। इसलिए विश्वनाथ से वह बोली—"जरा जग्गू को ढूँढ लाना चाहिए।"

"कहाँ जाएगा ? होगा बाहर ही कहीं भटकता। तुम पहले सो जाओ !"

"मैं लेटती हूँ। लेकिन आप उसे जरा ढूँढ तो आइए"

"अच्छा-अच्छा !" विश्वनाथ गुर्राया और उसका ध्यान रघू की रिक्त मुट्ठी की ओर गया। अचंभे से वह बोला—"रघू के हाथ का झुनझुना है कहाँ ? झूले में तो नहीं पड़ा ?"

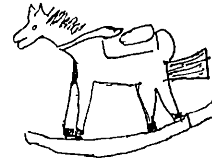
झूलेमें झुनझुना नहीं था। विश्वनाथ की मुद्रा पलभर विचारमग्न हुई और वह बोला—"मैं बताऊँ तुझे ? यह तो है उस जग्गूकी कार्रवाई ! उसने ही नन्हे के हाथ का झुनझुना उठाया है। वह मेरे पास माँग रहा था अभी-अभी।"

जाह्नवी चुप रह गयी। उसे जग्गूकी पुकार याद आयी—"मुझे झुनझुना !"

उसकी ओर देखते विश्वनाथ बोला—"जाह्नवी, अब मुझे बताओ, क्या दूध का बर्तन सचमुच तुम्हारे हाथों से अनजाने ही खिसक पड़ा था ?"

"पहले आप जग्गूको ढूँढ ले आइए और सुनिये, उसे व्यर्थ मारपीट न करना !"

"व्यर्थ ?" बाहर जाते-जाते विश्वनाथ बोला।



विश्वनाथ पीछे आकर खड़ा हुआ तब जग्गूने गढ़े में भी मिट्टी डालनेका काम पूरा किया था। उसके शरीर पर मिट्टी फैली थी और उसके हाथ में बित्ताभर लम्बा जंग-चढ़ा कीला था। विश्वनाथने उसकी बाँह पकड़कर उसे खड़ा किया और उससे पूछा—"नन्हेका झुनझुना कहाँ है ?"

जग्गूने कुछ भी जवाब न दिया। जवाब देने की जरूरत भी न थी। विश्वनाथने बाँह पकड़कर उसे खड़ा करते ही झुनझुने के घुँघरू गिर पड़े। और उसकी दृष्टि मिट्टीडाले हुए गढ़ेपर गड़ गयी। विश्वनाथने पाँवसे ही मिट्टी निकाली और पाँवसे ही वह गाड़ा हुआ झुनझुना उठाया।

"दुष्ट कहीं का ! क्या चोरी करना भी तू सीख गया ?"—जग्गू की पीठपर निर्दयतासे धमाके देते उसे घर में लाया गया। धमाके की आवाज सुनते ही जाह्नवी दरवाजे तक दौड़ आयी और गिड़गिड़ाकर कहने लगी—"सुनिये न ! आप उसे न मारिये !"

"तो क्या करूँ ?" मिट्टीसे भरा झुनझुना जाह्नवीको दिखाते विश्वनाथ बोला—"यह देखो अपने कुलदीपक की कार्रवाई !"

"उसकी तो भूल हुई इसमें शक नहीं। लेकिन आप उसे न पीटिये। चाहे जो हो वह छोटा ही है अबतक।"

लेकिन इतनी छोटी उमर में अगर वह चोरी करना सीखे, तो आगे चलकर वह क्या करेगा ? जरा सोचो तो सही।"

"भविष्यकाल किसने देखा है ! लेकिन अब उसे छोड़ दीजिए न।"

माँ अपना पक्ष ले रही है यह जग्गूके ध्यानमें तुरन्त आया। विश्वनाथ ने उसकी कलाई पकड़ रखी थी और वह स्पर्श उसे असह्य था। उन्हें बातचीत में मग्न





दीपावली शुभचिंतन

अनुक्रमणिका

देखते ही जग्गूने विश्वनाथ का हाथ जोरसे झटका और वह दौड़कर अपनी माँ से लिपट गया। उसके इस कृत्यसे विश्वनाथका गुस्सा और बढ़ा। उसने फिर उसकी कलाई पकड़ कर उसे जाह्नवी से खींच लिया। जब जाह्नवी फिर उसके लिए विश्वनाथ का अनुनय करने लगी तब वह बोला—" तुम व्यर्थ उसे उसकाने का काम मत करो। इस बर्तावसे बच्चे बिगड़ते हैं। आज तो उसे सजा होनी ही चाहिए।"

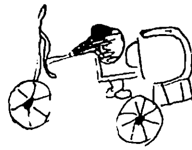
जाह्नवी के पाँव में दर्द था और जग्गू के बर्ताव से भी उसे वेदना हो रही थी। अब विश्वनाथके जिद्दी स्वभाव से उसका जी और ऊब उठा। वह जग्गूको दूर धकेलते बोली–" आखिर वह आपका ही बेटा है। दिल चाहे वह कर लीजिये। लेकिन सुन लीजिए, इस प्रकारकी मारपीट से बेटा बेहया बनेगा।"

उसकी यह बात सुनते ही विश्वनाथ जरा-सा दब गया और जग्गू को पीटने के लिए उठाये हाथसे उसने जग्गू को उठाया और बगलके ऊँचे कबाट पर रख दिया।

" आज यही इसकी सज़ा "–वह आगे बोला–" मेरे कहने के सिवा उसे यहाँसे न उतारना!"

ऊँचे कबाट पर बैठने की यह सज़ा जग्गू को मारपीट से भी भयानक जँची। उसकी आँखे घूमने लगीं! पेट में गोले आने लगे। वहाँ बगल में दूसरा सामान भी था इसलिए वह जरा सरक भी नहीं सकता था। डर के मारे यह छौनी चिड़िया के जैसा बैठा रहा। उसी समय रघू जाह्नवी के सामने था और हाथका झुनझुना हिलाकर किलकारते 'गरर्र' आदि स्वर निकाल रहा था। मानों अब इसी क्षण वह जग्गू को ढूँढ़ रहा था और मुँह बना रहा था!

पलंगपर लेटे–लेटे जाह्नवी जग्गू की ओर देख रही थी और रघू को सहलाती थी। उसका शरीर अस्वस्थ था और मन शरीर से भी अधिक अस्वस्थ। रघू को उसने अपने पास लिया था फिर भी जग्गू के लिए उस का दिल बेहाल हो रहा था। उसे उतारकर गले लगाने की उसे बारबार इच्छा हो रही थी। लेकिन उसे कुछ सज़ा मिलनी आवश्यक है यह भी वह जानती थी। जग्गूने आज एक के बाद एक अपराध किये थे। उनका स्वरूप भी कुछ मामूली न था। गत कई दिनोंसे वह इसी प्रकारका बर्ताव कर रहा था। जाह्नवी को तो वह मानता भी न था। वह डरता था केवल मारपीट से। और, बेटेपर हाथ उठानेका काम तो जाह्नवी अपनी शक्ति के बाहर का मानती थी।



विश्वनाथका तो वह काम सहज स्वभाव बनता जाता था और उसका असर भी कुछ खराब ही हो रहा था। जाह्नवी का जी व्याकुल हो रहा था। पिता द्वारा उचित कारण के लिए बेटे को दी गयी सज़ा के बाद, माँ को बेटेका पक्ष लेना ठीक नहीं यह भी उसे ज्ञात था पर जग्गूके कष्ट भी उससे देखे न जाते थे। अगर जग्गू उस ऊँची जगह से गिर पड़ा, तो? यदि उसके हाथ–पाँव टूटे तो? वहाँ उसे कुछ चुभे तो?... आशंकाओंसे जाह्नवी का मन तड़प रहा था। लेकिन विश्वनाथ का हृदय पिघलता न था। जग्गू को किस प्रकार छुड़ाया जाए यह जाह्नवी के ध्यानमें आता न था।

इतनेमें चंद्रिका दरवाजे की चौखट पर से पुकारती अंदर आयी–" अरी कैसी है तबियत? कहाँ जला तुम्हारा पाँव ? देखने तो दो?"

चंद्रिका जाह्नवी का पाँव देखकर बोली,– " काफी जल चुका है! भगवानकी कृपा, अधिक कुछ न हुआ। पर दूध कैसे गिरा?..."

" गिरा आपके भतीजे की मेहरबानीसे!" उसी समय अंदर आते-आते विश्वनाथ बोला– " मतलब?" इन शब्दोंका अर्थ चंद्रिका पलभर समझ न पायी। बादमें उसने पूछा,– " अरी, जग्गू कहाँ है?"

जाह्नवी की आँखों में आँसू छलक गये और दृष्टि सहसा अलमारी की ओर चली गयी। इतनेमें डाकिये की पुकार सुन विश्वनाथ बाहर चला गया और चंद्रिका अलमारीके सामने जा खड़ी हुई। अपने दोनों हाथ ऊपर फैलाकर वह बोली—" यह क्या रे? ऊपर क्यों बैठा है, बंदर जैसा? चल उतर नीचे!"

जग्गू कुछ नहीं बोला। वह जरा हिलातक नहीं। उसका चेहरा लाल–सुर्ख हो रहा था। उसकी यह सूरत देख चंद्रिका पूछने लगी—" अरी जाह्नवी, जग्गू ऊपर क्यों बैठा है!"

" उसे वहाँ बिठाया गया है।" जाह्नवी के स्वर में उद्वेग था।

" किसने बिठाया?"

" और कौन? 'इन्होंने' ही बिठाया है!"

" विश्वनाथजी ने?" एक सयाने आदमीने एक अबोध बालक को इस प्रकार ऊपर बिठा देने की बात सोचना भी चंद्रिका के लिए नामुमकिन था। उसने गुस्से में आकर पूछा–" एक अबोध बच्चे को वहाँ कौन बिठा सकता है।"

" अनुशासन–प्रिय पुरुष ही बिठा सकते हैं? और कौन।" जाह्नवी ने रूखे स्वर में उत्तर दिया।

चंद्रिका के मुख से कुछ निषेधात्मक स्वर निकले और उसने हाथ हिलाकर जग्गूसे कहा —" बेटा, आओ नीचे!"

चंद्रिका के स्वर का प्रेम और उसका जी का तड़पना जग्गू जान चुका था। वह बोला– " मधमासी, मैं इधलही बैथूँगा!"

" सो क्यों?" चंद्रिका ने तड़प कर पूछा।

" नहीं... मधुमासी, मैं इधलही बैथता हूँ"–अधिक स्पष्टीकरण देनेकी झंझट में न पड़कर जग्गू ने ऐसा कहा था। इतने में हाथ में टेलीग्राम लेकर विश्वनाथ भीतर आया और बोला–" तारा मौसी के बेटा हुआ!"

चंद्रिका उदास स्वर में बोली–" च् च... बेचारीको बेटा क्यों हुआ?...? उसे भी उसके मालिक इसी तरह अलमारीपर बिठाएंगे न!"

" तुम्हें इतना गुस्सा क्यों आया बड़ी मौसी?"

" गुस्सा न करूँ? इस छोटे बच्चेकी क्या दुर्दशा कर रखी है आपने?"

अनुक्रमणिका





"अरी बरी ! मैं ने उसे सज़ा दी है !"

"लेकिन क्यों ?"

"उसपर, आग लगाने और चोरी करने के दो भयानक अपराध लगाये गये हैं। समझी न मधुमासी ?"

"बचपन में सभी चोरी करते हैं। आप अपना बचपन जरा याद कीजियेगा।"

'बचपन में मैं गधे जैसा बर्ताव करता था तो क्या मैं अपने बेटे को भी उसी प्रकार का बर्ताव करने दूँ।"

"मैं केवल बचपन के गधे जैसे बर्ताव के बारे में बोल नहीं रही हूँ ?"

"तो क्या प्रौढावस्था के गधे जैसे बर्ताव के बारेमें बोल रही हैं।"

चंद्रिका झट शरमा गयी और फिर हँसते हँसते बोली–"ना ... ना, माफ कीजिएगा। वह मैं कैसे बोल सकूँगी ? खैर, मेरा कहना केवल यही है कि अगर जग्गूकी सज़ा आप तुरन्त माफ न करें तो इस घर में पलभर भी न रुकूँगी, यहाँ सचमुच आज रात नै रहूँगी।"

"चोरी तथा आग लगाने के अपराध का समर्थन करने के लिए तुम्हारे जैसी वकील मिलने पर हम क्या बोलेंगे ? छोड़ो इन बातों को ! तुम्हें जो कुछ करना है, कर लो।" विश्वनाथ बोला।

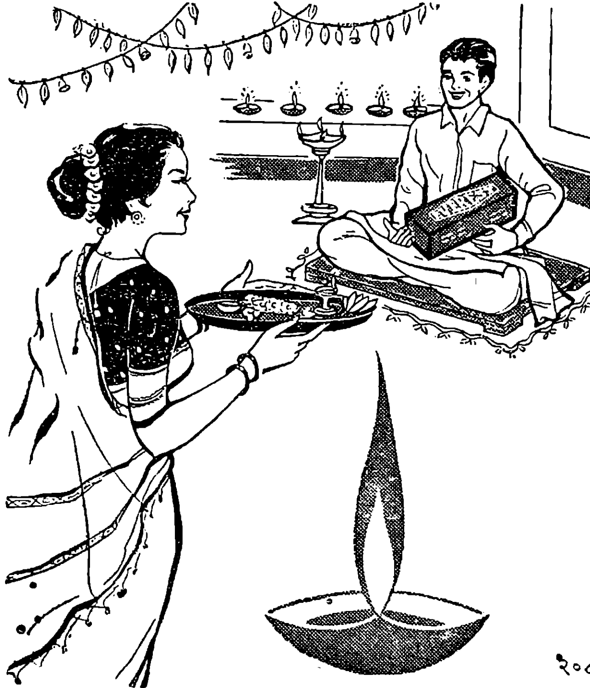
चंद्रिका जग्गू की ओर मुड़ी और बोली–"ऐ चोर, चल उतर नीचे !" लेकिन जग्गू कुछ भी नहीं बोला। रघू जाह्नवी के बगल में था। उसका हाथ उसके शरीरपर था और जग्गू उसकी ओर देखता था। चंद्रिका ने उसके लिए जो कुछ किया था उसके लिए वह कृतज्ञ था, लेकिन उसके हाथों से नीचे उतरने को वह तैयार नहीं था। उसकी दृष्टि जाह्नवी की ओर थी।

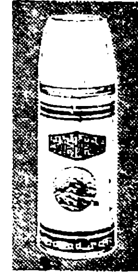
"चलो बेटा ! उतरते हो न !"–चंद्रिका बोली। लेकिन जग्गूने मुँहसे न एक शब्द निकाला न वह अपनी जगह से हिला। दूसरे किसी अवसर पर वह अपनी मधुमौसी को जवाब दे देता। लेकिन अपने पिताजी के सामने अपना मुँह तक खोलने की भी उसकी इच्छा न थी। उसका हट देखकर विश्वनाथ के चेहरे का रंग पलटा और वह फिर बोला—"देखो कैसा उद्धत है ! तुम्हें जवाब भी देने को तैयार नहीं है। शैतान कहीं का !"

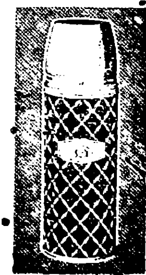
"विश्वनाथ बाबू, उत्तर देने की आवश्यकता ही क्या है ?"–चंद्रिका बोली–"उसके मौन से ही, उसे जो कुछ कहना है वह मैं जान चुकी। वह चाहता है कि जाह्नवी उसे उठा ले।"

"लेकिन क्यों ?" विश्वनाथ ने ऊँचे स्वर में पूछा।–"क्या तुम उसकी कोई भी नहीं ? इस बर्ताव से क्या तुम्हारा अपमान नहीं होता ? अब बताओ, उसे इस बर्ताव के लिए सज़ा करनी चाहिए या नहीं ?"

चंद्रिका बोली –– "जो कुछ करना है, वह हम करेंगे। अब कृपा कर के आप यहाँसे जाइए। बेचारा आपसे डरता है।"











अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

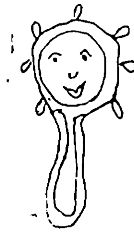
" इससे बच्चे इतराते हैं ! " ऐसे ही कुछ कुड़बुड़ाते विश्वनाथ चला गया और उसके बाद सामने आयी हुई जाह्नवी ने जग्गूको गले लगाया। वह उसे इतना चिपक गया कि प्रयत्न करनेपर भी वह उसे छोड़ने को तैयार न था।

दिनभर जाह्नवी के पलंगपर ही जग्गू का पड़ाव था। अपना भोजन आदि भी उसने वहीं कर लिया। चंद्रिका घर का कामकाज देखती रही और जग्गू जितना हो सके उतना अपना काम जाह्नवी से करवा लेता था! जाह्नवी को रघु का जो काम करते उसने देखा था वह सबकुछ अपने लिए अब जाह्नवी से करवा ले रहा था। चंद्रिका एक–दो बार उससे बोली भी – " जग्गू बेटा ! माँ की तबियत ठीक नहीं है न ? तो क्यों उसे इस प्रकार परेशान करते हो ? "

लेकिन 'परेशान करते हो' ये शब्द जग्गूको जरा भी उचित न लगे। इस विषयमें वह चंद्रिका की बात सुनने तक को तैयार न था। जाह्नवी की तबियत ठीक नहीं है, यह बात तो सही है। लेकिन जब तबियतके कारण उसने रघूको नहीं हटाया, तबतक जग्गू के लिए अलग नियम निकालने का क्या कारण ?...

जाह्नवी के पैर में दर्द था और इसीसे उसे जरा बुखार भी आया था। यह होते हुए भी उसने जग्गू को अपने पाँव पर लेकर उसे तेल लगाया, उसे स्नान कराया, उसे खिलाया और उसे सहलाकर जाह्नवीने गाना भी गाया। वह जितना कर सके उतना उसने प्यार किया। जग्गूकी जब एक के बाद एक माँग पूरी होने लगी तब उसकी माँगें बढ़ने लगीं। उसे लगता था कि इस प्रकार माँग प्रस्तुत करना उसका अधिकार ही है। इतने दिनों का प्यार वह आज सूद के साथ वसूल करने लगा था। अंतमें उसने एक विचित्र हठ आरंभ किया। वह हठ करने लगा–" रघूको जिस प्रकार तुम आँचल में रखती हो, उसी प्रकार मुझे भी आँचल में रखो ! "

अब विश्वनाथ से यह सहा नहीं गया। जग्गूका तमाशा वह इतने समय तक देख रहा था। जग्गू अपनी माँ को छल रहा है और वह भी उसे दबाने के बजाय उसे स्वच्छंद बर्ताव करने देती है, यह उसे उचित न लगा। और विशेषकर आज उसकी तबियत भी ठीक नहीं थी। इस दुष्ट की परेशानी से अगर तबियत अधिक बिगड़ गयी तो ? अब यह कुलकलंक चरम सीमा तक जा पहुँचा है। यह चार सालका निर्लज्ज अपनी माँ के आँचल के लिए हट कर रहा है। विश्वनाथ की सहनशीलता अब नष्ट हुई। वह दनदनाते भीतर आया और बोला—" देखा न ? अपने सुपुत्र का यह हट भी पूरा करोगी ? "



विश्वनाथ को अब अपनी पत्नी पर भी क्रोध आया। विश्वनाथ का ऊँचा स्वर सुनकर चंद्रिका दौड़ आयी और बोली— " अब की बार क्या हुआ जी ? "

" पूछिए अपनी बहन से ! नहीं तो इस कुलदीपक से ! "

" पूछनेकी जरूरत ही नहीं जी। मैं सुन चुकी हूँ सब कुछ। जग्गू जो कुछ माँग रहा है वह उसकी उम्र के बच्चे माँगते हैं कभी–कभी। "

" अरी जाह्नवी ! क्या तुम्हारा भी यही मत है ? " विश्वनाथ जाह्नवी की ओर मुड़कर पूछने लगा इस प्रश्न का उत्तर जाह्नवी को सूझता नहीं था और उसका उत्तर सुनने की स्थिति में विश्वनाथ नहीं था। अगर सच कहें तो जग्गू दुनिया से कोई अनोखी चीज थोड़े ही माँग रहा था। आखिर वह भी उसीका बेटा था न ? क्या उसे कभी उसने आँचल नहीं दिया था ? जग्गू की माँग सुनकर जाह्नवी के मन में क्रोध नहीं हुआ था। उसका हृदय वत्सलता तथा करुणा से भर आया और उसकी आँखोंमें आँसू चमकने लगे। लेकिन मुँहसे एक शब्द भी न निकला। उसकी चुप्पी का उलटा ही अर्थ लगाकर विश्वनाथ बोला—

" अब क्यों रोती हो ? चाहे जो करो। बीमार हो जाओ...मर जाओ !... "

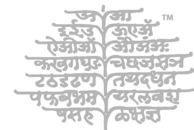
आँखों से आँसू बहाते चंद्रिका बोली– " क्यों व्यर्थ अशुभ बोल रहे हैं आप, उसे जो कुछ तकलीफ हो रही है, क्या उसे कम मानकर आप यह बोल रहे हैं ? "

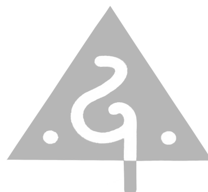
" अच्छा, तो मैं यहाँसे चला जाता हूँ। " विश्वनाथ झट बोला और जाते–जाते दरवाजे-पर पल भर रुककर बोला—" लेकिन ध्यानमें रखो, इसका नतीजा कुछ ठीक न होगा ! "

अपने पतिको क्रोध आया है और उसे दुख हुआ है यह जाह्नवी के ध्यान में आया। वह जो कुछ कह रहा था वह जाह्नवी के प्यार से ही कह रहा था। उसकी तबियत के बारेमें वह चिंतित था। वैसे तो विश्वनाथ सचमुच बड़ा दिलेर था। हाँ, आदतन् वह जरा-सा जिद्दी और जल्दबाजी–पसंद था... " लेकिन मैं कहती हूँ, वह दुष्ट इतना... " जाह्नवी ने जग्गू की ओर देखा, बंदर के पिल्ले जैसा वह उसे चिपककर बैठा था। पिताजी के सामने जिद करके उसने माँका आश्रय लिया था और उसने उसे दिया था। क्या सचमुच उसका यह बर्ताव उचित था ?... "

" चल हट, यहाँसे ! दुष्ट कहीं का ! तुझे जरा भी दया नहीं ! " चिपककर बैठे जग्गू को दूर ढकेलते जाह्नवी बोली। वह केवल आँखें फाड़कर उसकी ओर देखता रहा। अकस्मात् यह क्या हुआ उसके ध्यानमें न आया। अभी–अभी उसकी माँ उसका पक्ष लेकर पिताजी के साथ झगड़ रही थी और इतने में वह कठोर बनकर उसे ढकेल रही थी। ऐसा कौन-सा अपराध उसने किया था ? पिताजी की मारपीट वह सह सकता था लेकिन माँ का ढकेलना उसे बिलकुल असह्य हुआ। माँ ने उसे ढकेल दिया और रघू को अपने पास लेकर उसने करवट बदल ली। इतराते हुए उसके मन में फिर अंधेरा छाने लगा। उसका मन भीतर ही भीतर [illegible]ा, आक्रंदन करने लगा।

रात को सोने के समय तक जग्गू ने अपनी माँका पीछा न छोड़ा। वह उसके





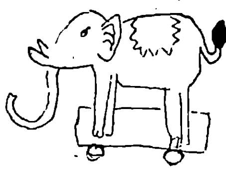
पलंगपर बैठा रहा और जब ऊब जाता तब वहीं लेट जाता। माँका मुँह बारबार अपनी और खींचनेका उसका काम भी जारी था। पूरी दुपहर उसने अपनी माँ को विश्राम न लेने दिया। वह मानो पागल बना था। शामको विश्वनाथ ने तापमापक यंत्र जाह्नवी को लगाकर देखा तो ज्वर अधिक चढ़ गया था। उसका चेहरा चिंताग्रस्त हुआ और वह उद्वेगसे बोला,-" चंद्रिका मौसी, देखो न आपकी बहन का ज्वर बढ़ता जाता है।"

" क्या कहा ! कितना है "-चंद्रिका हाथ पोंछते बाहर आकर पूछने लगी।

" सौ है ! लेकिन दिनभर सोचता था, वैसा ही अगर चलता रहे तो ज्वर और भी चढ़ेगा। शायद पैर की जख्म भी विषैली बनेगी।"

" जख्म विषैली बनेगी ?" चंद्रिकाने साँस रोक कर पूछा।

" क्यों नहीं ?" विश्वनाथ ने उपरोध भरे स्वर में पूछा — " पैर तो जला है, अब जख्म के विषैला बनने में क्यों देरी होगी ? तुम मौसी, वह उसकी माँ और यह कुलदीपक ! लेकिन मुझसे रहा नहीं जाता इसलिए कहता हूँ, कम-से-कम आज रात तो इस कुलदीपक को अलग सुलाओ। वह मेरे पास नहीं सोएगा, कारण मैं उसका दुश्मन हूँ। अपनी प्यारी मौसी के साथ सोने में तो हर्ज नहीं है ?"



विश्वनाथ की बातें सुन कर चंद्रिका शरमा गयी। सचमुच जग्गूने दिनभर जाह्नवी को जरा भी आराम न पाने दिया। और अब उसका बुखार चढ़ रहा था ! जग्गू का पक्ष लेने में भारी हिस्सा चंद्रिका का था। लेकिन आज रात को जग्गू को जाह्नवी के पास सोने देना सचमुच उचित नहीं था। इस विषय में उसका हठ निभाये रहने का नतीजा बुरा निकलता। लेकिन जग्गू तो यही कर रहा था; यह उसका बहुत दिनों का हठ था। रघु के जन्मसे ही वह इसलिए झगड रहा था। पिताजी की सब बातें जग्गू ने बड़े ध्यान से सुनी थीं। उसने यह भी देखा था कि जाह्नवी और चंद्रिका दोनों चुप रही थीं। उसका पक्ष किसी ने भी नहीं लिया। मतलब वह अब फिर एक बार अकेला ही रह गया और रघु अपनी माँ के पास सोनेवाला था— यही उनका निर्णय था। और यह निर्णय मंजूर करने के सिवा अन्य मार्ग ही न था। चंद्रिका के पलंग के पास ही छोटा पलंग डालकर वे सब उसे उसपर सुलानेवाले थे।

अंततः उसे वहीं सोना पड़ा। सर्वत्र शांति थी। पड़ोस के कमरेसे उन दुष्टों के खर्राटों का स्वर सुनायी देता था। चंद्रिका ने बारबार जग्गू को अपने पास लेने की कोशिश की, उसे गाना सुनाया, कहानी सुनायी, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ। कठपुतली जैसा वह अपने पलंगपर लेटा रहा। अंतमें उसे सुलाने की कोशिश करते-करते चंद्रिका स्वयं सो गयी। दिन भरके कष्ट से वह थक गयी थी। सोने से पहले चंद्रिका ने जाह्नवी के पास ही में रघुके लिए दूध की बोतल रखी। रघु मध्यरात्रि को दूध पिया करता। सोने के पहले उसी बोतल से रघुको दूध पिलाया था। कितने प्यार से वह उसे दूध पिला रही थी ! और वह बोतल भी कैसी सुंदर थी ! यह बोतल भी उसे बहुत पसंद थी। कई दिनोंसे उसका मन उस बोतल पर लुब्ध हुआ था। अपने लिए उसने इस प्रकारकी एक बोतल बार-बार माँगी भी थी। और उसकी माँग निषेध वाक्य के साथ ठुकरा दी गयी थी। दूध की बोतल माँग ली इसके लिए सब लोग उसको हँसे थे, गुस्से में आये थे और उसे 'तुम अब छोटे नहीं हो' यह हमेशा का तंग करनेवाला और क्रोधजनक वाक्य बताया गया था।

रघु ने बार-बार अपनी दूधवाली बोतलें फोड़ डाली थीं और बारबार उसे नयी बोतल दी गयी थी। जग्गूको एक भी बोतल नहीं दी गयी थी। उसपर अन्यायका ढेर लादा गया था। इस रघुके जन्म-दिन से जग्गूकी दुर्दशा शुरू हुई थी। रघु इस संसार में आया और जग्गू माँ के प्यार से वंचित हुआ। उसके पिताजी उस दिन से उसपर बार-बार हाथ उठाने लगे थे। वह काले रंग का है यह बात उसे तबसे बार-बार जतायी जाने लगी। रघुका जन्म हुआ और उसने जग्गू को लूटना शुरू किया।

नये खिलौने नित्य उसे मिले, रेशम के कपड़े उसे ही मिले, चिड़िया या झूला सब कुछ उसे मिला, झुनझुना भी उसे ही मिला, दूध की वे बोतलें वे भी उसे ही मिलीं। इतना ही नहीं तो माँका प्यार और गोद इन दोनों का वह अकेला ही हकदार बन बैठा। धीरे-धीरे त्रिभुवन व्याप्त करने वाले वामन जैसा रघु जग्गू का जगत् नापने लगा। उस का हर अपराध माफ था। वह मनचाहे जैसा किलकारता, खिलौने तोड़ता, बोतलें फोड़ता, मुँहमें उंगलियाँ डालता कपड़े गंदे करता और दंत विहीन मुख खोलकर जग्गू को हँसता। 'वह तुझे हँसेगा। कल बड़ा होते ही वह तुझसे बराबरी के नाते झगड़ा करेगा' यह आशीर्वाद तो घरके प्रौढ़ जग्गू को नित्य देते आये थे।... अब रघु को क्या मिलने का रहा था और जग्गू का क्या बच गया था ? रघु को इतनी मार कभी मिली न थी। वह केवल जग्गू के हिस्से में आ जाता। आज के अनर्थ का कारण यह रघु ही था। रघु का जन्म हुआ और उस दिनसे जग्गू के कष्ट शुरु हुये। तब से उस के सुख के दिन समाप्त हुए !...और उसे छलने वाला रघु अब इसी क्षण माँ की बगल में बिलकुल शांत सो गया था; और माँ से विलग हुआ जग्गू...बेचारा जग्गू...यहाँ इतना दूर... अकेला.....

मधुमौसी के हाथ के नीचे से जग्गू जरा-सा खिसक गया। मधुमौसी गहरी नींद में थी। घड़ी किटकिटा रही थी। बगलवाले कमरे से न रुकने वाले घर्राटों का स्वर सुनायी देता था। जाह्नवी भी सो चुकी थी। नींदमें एकाध बार उसके होंठ हिलते थे लेकिन वह गहरी नींद में थी। और उसकी बगल में दोनों मुट्ठियाँ मींच कर शांत सो गया था वह रघु...!

जग्गू का खून उबलने लगा। वह धीरे-से पलंग के नीचे उतरा और पाँव के बलुए पर चलते जाह्नवी के पलंग के पास गया। पलंग के पास ही स्टूलपर वह दूध की बोतल थी। उसने एकबार जाह्नवी की ओर देखा, उसके-





बाद रघुकी ओर देखा और बादमें दूध की बोतल उठाकर उसने अपने मुँह को लगायी। भला, चोरी करके ही सही लेकिन वह एकबार उस बोतल को मुँह लगा सका था। रघु की उस वस्तुका उसने उपयोग किया था। रघु बिलकुल शांतिसे सो गया था। वह माँ की बगल में नींद ले रहा था। वह माँ के पलंगपर था। वह माँके बिछौनेपर लेटा था। और...जग्गू...बेचारा जग्गू एकाध अनाथ जैसा, किसी चोर जैसा यहाँ......

इतने दिनोंका अन्याय, इतने समय का अपमान, इतने काल का छलना जग्गू के मन में खौल उठे। इस परेशानीका कारण वह था...वही रघु! और वह अब, इस क्षण बिलकुल मजे में माँ के पास सो गया था...

जग्गू झट आगे बढ़ा और सोये हुए रघुको पकड़कर उसने उसे आवेग से खींच लिया। जग्गू अपना स्थान खाली करा लेना चाहता था। वह माँके बगल से रघु को खींचकर निकालना चाहता था। जग्गूने रघुको एक बार झटका, तुरन्त दुसरी बार झटका, और उसी क्षण रघु चिल्लाते-रोते धम् करते जमीन पर गिर पड़ा।

जाह्नवी छटपटाती उठ खड़ी हुई और उसने दिया जलाया। चंद्रिका चिल्लायी– "क्या हुआ?"

'जाह्नवी' जोरसे पुकारते विश्वनाथ दौड़ आया। जमीनपर गिरा रघु जोरसे बिलख रहा था और स्तिमित हुआ जग्गू पास ही खड़ा था।

"मैं बताता हूँ, इस दुष्टने – इस कुल कलंक ने उसे ढकेल दिया है!"...विश्वनाथ जग्गू की गरदन पकड़कर जोरसे हिलाते चिल्लाया।

हॅण्डस् अप्!!



जग्गू ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसके काले-कलूटे चेहरेपर उसका अपराध स्पष्ट लिखा था। जाह्नवी ने रघुको उठा लिया। वह अबतक बिलख रहा था। उसका सर पिचक गया था और उसका एक हाथ लचक गया था। जाह्नवी का जी तड़प उठा था। वह रघु पर प्यार की वर्षा कर रही थी, उसे चूम रही थी और कई प्रकार से उसे रिझा रही थी। विश्वनाथ, चन्द्रिका, जाह्नवी हर कोई नन्हे को देखने में मग्न थे कि उसे क्या हुआ है, कहाँ चोट लगी है इसी के बारे में वे सभी चिंतित थीं। और, यह सब देखता जग्गू अकेला ही खड़ा था। फिर वही बेचारा तो अपराधी था, पराभव उसीका हुआ था। हर एक का मन रघु में लीन था। हर कोई उसे निहार कर ज़ख्म ढूँढ रहा था। जग्गू की भयानक घायलता किसी को भी दिखायी न देती थी। उसकी माँ भी अपवाद न थी। वह भी पूर्णतया रघु के लिए चिंतित हो उठी थी। वह उसे झुमा रही थी, डुला रही थी, उसके कानोंमें आवाज कर रही थी। धीरे-धीरे रघुका रोना बंद हुआ। इतना ही नहीं तो वह बावला धीरे-धीरे अपना दंत विहीन मुख खोलकर हँसने भी लगा तब जाह्नवी बोली—

'मेरा पगला नन्हा! चंद्रा, जरा दूध की बोतल तो देना! उसे थोड़ा दूध पिलाऊँगी।'

चंद्रिका ने स्टूलपर की बोतल उठायी और वह अपनी आँखोंपर विश्वास न रख सकी। बोतल पूरी की पूरी खाली थी। उसने अपने हाथोंसे सोनेके पहले वह बोतल भरके रखी थी। दूधकी आखिरी बूँद भी वह उसी बोतल में डाल चुकी थी और अब वह बोतल सारी-की-सारी खाली थी। उसने बोतल दियेके प्रकाश में उठाकर देखी! लेकिन दूध का नाम नहीं। एक बूँद भी बोतल में बचा न था।

"दीदी!"–चंद्रिका बोली, "इस बोतल में तो बूँद भर भी दूध नहीं। क्या तुमने नन्हे को पिलाया नहीं?"

"नहीं री!"

"सोने के समय मैंने स्वयं अपने हाथोंसे से भर रखी थी बोतल!"

"अरी, तो एक बोतल भर दूध कहाँ चला गया?"

"मैं बताऊँ? मैं बताता हूँ, वह दूध कहाँ गया सो!" विश्वनाथ क्रोधसे लाल होकर बोला–"चोरने दूध पी लिया होगा। ले लो, और भी उसका पक्ष ले लो! अंतमें वह रघु को एक दिन मार डालेगा।"



जो पूरी जिंदगीमें जाह्नवी ने नहीं किया था वह उसने अब किया। कोने में खड़े जग्गू को उसने घसीटकर खींच लिया और सामने खड़ा करके एक के बाद एक तमाचे दे दिये। मारते-मारते वह चीख पड़ी–"अरे नीच, क्यों दुश्मनी करते हो उससे? क्या उसे मारनेका विचार है? बोल... कुलकलंक, दुष्ट, पापी कहीं का।" एकदम पागल-सी होकर जाह्नवी जग्गू को पीटती रही। उसकी आँखों से आँसू झरते रहे। एक ओर वह उसे पीटती थी दूसरी ओर वह स्वयं रोती थी। जग्गू वे सारे प्रहार चुप्पी से सह रहा था। वह न रोता था, न चिल्लाता था। बस! यही अंतिम घटना हुई! आज उसकी माँ भी उस के विरुद्ध हो गयी। वह भी उसे निर्दयता से पीट रही थी। अब गँवाने जैसा कुछ शेष न था!...रोने जैसा भी कुछ बाकी न था!...

जाह्नवी ने जग्गू को इतना पीटा कि वह मारते-मारते स्वयं बेहोश हो गयी। जब वह होश में आयी, तब सब से पहले विश्वनाथ के शब्द उस के कान पर आये–"इस दुष्ट को मैं अब कुँए में डूबा देनेवाला हूँ। नहीं तो यह नीच किसी का खून करेगा। दो हत्याओं के बदले एक हत्या होना अच्छा।"

जाह्नवी कुछ न बोली। उसने फिर आँखें मूँद लीं। उसकी आँखो के छोर भीगे थे। विश्वनाथ केवल कहकर न रहा। कु[illegible]ते ही उसने सचमुच जग्गू को उठाया और बोला–"चल दुष्ट! पिछवाड़े के कुँए में डुबाता हूँ।"

अनुक्रमणिका



दो कविताएँ —

—उदयभान मिश्र

आँखें

आँखें उगती हैं
काफी के प्यालों पर !
चमकती हैं
हवा में
इन्द्र धनु की तरह !
आँखें झुकती हैं !
आँखें उठती हैं ।
आँखें ...
आँखों में फलती हैं !



नंगा दर्द

बुरा मान गये
मेरी बात का ! (?)
तुम्हें भी दर्द होता है
आघात का ? (!)
छिः छिः
उठो, चलो,
मुँह हाथ धोवो,
खाना खावो !
(और ड्राइवर ! सुनो,
जाओ बाबू को घुमा लाओ)
जाओ ...
मन बहला आओ !

जाह्नवी अब भी कुछ न बोली। उसकी आँखोंसे धीमे-धीमे आँसू बह रहे थे। विश्वनाथ जग्गू को लेकर जब सचमुच पिछवाड़े जाने निकला तब चंद्रिका उसके सामने अपना पल्ला फैलाती बोली, –

" विश्वनाथजी, मैं आपके साभने पल्ला फैलाती हूँ। अगर आप जग्गू को चाहते नहीं है तो मुझे दे डालिये उसे। मैं उसे लेकर चलती हूँ। "

" चलो, ले जाओ ! उठाओ यह पाप। " चंद्रिका के सामने जग्गू को जोरसे फेंकते विश्वनाथ गुर्राया।

"चंद्रा ! तुम सचमुच उसे ले जाओ। " जाह्नवी बोलीं।

एकाध घण्टेभर में जग्गू का सामान इकट्ठा किया गया। हाथ में चमड़े की बैग लेकर चंद्रिका आगे बढ़ी और जग्गू उसके पीछे चलने लगा। जग्गू जब अँगनेकी छोर तक पहुँचा तब जाह्नवी उसके पीछे दौड़ आयी बोली—

" बेटा जग्गू ! क्या तू सचमुच जा रहा है ? "

" हाँ " जग्गूने एकही शब्दमें उत्तर दिया

" यह लो बेटा, तुझे ! "

जाह्नवी ने जग्गू के हाथ में चांदीका झुन-झुना रखा। जग्गू ने एक बार जाह्नवी की ओर देखा। जाह्नवी अब भी खु को लेकर खड़ी थी; और उसे वह यह अर्थहीन झुनझुना दे रही थी ! जग्गू के हृदय में फिर एक बार आग धधक उठी। उसने वह झुनझुना फेंक दिया और अत्यंत रूखे स्वरमें बोला—" मुजे नहीं चाहिए ! "

...और, जाह्नवी से पीठ फेरकर वह चलने लगा। उसने एकबार भी पीछे मुड़कर न देखा। पीछे मुड़ने जैसा कुछ बचा न था जो ! जग्गू सब कुछ हार चुका था। उस घरमें उसका कोई न था। उसके एकमात्र अपनी यह मधुमौसी ही थी। वही उसका कल्याण जानती थी। इसीलिए वह उसके लिए बहन माँग रही थी। लेकिन उसे मिल गया भाई। और उस भाईने उसका सबकुछ छीन लिया। उस गूँगे, अपंग, बावले मांस पिंडने उसे पूरा परास्त किया। उसने जग्गू को पीछे हटाते अंतमें घरसे बाहर भी ढकेल दिया। माँ के कंधेपर विराजमान होकर अब इस क्षण भी वह जग्गू की दुर्दशा देख रहा था। जग्गू के पास अब बचा क्या था ? उसके मनमें था क्रंदन और उसके हृदय में आग ! उसकी अपनी केवल एकमात्र अभिन्न मधुमौसी थी और उसकी उंगली पकड़कर वह अपने नन्हे-से पाँव उठाकर दूर चला जा रहा था ...

जाह्नवी की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह देख रही थी। चंद्रिका की उंगली एक हाथसे पकड़कर मुँह मोड़कर जग्गू सीधा चला जा रहा था। हर कदमसे वह उससे दूर जा रहा था। जाह्नवी की आँखोंसे धारा झड़ने लगी। उन आसुओं में मोड़पर अदृश्य होनेवाली जग्गू की आकृति एक बार थर्रायी और फिर ओझल हो गयी। जाह्नवी का कलेजा चीख उठा–" मेरे जग्गूने एकबार भी पीछे मुड़कर न देखा... एकबार भी...! " •••

रूपा : **कु. सुरेखा तोणे**



अनुक्रमणिका



दो कविताएँ —

— उदयभान मिश्र

आँखें

आँखें उगती हैं
काफी के प्यालों पर !
चमकती हैं
हवा में
इन्द्र धनु की तरह !
आँखें झुकती हैं !
आँखें उठती हैं ।
आँखें ...
आँखों में फलती हैं !



नंगा दर्द

बुरा मान गये
मेरी बात का ! (?)
तुम्हें भी दर्द होता है
आघात का ? (!)
छिः छिः
उठो, चलो,
मुँह हाथ धोवो,
खाना खावो !
(और ड्राइवर ! सुनो,
जाओ बाबू को घुमा लाओ)
जाओ ...
मन बहला आओ !

जाह्नवी अब भी कुछ न बोली। उसकी आँखोंसे धीमे-धीमे आँसू बह रहे थे। विश्वनाथ जग्गू को लेकर जब सचमुच पिछवाड़े जाने निकला तब चंद्रिका उसके सामने अपना पल्ला फैलाती बोली, –

"विश्वनाथजी, मैं आपके सामने पल्ला फैलाती हूँ। अगर आप जग्गू को चाहते नहीं है तो मुझे दे डालिये उसे। मैं उसे लेकर चलती हूँ।"

"चलो, ले जाओ ! उठाओ यह पाप।" चंद्रिका के सामने जग्गू को जोरसे फेंकते विश्वनाथ गुर्राया।

"चंद्रा ! तुम सचमुच उसे ले जाओ।" जाह्नवी बोलीं।

एकाध घण्टेभर में जग्गू का सामान इकट्टा किया गया। हाथ में चमड़े की बैग लेकर चंद्रिका आगे बढ़ी और जग्गू उसके पीछे चलने लगा। जग्गू जब अँगनेकी छोर तक पहुँचा तब जाह्नवी उसके पीछे दौड़ आयी बोली—

"बेटा जग्गू ! क्या तू सचमुच जा रहा है ?"

"हाँ" जग्गूने एकही शब्दमें उत्तर दिया

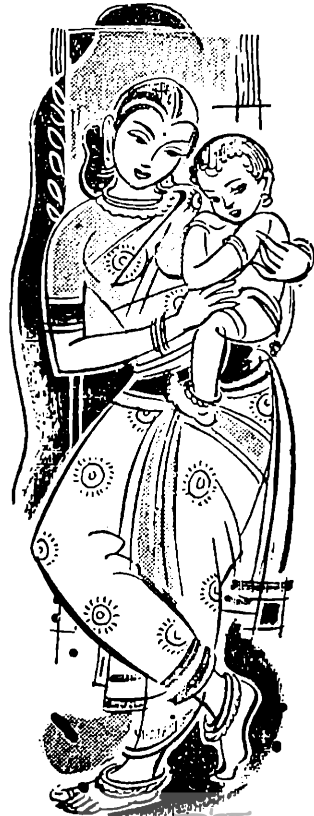
"यह लो बेटा, तुझे !"

जाह्नवी ने जग्गू के हाथ में चांदीका झुन-झुना रखा। जग्गू ने एक बार जाह्नवी की ओर देखा। जाह्नवी अब भी खु को लेकर खड़ी थी; और उसे वह यह अर्थहीन झुनझुना दे रही थी ! जग्गू के हृदय में फिर एक बार आग धधक उठी। उसने वह झुनझुना फेंक दिया और अत्यंत रूखे स्वरमें बोला—"मुजे नहीं चाहिए !"

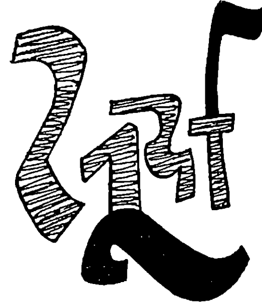
...और, जाह्नवी से पीठ फेरकर वह चलने लगा। उसने एकबार भी पीछे मुड़कर न देखा। पीछे मुड़ने जैसा कुछ बचा न था जो ! जग्गू सब कुछ हार चुका था। उस घरमें उसका कोई न था। उसके एकमात्र अपनी यह मधुमौसी ही थी। वही उसका कल्याण जानती थी। इसीलिए वह उसके लिए बहन माँग रही थी। लेकिन उसे मिल गया भाई। और उस भाईने उसका सबकुछ छीन लिया। उस गूँगे, अपंग, बावले मांस पिंडने उसे पूरा परास्त किया। उसने जग्गू को पीछे हटाते अंतमें घरसे बाहर भी ढकेल दिया। माँ के कंधेपर विराजमान होकर अब इस क्षण भी वह जग्गू की दुर्दशा देख रहा था। जग्गू के पास अब बचा क्या था ? उसके मनमें था क्रंदन और उसके हृदय में आग ! उसकी अपनी केवल एकमात्र अभिन्न मधुमौसी थी और उसकी उंगली पकड़कर वह अपने नन्हे-से पाँव उठाकर दूर चला जा रहा था ...

जाह्नवी की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह देख रही थी। चंद्रिका की उंगली एक हाथसे पकड़कर मुँह मोड़कर जग्गू सीधा चला जा रहा था। हर कदमसे वह उससे दूर जा रहा था। जाह्नवी की आँखोंसे धारा झड़ने लगी। उन आसुओं में मोड़पर अदृश्य होनेवाली जग्गू की आकृति एक बार थर्रायी और फिर ओझल हो गयी। जाह्नवी का कलेजा चीख उठा-"मेरे जग्गूने एकबार भी पीछे मुड़कर न देखा... एकबार भी... !" •••

रूपा : कु. सुरेखा तोर्णे



अनुक्रमणिका



— मार्कण्डेय

शाम के पांच बज जाने पर भी सूर्या जी अपने आफिस से नहीं निकलीं तो जगजीत बरामदे की सीढ़ियों से उठकर कमरे के दरवाजे के साम्ने जा खड़ा हुआ। पल भर उनकी ओर देखता रहा, सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर पड़ी घड़ी पर चली गयी...पेन्डुलम गटर् गट... गटर् करता हुआ हिल रहा था और सेकेन्ड की लम्बी सुई एक नम्बर से दूसरे पर छलाँग भरती आगे बढ़ रही थी। दूर चहारदीवारी के पास से लड़कियों के गाने की मद्‌धिम् ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। जगजीत कुछ देर ऐसे ही खड़ा रहा। शायद किसी आदेश का इन्तजार करता हुआ, पर कुर्सी में बैठी गुरुजी की दृष्टि उसकी उपस्थिति के आभास से और भी स्थिर हो गयी थी। वह चुपचाप लौटा और बाँस की हथौड़ी से घंटी बजाने लगा। टिंन् ... टिंन्... का स्वर लड़कियों के शोर में रोज की तरह डूब गया और देखते देखते स्कूल का हाता वीरान हो गया। जानी मौसी अपनी टूटी बाल्टी ओर बधना कुँए की जगत से उठाकर बरामदे में रखने के लिए आती हुई पल भर को रुकीं, जगजीत को देखते ही अपने पोपले मुंह से एक जोर की गाली दी और भुनभुनाती हुई आगे बढ़ गयीं। लेकिन जगजीत ने न तो उन्हें आज रहमान की बीबी ही कहा था न उनके सिर पर अंगुलियां ही फेरी थीं। कृष्णा पलभर को बड़ी गुरुजी के कमरे से बाहर ठिठकी, लेकिन कोई संकेत न पाकर अपना छाता लिए दबे पाँव लौट पड़ी।

जगजीत उसे बाहर जाते हुए देखता रहा। कृष्णा ने हाते के ऊंचे चौखट से एक पाँव बाहर रखा तो साड़ी का निचला हिस्सा उसी में अटक कर ऊपर चढ़ गया और उसकी चिकनी, सांवली पिंडलियों पर धूप की एक तह फिसलती चली गयी। हाते में झुके हुए आम की टूटी डाल के सिरे पर एक कौआ आ कर बैठा, दो बार कांव-कांव बोला, फिर उड़ता हुआ दूर चला गया। जगजीत चुपचाप खड़ा रहा।

आज दो दिन हो गये पर वह यह नहीं समझ पाया कि 'सूरा बीबी जी' ने कब नौकरी की और किस तरह बड़ी गुरुजी बनकर इस स्कूल में आ गयीं। शहर के घर का क्या हुआ। वह घर भी तो इनका अपना ही था, और मालकिन ! उसके मन में एक शंका हुई। क्या वे नहीं रहीं ? रहती तो भला ये नौकरी करने पातीं !

उस[illegible]मन धीरे से कहीं दूर चले जाने को हो रहा था पर आफिस बंद करके एक पुराना छोटा बक्स और कुंजी लेकर इनके पीछे-पीछे क्वार्टर जानेका काम उसी का था, इसलिए उसके पाँव उसी जगह गड़ से गये थे। ठीक साँप और छछुंदर की गति थी उसकी। न कहीं जाते बनता था, न रुकते। बार-बार उसके मन में आता कि वह 'सूरा बीबी जी' से कुछ कहे, लेकिन क्या कहे, वह यही नहीं समझ पाता, फिर उसे लगता है, ये पहले ऐसी तो नहीं थीं। [illegible]बोलती थीं, हँसती थीं और बात-बात में...वह चौंककर कमरे में घुसा। सूर्या देवी ने शायद उसी को सचेत करने के लिए छोटी संदूक का ढकना जोर से बन्द कर दिया था और अपनी रेशमी धोती का पल्लू ठीक करती हुई कमरे के बाहर निकल आयी थीं।

सूरज डूबने ही को था। क्वार्टर के बगल वाली बसवट पर चिड़ियों की चूं-चूं बढ़ गयी थी। बाँस की एक अगार रह-रह कर क्वार्टर की खपरैल की ऊपरी सतह को खरौंच जाती थी। सूर्या बरामदे में खड़ी उसी को देखने लगी थीं। जगजीत बक्स को आफिस के बाहर रखकर दरवाजा बन्द कर रहा था और वह सोच रही थी कि बीच का कमरा इसी कारण रात टपकता है। या तो बाँस को कटवा देना होगा, या...' मैं कल उसे खींचकर एक तरफ कर दूँगा ' जगजीत बीच ही में बोल पडा, क्यों कि वह बक्स लिए कब से उनके पीछे चुपचाप खड़ा था।

सूर्या इस बिनमांगी सलाह से चौंक कर सिहर गयी। उसका सिमटा - सिमटा - सा चेहरा अपने से घूमकर जगजीत की नन्हीं, तेज आंखों में समा गया और उसका हाथ अपने से उठकर उसके दायें गाल के काले तिल पर चला गया। स्मृति स्वतः उतरा आयी ... 'तू क्यों इस तरह देखता है मुझे जग्गी, कोई बात है क्या ? कह तो जरा, तेरी भी सुनूँ; संकोच न कर जगजीत, तुझे मेरी कसम ' और जगजीत उस दिन जैसे घड़ों पानी में भींगकर ठिठुर गया ... "वह जो काला तिल है न ...।"

"हाँ -हाँ, है तो क्या हुआ ?" ...

"मुझे बहुत अच्छा ..." जगजीत काँप उठा था और मैं, मैं ! - सूर्या देवी ने जैसे किसी रेकार्डिंग मशीन पर बजती हुई इस कितनी पुरानी बात को आज जैसी-की-तैसी सुना हो। उसे अपनी ही आवाज पर कुतूहल हो रहा था और 'नहीं ... नहीं ' बुदबुदाकर वह भीतर से कुछ नकार रही थी... लेकिन आँखों में अड़ गया था एक श्यामल किशोर,. सफेद अन्डर-वियर और बनियन पहने हुए, ऐसा सलोना और चिकना बदन और ऐसी सुफेद दूध - सी मुस्कराहट ! इससे देर - देर तक बात करने और बेवकूफ बना बनाकर हँसने को जी चाहता है। माँ से कहूँ कि

अनुक्रमणिका

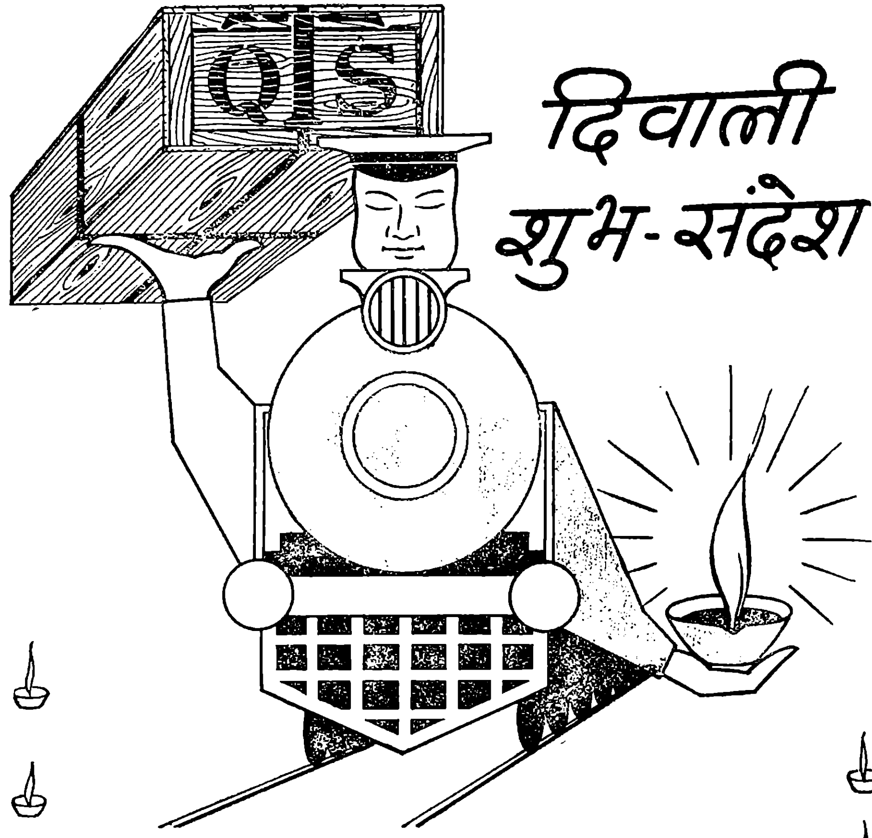




...वही तीखे नाक-नक्श, उलझे हुए बालों की लटें और शरीर का सुघर उभार...सूर्या मनही मन बोली, 'मैं तुम्हें बाधूंगी, धोखा दूँगी, तुम्हें लाचार कर दूँगी। मैं बच्चे की माँ बनूँगी, उसका बाप तुम्हें कहूँगी, तब देखूँ तुम क्या करते हो!'



इसे मेरे कमरे के पास सोने के लिए कह दे। रात देर तक पढ़ती हूँ तो दूसरी ओर फुलवारी वाले बरामदे में सूना हो जाता है। मुझे इतना डर लगता है—सूर्या के रोयें इस पुरानी याद से भभर आये थे इसलिये नहीं कि जगजीत की आँखें उसके पीछे लगी थीं, बल्कि इस लिये कि जब उस दिन चार बजे से लेकर दिन डूबे तक वह अंतिम बार हां, वह अंतिम ही था। वह कितनी ही बार रो-धो कर थक चुकी थी और सुनील से कह आयी थी कि अगर इस बार वह न आया तो फिर आने के लिए नहीं कहेगी। वह सुनील का रास्ता देखती बैठी रही और पल-पल अपनी कमजोरी छिपाने के लाख बहाने करती रही, लेकिन वह नहीं आया। पिछले कई महीनों से उसका यही हाल था, कभी वह कुछ कहती तो मुँह नीचे किये सुन लेता और उदास-उदास चला जाता। उसके जी में कई बार आया था कि सुनील से कहे कि उसके लिये पहले जैसा प्यार उसमें नहीं रहा, पर यह सोचकर वह काँप जाती कि कहीं उसकी बात की सच्चाई खुलकर सामने न आ जाए। सुनील के मन में कहीं सचमुच ही यह बात न बैठी हो। न जाने क्यों सूर्या उस समय यह सोच भी नहीं सकती थी और आज वह उसी तरह जगजीत के बारे में भी बहुत कुछ नहीं सोच पाती और उसके आगे गहरा अंधेरा छा जाता है। उसे लगता है, जैसे वह सुनील के बारे में सोचते-सोचते थक गयी है और कमरे का दरवाजा खुला छोड़कर किताब सीने से चिपकाए जाने किस लोक में पहुँच गयी है। उसके सीने में अजीब-सा दर्द है और कमरे में फटन-सी होने लगी है और वह जाने क्या-क्या सोचती चली जाती है। रेवा का चेहरा उसकी आँखों में कांपता है। फिर रेवा के होंठ हिलते हैं, 'सुनील, क्यों उदास रहते हो तुम, रिसर्च में डूबे रहने का मतलब? तो नहीं होता कि हमारे घर का रास्ता ही भूल जाओ। मम्मी कितना याद करती है तुमको!'...... सूर्या के कलेजे की जलन उस समय और नीचे उतर आयी थी।


दिवाली
शुभ-संदेश

अनजाने ही उसके चेहरे पर चिकनाई उतर आयी थी और बदन भारी होने लगा था। उसे हल्का-सा चक्कर आया था, उबकाई छूटी थी और वह चौंककर उठ बैठी थी।

सुबह का निर्दोष आकाश उसने खिड़की से देखा था और फूट-फूट कर रो पड़ी थी। सुनील, तुमसे प्रेम करके मैंने बुरा किया। शायद तुम नहीं जानते कि मैं उस जाति की स्त्री नहीं हूँ जो मन को समझा लेती है। मैं चाहती हूँ, लेकिन समझा नहीं सकती। मैं अपने से लाचार हूँ, सुनील! सूर्या अपने आँचल से अपने आँसू पोछने लगी सफेद धोती का किनारा खून से रंग गया था। मैं तुम्हे बाँधूंगी, तुम्हें धोखा दूँगी, तुम्हे लाचार कर दूँगी। मैं बच्चे की माँ बनूँगी, उसका बाप तुम्हें कहूँगी, तब देखूँ तुम क्या करते हो! — सूर्या रास्ते पर ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची आज। तभी जगजीत ने बढ़कर छोटे कमरे का दरवाजा खोल दिया और वह अंधेरे कमरे में घुस कर अपनी चारपाई पर बैठ गई। जगजीत बढ़कर खिड़कियाँ खोलने लगा तो उसने कहा-" नहीं इस समय जाओ। "

जगजीत बाहर चला गया पर उसे लगा वह बाहर नहीं जाएगा! अगर चला भी जाएगा तो वह किवाड़ों को उँठगा कर छोड़ देगी जिससे वह फिर अन्दर आ सके और फिर इस एक विचार से उसके आगे अपना वही घर नाचने लगा, वही कमरा, वही बरामदा, जिसमें जगजीत खिड़की के नीचे अपनी चारपाई बिछाकर सोया रहता था। वह रात कई बार उठती, बिस्तर के किनारे बैठकर खिड़की से झांकती और जगजीत की चारपाई पर पड़ने वाली खिड़की के चौखटे और लोहे के छड़ों में कैद रोशनी पर उसकी निगेटिव तस्वीर खिंच जाती। बालो की लटें, नाक-नक्श और शरीर का तीखा उभार... वह अपने को इधर-उधर करती, जगजीत को देखना भूलकर, वह अपने ही को देखती, देखते-देखते सुनील का मुस्कराता चेहरा उसकी आँखों में उतर आता और वह बत्ती बुझाकर उसे मन में लिए सो जाती। कभी उसी समय उसे पत्र लिखने लगती और देर-देर तक जाने क्या - क्या लिखती रहती। जाने क्यों उसे स्वयं को देखते तुरन्त सुनील का ध्यान हो आता था।

जगजीत बरामदे में कुर्सी मेज लगा चुका था और महरी ने चाय की केतली और प्लेट - प्याले ला कर मेज पर रख दिये थे। सूर्या की खोखली दृष्टि में केतली का आकार छाया हुआ था और दो मौन आकृतियाँ इधर - उधर हिल कर उसे मेज पर आ बैठने का संकेत कर रही थीं। उसके ख्यालों का सिलसिला फिर टूट गया, वैसे उनमें कोई क्रम पहले भी नहीं था और आज उसके लिए संभव भी नहीं कि वह शुरु से एक साथ सारी बातों को सोचने बैठे। उसे क्या मालूम था कि एकांत की खोज में कोशिश करके इतनी दूर कस्बे में बदली कराने पर वह वहाँ जा रही है, जहाँ जगजीत बैठा है। वह जिन्दगी से जितना भागना चाहती है, जिन्दगी उतनी ही उसके पीछे पड़ी है। आखिर क्या कहें इसे ... वह सोचती हुई चारपाई से उठी और बरामदे में चाय की मेज पर जा बैठी।

महरी चाय बनाकर देते हुए पूछ बैठी—" रात डर लगता होगा गुरुजी, कहें तो मैं ही यहाँ सो रहा करूँ। अभी आपके लिए नया-नया घर है। "

दीपा. १७

सफलता वह सुन्दरी है जिसे बहुतसे लोग प्यारसे चाहते हैं, मगर वह आलिंगन उसीका करती है जो उत्साह के अतिरेक से मुक्त रहकर दृढ़ता पूर्वक प्रयत्नशील रहता है और शान्तिपूर्वक अध्यवसायमें जुटा रहता है।



" नहीं महरी, डर तो क्या लगेगा। " सूर्या की आँखें जगजीत से मिलीं। वह घबरा कर नीचे देखने लगा तो उसने बात पूरी की— " सूना बहुत रहता है, लेकिन कोई बात नहीं तुम लोग मेरे लिए परेशान न हो। "

" अरे इसमें परेशानी की क्या बात है गुरुजी। जगजीत यहीं है। आपके पहले वाली गुरुजी तो इसी क्वार्टर में आठ बरस रह गयी थीं तो कैसी दुबली, पतली, छरहरी-सी थीं, लेकिन यहीं ब्याह किया और यहीं उन्हें बच्चे भी हुए। उन्हीं ने तो जगजीत को रखा था। घर-द्वार का कुछ पता ही नहीं बेचारे को, बचपन से ही मारा-मारा फिरता था। कुछ दिन शहर में किसी के यहाँ काम कर चुका था। पहले लड़कियों को पानी पिलाता, गुरुजी के घर का काम करता, खाता और यहीं बरामदे में सो रहता। ठीक इसी खिड़की के पास। उन्हें तो बहुत डर लगता था। रोज कहतीं, जगजीत न रहे तो मैं एक दिन भी इस भूतखाने में न रहूँ। एक न एक डर की बात वे रोज मुझसे कहतीं। जाते-जाते वही जगजीत को चपरासी बना गयीं। "

" अच्छा! " सूर्याने प्लेट में प्याले को रखते हुए जगजीत की ओर देखा। स्याही का हल्का-सा पर्दा बरामदे की दीवारों पर सिमट आया था और जगजीत अंधेरे की छत से लटकती ग्लोब पर टँगा झूल रहा था। सूर्या ने पहली बार उसे आदेश दिया-" रोशनी जलाकर मच्छरदानी ठीक कर दो, कल मच्छरों ने सारी रात काटा! "

जगजीत चला गया तो सूर्या ने महरी की हाँ में हाँ मिलाई। महरी फिर बोलने लगी-" उन वाली गुरुजी ने तो, क्या बताएँ, सरकार, बहुत अच्छा किया जो चली गयीं। आप से तो यहाँ लोग इतने डरे हैं कि कहते हैं ' गूंगी हैं क्या, यह जी, ' आप कुछ बोला करें। वह नयी वाली उपधायिन तो इतनी चुगुल हैं कि दो दिन से रोज दोपहर को मेरे पास आती हैं और आप के बारे में पूछा करती हैं। कहती थीं, ' शहर से आयी हैं न, इनका भी कोई यार होगा वहाँ, बस दो-चार दिन रुको, वह आएगा ही। तब देखना तमाशा। इनको भी हमारा स्कूल बचा-कचा देकर भेजेगा? ' सूर्या को हँसी आ गयी। ऐसे किसी बच्चे ने उसका मुँह चिढ़ाया हो, ' मेरा कोई



मेरे मौनसे तू क्यों परेशान है ?
क्या तू ज़बान की ही बोली समझता है ?

यार नहीं महरी, उनसे कहना यार ही खोजना होता तो यहाँ क्यों आती।'' लेकिन वह अपनी बात के हल्केपन पर सहसा ठमक गयी। क्या यह सब मुझे कहना चाहिए। उसने पल भर को सोचा, फिर महरी को बर्तन उठाने को कहकर कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई। जाने क्यों उसके बदन में स्फूर्ति की एक झुरझुरी दौड़ गयी थी। वह बरामदे में टहलने लगी।

अभी उसने अपना वह किचन भी नहीं देखा था, जिसमें से दो दिन खाना बनकर आया था। महरी को उसने कुँए की उस कोठरी में घुसते देखा तो उसे ख्याल आया कि यह चाय-खाना वह किसके पैसों से बना खा रही है। उसने वहीं से महरी को आवाज दी और पूछा तो पता चला कि जगजीत सारा सामान खरीदकर लाया था और गुरुजी ने ही उसके लिए पैसे दिये थे। उसके होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कान छा गयी-"मूर्ख कहीं का!"

वह तेजी से अपने कमरे की ओर गयी। जगजीत लालटेनें साफ करके जला चुका था! उसकी लौ कम करके जगह-जगह रखने ही जा रहा था कि सूर्या को तेजी से कमरे में आता देख, एक ओर हट कर खड़ा हो गया। उसके मन में आ रहा था कि वह उसे जी भर कर पीटे और जब वह बेहोश हो जाए तो उसी कमरे में हमेशा के लिए बन्द कर दे। लेकिन अन्दर पहुँचते ही वह सहम कर आगे बढ़ गयी। बेकार ही अपने कपड़े इधर-उधर करने लगी। जगजीत दो-तीन जगह बत्तियाँ रख कर कमरे के सामने जा बैठा। सूर्या का संकोच फिर क्रोध में बदलने लगा। उसने वहीं से उसे पुकारा-"जग्गी!"

"जी" कह कर वह पागलों की तरह उसके पास गया। लेकिन वह फिर चुप रह गयीं। पल भर वह खड़ा रहा। उसने कुछ रुपये उसके हाथ में थमाये तो बोल पड़ा-"क्या ले आना है?"

"तुम कुछ लाये थे न।" वह फिर लौट पड़ी और दूसरी ओर के आँगन में चली गयीं।

इस ओर भी एक छोटा-सा बरामदा था, जिसमें एक आराम-कुर्सी पड़ी थी। सूर्या को पहले वह कुर्सी बड़ी गन्दी लगी थी, पर इस समय वह उसी में धँस कर बैठ गयी। पश्चिम की दीवार के ऊपर आसमान का भूरा टुकड़ा अभी हल्की रोशनी का आभास दे रहा था, चुपचाप उसे देखने में जाने क्यों खुशी हुई उसे। देर तक बैठी उसे देखती रही।

इस समय वह छब्बीस-सत्ताईस की है। तब वह सतरह-अठारह की रही होगी। कालेज से लौटने पर उसने एक दिन देखा कि उसकी लान पर एक लड़का पानी छिड़क रहा है और माँ खड़ी उसे काम समझा रही है। सूर्या को जाने क्यों उसे देख कर हँसी आ गयी थी, क्योंकि उसे मालूम था कि उसकी माँ ऐसे ही रास्ते चलते लोगों में से घर का नौकर चुन लेती थी, जो कभी-न-कभी घर का कोई सामान लेकर चंपत हो जाते थे। उसने बिना कुछ सोचे-विचारे कह दिया था, इसे कहाँ से पकड़ लाई हो, किसी दिन कुछ लेकर यह भी चम्पत होगा तो पछताओगी।

जगजीत ने इस बात को माँ से भी ज़्यादा नजदीक से सुना और इसके पहले कि सूर्या की माँ कुछ उत्तर दे, वह चुपचाप अपना काम बन्द करके पानी की झारी लिए लान से बाहर निकला और उसे बीच के रास्ते पर रख दिया। वहीं से अपना गमछा उठाया और हाथ-मुँह पोछता बाहर की ओर चल पड़ा। सूर्या की माँ ने मकान के बरामदे ही में से आवाज दी पर वह रुका नहीं। सूर्या की आँखें माँ से मिलीं तो एक अजीब-सी स्थिति पैदा हो चुकी थी, सूर्या शर्मिन्दा थी, इसलिए वही दौड़कर जगजीत को बुला लाई। जगजीत माँ के सामने आ कर रोने लगा। फिर किसी तरह चुप तो हुआ, लेकिन वह बोला कुछ नहीं।

तब से इन दस वर्षों में जीवन ने क्या-क्या देखा। सूर्या उस एकांत बरामदे में बैठी यही सोच रही थी। उस पहले ही दिन जगजीत के साथ की इस घटना ने उसे माँ का कितना प्रिय पात्र बना दिया था। उसे ये घर की सारी चाभियां दे जाती थीं। दूसरा कोई तो घर में था नहीं। पिता बचपन में ही मर चुके थे। इस लिए मालिक था जगजीत। जब माँ कहीं बाहर जाती तो वही घर का पूरा इन्तजाम करता। मुझे तो अभी पता नहीं चला कि मैं कैसे और किन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इसलिए जब सुनील से मेरा परिचय हुआ तो सहसा वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई बन गया। सुनील माँ के कारण ही शायद पहली बार घर आया था, और जो इस तरह मेरे घर आता था वह घर ही का बनकर रह जाता था।

सुनील स्वभाव के साथ शरीर से भी मोहक था। मुझे याद नहीं कि कैसे, पर हँसते-खेलते हम एक दूसरे के बन गये। सुनील बिना किसी संकोच के बाहों में भरकर मुझे चूम लेता था और मैं बेझिझक उसकी गोद में बैठकर उससे लिपट जाती थी। कभी-कभी तो वह हैरान हो जाता और मैं नहीं छोड़ती। जगजीत ने कई बार हमें इस तरह देखा और सिर नीचा किये लौट गया। न उसने कभी कोई चर्चा किसी से की, न मैंने ही इस पर कोई ध्यान दिया। बाद में मुझे पता चला कि वह सिर्फ कर्ता है उस सब का, जो उससे कहा जाए न कहने पर वह कुछ न करता। सूर्या को आदमी के स्वभाव पर हैरत होने लगी। जाने क्यों वह जगजीत की तुलना अपने से करने लगी। जैसे कुछ चाहने की इच्छा करते, उसे चाहते-चाहते वह इतनी कमजोर हो गयी थी और जगजीत अब भी मन के द्वारों को बन्द किये वह सब करने में समर्थ था जो उससे कहा जाय। सूर्या को अपनी कमजोरी पर तरस आने लगा था, तभी उसकी दृष्टि फिर

अनुक्रमणिका





पश्चिम-दीवार पर चली गयी। बादलों के काले टुकड़े दीवार के ऊपर आ सटे थे और वह गहरे अंधेरे का एक हिस्सा बन गयी थी। उसकी बगल के कमरे के दरवाजे के मद्धिम प्रकाश में एक परछाईं कांप-कांप जाती थी... यह जग्गी ही है, शायद बिस्तर ठीक कर रहा है या मच्छरदानी में बाँस बाँध रहा है। उसने घूमकर दरवाजे की ओर देखा तो जगजीत एक हाथ में स्टूल दूसरे में लालटेन लिए खड़ा है।

" यहाँ रोशनी रख दूँ बीबी जी। " कहते हुए अचम्भा हुआ उसे कि यह 'बीबीजी' कैसे निकला उसके मुँह से और सूर्या ने कुर्सी से उठते हुए तीखे स्वर में उत्तर दिया—" सूरा बीबी जी कहने से डरते हो क्या? " फिर वह अन्दर कमरे में घुसते-घुसते कहती गयी, " कोई जरूरत नहीं। इधर से दरवाजे को ठीक से बन्द करके छोड़ दो। "

जगजीत डर के मारे काँपता हुआ बाहर चला गया। उसने अपने शरीर से साड़ी नोचकर फेंक दी, फिर ब्लाउज के बटन एक-दो...उसे सहसा याद आया कि कमरे में रोशनी है और खिड़कियाँ खुली हैं। वह एक सफेद साड़ी निकालकर नहानघर में चली गयी। कपड़े उतारते-उतारते उसे माँ का ध्यान हो आया। अक्सर वह बिना कपड़े लिए ही बाथ में घुस जाती थी और जब टब में बैठकर बड़ी देर तक नहाते-नहाते उसे कपड़ों का ध्यान आता तो वह 'मांऽ मांऽ' पुकारने लगती थी। माँ कभी-कभी तो एकदम निःसंकोच कमरे में घुस आती थी। कपड़े रखकर उसकी पीठ पर दो-चार बार हाथ फेरकर कहती, कब से डूबी पड़ी है, इस पानी में बीमार पड़ेगी क्या? और वे दरवाजा खुला छोड़कर ही चली जाती थीं। ऐसे ही एक दिन की बात सोचकर वह आज भी डूबने-उतराने लगती है।

सुबह आठ ही बजे वह नहानघर में घुसी थी। उसे भी नहीं मालूम था कि रवि दादा इसी बीच बनारस से आ गये हैं और माँ उनके साथ बातों में लगी है, उसने कई बार माँ-माँ पुकारा और यह सोचकर कि माँ आती होगी, उसने नहानघर का दरवाजा चौपट खोल दिया था कि देखती है जगजीत सामने कपड़े लिए खड़ा है। पल भर उसे कुछ भी मालूम नहीं हुआ, लेकिन जैसे ही पानी की बालों में अटकी हुई एक बूँद उसके माथे से होती हुई टपक कर उस के शरीर पर गिरी, उसने झपटकर दरवाजा बन्द कर लिया था। कुछ देर वह घुटनों में धंसी अशक्त पड़ी रही, पर जगजीत कब का कपड़े वहीं टाँग कर चला गया था।

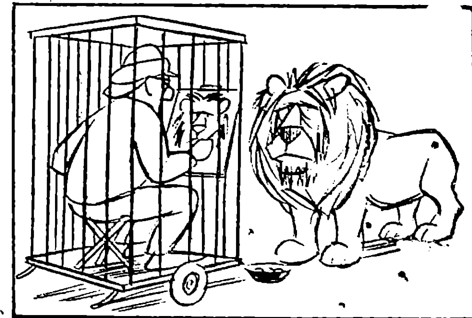
आज कपड़े बदलते-बदलते उसके जी में फिर एकाएक माँ को पुकारने की बात चौंध गयी थी-पर माँ? आज वह एक प्रश्नचिह्न बन गयी है, उसके लिए। चाहे सुनील के कारण ही सही, पर उसने कभी बुद्धि से माँ के बारे में नहीं सोचा। सुनील तो कहता था...फिर सुनील के कहने की चिन्ता मुझे क्यों होने लगी। माँ भी स्त्री ही थी, उनके भी तो मन था। अगर वह रवि चाचा के साथ उनके सम्बन्ध थे तो इसमें मेरा क्या दोष था जो सुनील इ तरह उदास हो गया...आखिर इसमें मेरी क्या ग़लती थी? या मुझसे क्या ऐसा बन गया था जो सुनील के मन में बर्फ की परतें पड़ गयीं। वह आखिर क्यों कहता है कि मेरा मन कुछ करने को नहीं होता-कोई भी काम नहीं...क्या होगा यह सब करके। करने वालों की क्या कमी है? न घृणा, न स्नेह; कुछ भी नहीं। मुझसे सम्बन्ध तोड़कर ही वह खुश हो जाता।

...रेवा भी शायद हार ही बैठी थी। सुनील का दर्द वह समझती भी तो क्या कर सकती थी और उसके पास मुझ जैसा समय कहाँ था जिन्दगी बर्बाद करने के लिए। वह कपड़े बदलकर बाहर निकली तो खाने की पूरी तैयारी हो चुकी थी। महरी और जगजीत शायद किसी आदेश की प्रतीक्षा में थे। वह बिना बोले अपने लम्बे बालों की चोटियां समेटती हुई बाहर के बरामदे में आ गयी और सीढ़ियों से उतरकर सामने वाले खेल के मैदान की ओर चली गयी।

जगजीत के मन में आया, वह सूर्या के पीछे-पीछे जाए। जाने क्यों मालकिन (सूर्या की माँ) की बात उसके कानों में बज उठती थी कि इसे पल भर को भी अकेले न छोड़ना। वे दिन थे भी ऐसे ही भयंकर। जगजीत उसे सोचकर आज भी डर गया। जाने कब इनको क्या हो सकता था। ये खुद क्या नहीं कर सकती थीं? एक दिन सुनील बाबू किसी तरह रिक्शे में बैठाकर लाये थे। इसका सिर चोट से भरा हुआ था। शायद कई दिन के इन्तजार के बाद बीबी-जी खुद उन्हें बुलाने गयी थीं और वहीं किसी बात पर अपना सिर दीवार से टकरा दिया था। मालकिन बड़ी परेशान थीं, पर उनका साहस न होता था कुछ कहने को। सुनील बाबू कुछ बोले नहीं, चुपचाप खड़े रहे। जब डाक्टर आया तो मालकिन ने बेहोशी की बीमारी की बात बना कर दवा शुरू कराई थी। फिर तो वे देर-देर तक बेहोश रहती थीं। कभी बैठे-बैठे फूट-फूट कर रोने लगतीं और कभी अपने बालों को नोचने लगती थीं। मालकिन के सामने आने पर उसकी हालत और बिगड़ जाती थी, इसलिए वे दूर आड़ में खड़ी बिसूरतीं और बिना खाये रात-दिन काट देती थीं।

कभी रात-रात भर बिस्तर में बैठी रहतीं और लेटतीं भी तो चौंक कर उठ बैठती, 'जग्गी देख यह, आँचल! देख जग्गी! मेरी

चालाक़ चित्रकार !



आँखों से खून आ रहा है। कभी देखी है तूने ऐसी बीमारी ?' और आँखे फाड़ कर उस आँचल को देखती रहतीं, देखती रहतीं। फिर धोती के उस सिरे को फाड़ कर तकिये के नीचे रख लेतीं और लेट जातीं।

...डाक्टर आते जाते। दवायें आतीं, फेकी जातीं। घर में सिआपा छाया रहता। कहीं अगर एक प्लेट भी खनकती तो लगता जैसे बादल का कोई टुकड़ा टूट कर धरती पर आ गिरा हो। इस सब के बीच वही था एक-जगजीत। वह आँखें पसारे सूर्या के हर कदम पर निछावर हो रहा था। वह अगर कुछ कहती तो उसी से, सुनती तो उसी की।

एक दिन आधी रात के बाद सूर्या एकाएक बिस्तर में उठ बैठी थीं। वह दरवाजे से चारपाई सटाये लेटा था। उठना ही चाहता था कि देखा, वे शीशे में अपना चेहरा देख रहीं हैं। कपड़ों पर निगाह डाल कर उसे ठीक कर रही हैं। उसे खुशी हुई थी। शायद वे ठीक हो रही हैं। वह चुपचाप पड़ा रहा। फिर सहसा उन्हें संदेह हुआ कि कहीं जगजीत जाग तो नहीं रहा है, इसलिए जब वे चलकर उसकी चारपाई के पास आयीं तो उसने सोने का बहाना बना लिया। सिर उसका अंधेरे में था, इसलिये सूर्या के लौटने पर उसने फिर आँखे खोल दीं और एक टक उन्हें देखने लगा। उन्होंने अपनी साड़ी उतारकर खूंटी पर टांग दी और ब्लाउज के बटन खोलने लगी तो जाने क्यों कपड़े के नीचे से भी उसे शरीर के वे ही अंग खुले हुए दिखाई पड़े, जिन्हें नहान घर में कपड़े देते समय उसने कभी देखा था। सूर्या के शर्माकर बैठ जाने की घटना का चित्र उसकी आँखों में उभर आया। एक अजीब-सी गर्मी और घुटन से उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया। ब्लाउज उन्होंने खूंटी पर टांग दिया था और नीचे सिर करके कुछ देखने लगी थीं। फिर चोली के पिछले बन्द भी पट से खुले पर वह आगे कुछ भी नहीं देख सका। उसकी आँखे बन्द हो गयीं थी और अपने से रंग बदलते जानेवाला एक एक पर्दा उसकी आँखों पर चढ़ गया था।

क्षण भर बाद उसने आँखें खोलीं तो वे शायद बिस्तर में जा पड़ी थीं और उसका ही नाम लेकर धीरे-धीरे पुकार रही थीं। वह अपने को संभालने में देरकर रहा था और वे आवाज इस तरह दे रही थीं, जिससे बगल के कमरे में सोई माँ न सुनें। वह किसी तरह जाकर उनके बिस्तर के पास नीचे दरी पर बैठ गया था और वे पूछ रही थीं-"तुम्हें यह तिल बहुत अच्छा लगता है न, जगजीत!" वह चुप था लेकिन चादर के नीचे से अभी पल भर पहले की उनकी शक्ल उसकी आँखों में नाच रही थी। उसे डर बहुत लग रहा था, पर धीरे-धीरे उसकी पहले की हालत में सुधार भी होता जा रहा था, "जग्गी कुछ बोलो भी!"

फिर क्षण भर खामोशी के बाद उसने सिर्फ इतना सुना था, 'तुम मुझे एक बच्चा...' और उनकी फटी-फटी-सी आँखो में वही पुरानी वहशत उतर आयी थी, जिससे लोग महीने भर से परेशान थे। आँखों के डोरे लाल हो उठे थे और जगजीत थर-थर काँपने लगा था। वह सूर्या के बाहुओं में जकड़ उठा था। कानों में सर्प की-सी फुफकार सुनाई पड़ने लगी थी और उसे इतना ही लगा था कि कोई कह रहा है, 'जग्गी मुझे ही, लो जग्गी।' फिर एक ऐसी आंधी चल पड़ी थी कि दोनों जाने कहाँ-कहाँ उड़ते चले गये थे। कितनी ऊंची पानी की दीवार उनके ऊपर बह चली थी। हुचुक-हुचुक उनकी साँसे डूबने को हो गयी थीं।

सुबह तूफ़ान के बाद की धरती थी और वैसा ही आसमान। जगजीत एक हल्की-सी हिलती पत्ती को देखकर सिरह उठता था और सूर्या सुबह की किरणों-जैसी हँस-हँस कर माँ की छाती से लग जाती थी। वह कंधे पर झाड़न रखे बरामदे में से जा रहा था तो सूर्या को अपने से परे करते हुए मालकिन ने कहा था-"जगजीत, यह लीली देखी तुमने, किसी ने गमले को धक्का देकर फोड़ दिया है। अभी इसका गमला बदल दे, नहीं तो सूख जायेगी।"

उसकी सूर्या बीबी जी पैरों की चप्पल फर्श पर घसीटती हुई नहान-घर की ओर चली गयी थीं। जगजीत स्टोर से नया गमला लेकर उसी समय इस काम में लग गया था और महीने भर बाद जब उसमें कली आ गयी तो सूर्या उसे बार-बार अपनी अंजुली में लेती, देखती, फिर गम्भीर होकर छोड़ देती।

उदास सुनील बाबू फिर आने लगे थे। सूर्या उनके साथ कभी-कभी बाहर भी चली ही जाती थी पर उसके पाँव पहले की तरह उखड़े-उखड़े नहीं पड़ते थे। ठीक नपे-तोले ढंग से जमीन को तजवीज कर। इधर माँ के कमरे से सटा सूर्या का कमरा था और उसके कमरे से सटा फुलवाड़ी वाला बरामदा। रोज सूर्या की छाया-आकृति खिड़की की सलाखों की कैद से रोशनी में पड़ती। मजबूत लोहे की छड़ें गल जातीं और फिर क्षण भर बाद कोई हाथ जगजीत को लिये कमरे के अंधेरे में घुस जाते।

अभी बरामदे में बैठे जगजीत की आँखों के आगे यही तस्वीर आ-जा रही थी, आखिर वह बच्चा हुआ क्या? सूरा बीबी जी ने उससे यही तो कहा था न कि, 'जग्गी तू यह रुपये ले और कहीं ऐसी जगह चला जा कि माँ तुम्हारा पता भी न पा सके, वर्ना तुम्हारे लिए जान का खतरा है। मेरे पेट में तुमसे बच्चा...' वह उसी रात के अंधेरे में रुपये खिड़की से उनके कमरे में फेंक कर वहाँ से चला आया था और इस स्कूल में नौकरी करने लगा था। उसके जी में आज जाने क्यों बार-बार आता है कि वह सूर्या से पूछे कि वह बच्चा कहाँ है? फिर वह सोचता है कि भला वे क्या सोचेंगी। उस काले तिलवाली बात के अलावा कभी उसने उनसे कुछ और कहा है कि आज ही...। पर इतना सच है कि वह सूर्या को देखते ही चुपके से कब का खिसक गया होता, अगर वह यह एक प्रश्न उसके मन में बार-बार न उठता।

इधर सूर्या की हालत उस मकड़ी की-सी हो गयी थी जो अपने ही जाले में उलझती जाती है। इस लड़कियों के स्कूल के सूने मैदान में वह अपने ऊपर जोर-जोर से हँसना चाहती है लेकिन उस लड़की पर उसे क्रोध हो आता है जो बिना पल भर चैन लिये अपने मन की करती ही चली गयी थी...पगली कहीं की! उसका मन करुणा से भर आया।





अब उसने उस दीवानी मीरा को अपने सीने से सटा लिया था और उसके साथ स्वयं झर-झर रो रही थी...काश, वह उसे शान्ति दे पाती। काश, वह सुनील होती तो उसे युग-युग के लिए अपने अंक में छिपा लेती ! प्यारी सूर्या, माई लव, माई स्वीट हार्ट मेरे हृदय में तू समा जा सूर्या। देख मैं कितना वीरान हो गया हूँ, तेरे बिना... वह मन-ही-मन बोल उठी थी तभी उसका पैर एक नन्हे-से गढ़े में पड़कर मुरकने से बँचा और वह फिर अध्यापिका बन गयी।

लड़कियाँ इसी मैदान में खेलती हैं...यहां किसी का पैर टूट गया तो ? कल सबसे पहले इसे ही ठीक कराना होगा...लेकिन फिर भोली बच्ची सूर्या कुछ दूर उसे उदास खड़ी दिखाई पड़ी...तुम्हारी माँ ने सारी बातें जान ली न सूर्या ! देख, एक लम्बी साँस लेकर पहली बार तुमसे कटकर तनिक परे खड़ी हैं। बीच में बरामदे का पाया है और तू छिपे-छिपे माँ की प्रतिक्रिया देख रही है। तू इसी तरह सुनील की प्रतिक्रिया भी देखेगी। तूने सब को लाचार कर देने के लिए ही तो किया है, यह सब।

माँ ने तुरत सुनील को बुलवाया था और उसे कमरे में बैठे-बैठे ही लगा, जैसे सुनील उसकी माँ की बातों से अलग नहीं जा पाया... बुद्धू और कमजोर आदमी ... इनकार तो वह कर भी नहीं सकता था। भ्रम की जमीन उसने होशियारी से बना उसमें शंका के बीज पहले से डाल रखे थे। कुछ दिन पहले अंकुर का संकेत भी सुनील से कर दिया था, लेकिन उसके बाद ही जब माँ खुशी के उच्छ्वास में फूली उसे गोद में भरकर बोली कि दो-तीन दिन में ही तुम्हारी शादी कर दूँगी, तो सूर्या की रही-सही शान्ति भी उसके हाथों से छिन गयी। जाने क्यों एक मिट्टी का नन्हा घरौंदा बिखर कर धूल का ढेर हो गया। पहली बार उसे लगा कि यह सचमुच उसे क्या हो गया। जिस सुनील के स्पर्श किये हुए कपड़े तक उसके रोम-रोम को सिहरा देते थे, उससे शादी की बात पक्की हो जाने की बात सुनकर वह डाल से लटकी हुई सूखी कली की तरह खड़ी हो गयी।

सूर्या सचमुच हँसने लगी, फिर उसे स्थिति का ख्याल आया तो उसने घूमकर उधर-इधर देखा ... कोई है तो नहीं, वर्ना समझेगा यह पागल है। लेकिन इस अंधेरे में कौन होगा और उसने बड़े अनुभवी विचारक की तरह सिर हिला कर बताया कि ये हैं जीवन की सच्चाइयाँ...देख लिया तुमने स्वीटो, अगर मैंने कहा होता कि यह सब न करो तो तुनक कर उस कोने में जा खड़ी होती, पीड़ा और दुख का नाम लेकर जार-जार रोती। राधा बन जाती...राधा ! वह रुक गयी। सच वह राधा ही बनने के योग्य थी। युग-युग तक प्रेम के सिंहासन की सामग्री बनी रहती। लेकिन तुम तो मरी जा रही थी पटरानी बनने के लिए...आखिर मिला कुछ तुझे ? तू खुद अपने से ही ऐसी उदासीन क्यों हो गयी। अभी तो सुनील से तुम मिली भी नहीं। कौन जाने वह प्रेम-विभोर होकर तुझे गले से लगा ले। उसे या दूसरे किसी को भी सच्चाई का ज्ञान कहाँ ?





जो एक कांटा था उसे तो तुमने...' फिर भी मैं पुलकित नहीं हो सकूंगी ! जाने क्यों मेरा उत्साह...ओह, मुझे कोई बचाए, बचाए...' ...वह भीतर ही चीख पड़ी। लेकिन बाहर सूर्या गम्भीर होकर दार्शनिक बन उठी—परिणाम ही आखिरी सत्य नहीं है पगली ! तूने तो सफलता ही को जीवन का उद्देश्य बना लिया था। हो गयी न सफल ! अब ठुमुक-ठुमुक कर नाच बरामदे भर में और फूलों की परी बन जा। लताओं को भेंट न खुशी के मारे अब तो तू पति के घर जाएगी और गोद भी अपनी भरी ही जान...

इसी तरह सूर्या देर तक टहलती रही। अपने से बात करती रही। उसने अपनी शादी का पूरा माहौल मन की आँखों से देखा। शादी की चहल-पहल देखी, लोगों की खुशियाँ देखीं, पर सुनील का चेहरा उसकी नजरों में एक भी बार नहीं आया। उसे कभी शिकायत भी नहीं रही कि सुनील उसकी ओर से उदास है या जीवन से ही ऊबा हुआ है ? अंत में एक दिन उठा-पुठा कर वह अस्पताल गयी। उसे इतना ही याद पड़ता है कि लोगों ने उसे होश में आने पर बताया था कि 'बेबी' पेट में उलट गया था, किसी तरह आपरेशन से उसकी जिन्दगी बचायी जा सकी थी। उसके बाद उसे याद नहीं कि उसकी सुनील से कभी मुलाक़ात भी हुई। इस दूरी में उसे घुटन की कमी दिखाई पड़ी। शायद इसी की भूखी थी वह, इसलिए दूर होती गयी। आज वह कैसी भरी-भरी-सी स्वस्थ और सुन्दर हो उठी है उसका मन जाने क्यों खुश हो उठा। जगजीत क्या सोचता होगा उसके बारे में, कैसा पागल है, बुद्धू कहीं का !...उसके चेहरे पर एक अजीब-सा उलाहना उस अंधेरे में चमक उठा और फिर एक बार उसका हाथ अपने दाहिने गाल के काले तिल पर चला गया। उसे ख्याल आ गया कि उसने बड़ी देर कर दी है ! वह क़दम बढाती हुई क्वार्टर में घुसी, तो उसके दोनों सेवक खाने की मेज की बगल वैसी ही चुपचाप बैठे थे।

सूर्या सीधे खाने पर बैठ गयी। महरी शिकायत करती रही, 'खाना तो ठंडा हो गया गुरूजी, अब तक चूल्हा भी बुझ गया है, नहीं तो गरम कर देती।' जगजीत पानी-तौलिया लेकर खड़ा रहा, पर सूर्याने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, न महरी से ही कुछ बोली। खाना खाकर उठी। सीधे कमरे में जाकर बरामदे की खिड़की की ओर देखा। बाहर अंधेरा था पर बरामदे की दीवार से कुछ दूर हटकर कमरे की रोशनी खिड़की के चौखटे और लोहे की छड़ों की छाया में उसी तरह क़ैद थी लेकिन उसकी छाया ने अपनी आकृति भर के लिए रोशनी के उस मनहूस कारावास को छिन्न-भिन्न कर दिया। लोहे की मजबूत छड़ें जैसे उसके शरीर के स्पर्श मात्र से उतनी सीमा में पिघल कर गल गयी थीं...वही तीखे नाक-नक्श, उलझे हुए बालों की लटें और शरीर की सुघर उभार... सब वैसा ही, बस इस छाया और दीवार के बीच की जगह खाली है !...जगजीत इस जगह नहीं सोयेगा तो आज रात उसे डर लगेगा। कितना सूना है उसका मकान ! अभी दोनों खाना खा लें तो वह महरी से कह देगी कि जगजीत को यहीं सोने के लिए भेज दे।

•••






—बाळ सामन्त

आखिर हम घर पहुँच जाते हैं। रास्ते में भी चैन कहाँ? हमारी बीवी महाशया की शादी-समारोह के कार्यक्रमोंपर ‘कॉम[illegible]ी रहती है और...और...मैं यह तय कर लेता हूँ कि आइंदा दुनियाकी किसी शादी में फिर कभी शरीक न हूँगा।

पराई शादी में

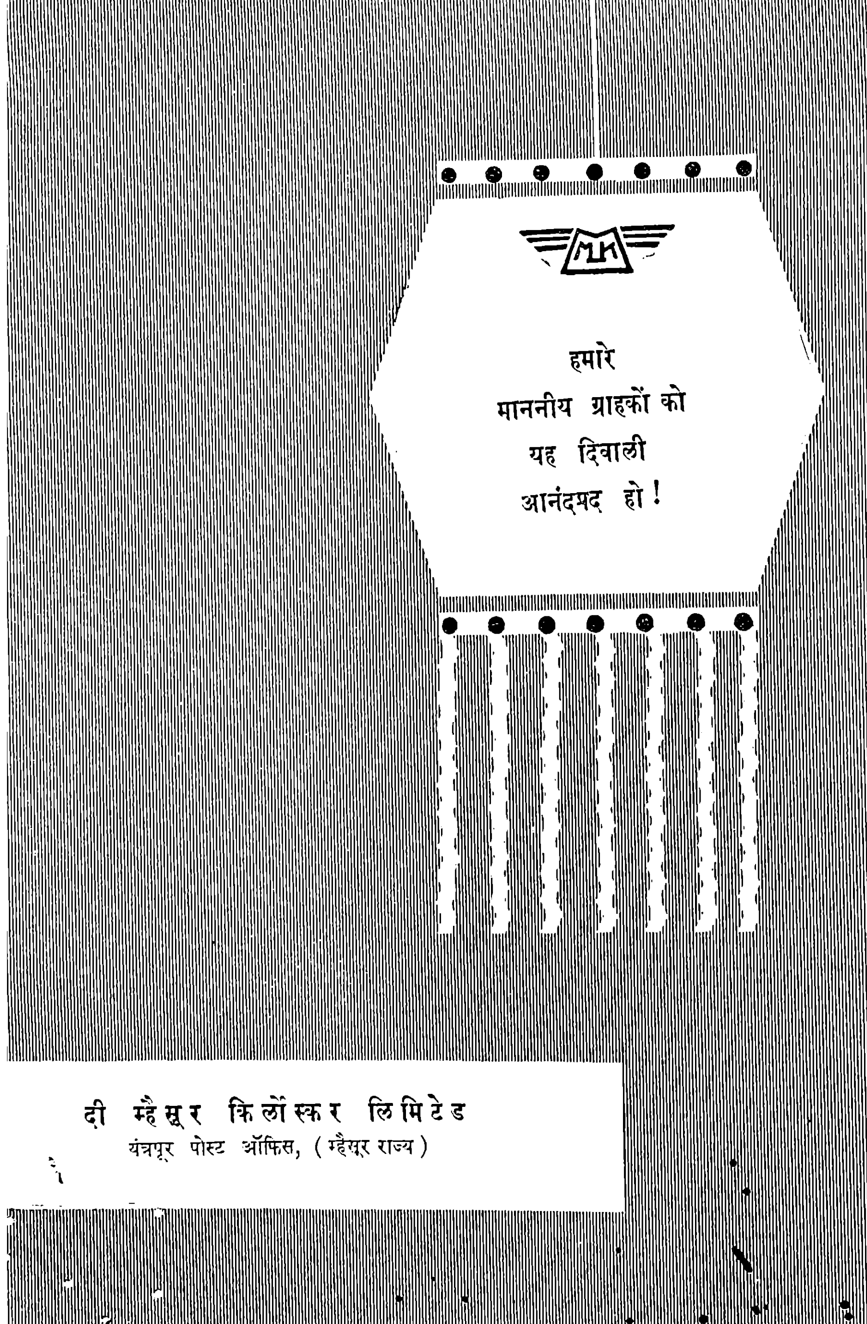
आजकल लंदन, मास्को, हेलसिंकी आदि देशों में जाना बिलकुल सरल तथा सुलभ बना है। हर प्रयत्न से किसी प्रकारकी छात्रवृत्ति पाकर परदेश जाना, मज़ा करना, प्रवास वर्णन लिखना और अंत में फूलों की माला की चाह से वतन लौटना यह एक मामूली बात बनी है। लेकिन किसी की शादी में शरीक होने जैसी मुश्किल बात दूसरी कोई नहीं है। और, खासकर आप जब शादीशुदा हों और आपकी पत्नी उत्साही हो, तो समस्या और भी जटिल होती है। दुनिया की प्रायः हर स्त्री के मन में शादी में शरीक होने का उत्साह रहता ही है। और अगर ईश्वरी कृपासे आपके दो बच्चे हों तो आपकी हालत और भी बुरी होगी। मेरी बीवी को दूसरों की शादी में शरीक होने का काफ़ी शौक़ है। इस शौक़ के खातिर वह फिर एक बार विवाह-वेदीपर चढ़ने के लिए भी (केवल मेरी पत्नी बनने के लिए) तैयार होगी। और खासकर किसी शादी में शरीक होते समय अपने शौहर को साथ ले जाना ही चाहिए यही उसका मत होता है।

शादी में शरीक होने के लिए सब से पहला काम भेंट की चीज खरीदना है। आजकल शादी-समारोह में दी जानेवाली भेंट का मतलब है एक व्यर्थ चीज। कम खर्च की और ज्यादा दिक्कत देनेवाली व्यर्थ चीज को ही शादी की भेंट कहना होगा। मेरे खयाल से यह नयी व्याख्या मान्य करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होगी। मेरी बीवीने भेंट खरीदने का एक स्वतंत्र शास्त्र बनाया है। हमारे होम डिपार्टमेंट से व्यापार खाता भी जुड़ा हुआ है और व्यापार के बारेमें अपना पति बिलकुल अनजान है ऐसी उसकी निश्चित राय होने के कारण भेंट खरीदने के सर्व अधिकार उसके ही हाथ रहते हैं। अगर शादी मायके के किसी संबंधीकी हो तो भेंट खरीदने की रक़म निश्चित रूपसे बढ़ायी जाती है। और अगर बदकिस्मती से वह शादी कर लेने वाला मेरे ‘मायके’ का संबंधी हो, तो बीवी रक़म में काट-छाँट का सुझाव पेश करती है। मेरे एकाध ‘आवारा’ (उसकी राय से) मित्र की शादी हो तो किसी पुस्तक की भेंट देकर इससे छुटकारा पाया जाता है। आजकल ‘गृहस्थाश्रम में पदार्पण’, ‘गृह जीवन’ ‘शुभमंगल,’ आदि गृहस्थ-शास्त्र की चटपट शिक्षा देने वाली कई किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं, उन पर यह ऐसे समय निर्भर रहा करती है। इन गृहस्थाश्रम की पुस्तकों के बारे में मैं अपना गुस्सा ज़ाहिर करूँ तो वह तुरन्त, ट्रे या कांचपात्र जैसी फ़ानी चीजें चुन लेती है। इस के बदले बीवी के मायके के किसी व्यक्ति की शादी होने पर भेंट के तौर पर दस रुपयों का बिलकुल नया नोट लिफ़ाफ़े में डाल कर दिया जाता है या स्टेनलेस स्टील का एकाध भारी बर्तन खरीदा जाता है। इसे खरीदने के काम में मेरे दो दिन और दो अमोल रातें खर्च हुआ करती हैं। कुल पचास मील मारा-मारा फिरना पड़ता है और लगभग दो सौ दुकानदारों की मिन्नतों के कड़े परिश्रम के बाद ही ‘भेंट-चुनाव’ पूरा होता है। अर्थात् इस समय शारीरिक कष्टोंकी (बच्चोंको उठाना आदि) जिम्मेदारी मुझे ही उठानी पड़ती है, यह बात तजरबेकार शौहरों के लिए अलग बतानेकी जरूरत नहीं।

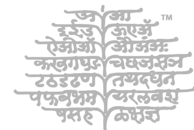
शादी-समारोह की पोशाक एक बड़ी ही जटिल समस्या है। इस जटिल समस्या का आरंभ मुझीसे होता है। मेरी बीवी का हमेशा यह खास आग्रह होता है कि अपने पतिकी पोशाक साफ़-सुथरी होनी चाहिए। मैं प्रायः

श्री. बाळ सामन्त :

आप की रचनाएँ दीपावली मराठी मासिक पत्रिका में नियमित रूपसे प्रकाशित होती हैं। आप मराठी भाषा के एक [illegible] विनोद लेखक हैं। आपके कई ललित लेख आजतक प्रकाशित हुए हैं। हिंदी पाठकों के लिए हम आपकी रचना पहली बार प्रकाशित कर रहे हैं।


हमारे
माननीय ग्राहकों को
यह दिवाली
आनंदप्रद हो!
दी म्हैसूर किर्लोस्कर लिमिटेड
यंत्रपूर पोस्ट ऑफिस, (म्हैसूर राज्य)

अनुक्रमणिका


मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास



अनुक्रमणिका

शादी के समारोहमें शरीक नहीं होता। अगर होना ही पड़ा तो एक पेंट और बुशशर्ट इस 'नॉर्मल' पोशाक से काम चला लेता हूँ। लेकिन इस बारेमें मेरी बीबीके कुछ नियत नियम हैं। शादी के समारोहके लिए वह चाहती है कि मैं साधारणतः सूट पहन लूँ और अगर मैं उसपर 'टाय' बाँध लूँ तो सोनेमें सुहागा! वह पोशाक पहनते ही वह मेरे मुखपर पावडर भी लगानेको नहीं चूकती। उस समय कुड़बुड़ाती है, 'देखिये न आपका चेहरा कितना तेलिया लग रहा है!' मेरे कान के कोने में वह इत्रका फाहा भी ठूँसती है। मेरे दो बच्चे सौंदर्य प्रसाधन की कला में अपनी माँ से भी बढ़कर तथा विचित्र हैं। मेरी बेटी केवल सात साल की है; लेकिन नाजनखरों की कला में वह सत्रह साल की लड़की से भी बढ़कर है। सब से पहले बाल बनाने की जटिल समस्या पर माँ-बेटी में जोरों से चर्चा छिड़ जाती है। उस में समझौता होते ही किस रंग की रिबन लगानी चाहिए इसपर और अंत में फ्रॉकके चुनाव के बारे में चर्चा शुरू होती है। बिटिया रानी के बाद घाघ युवराज की तैयारी शुरू होती है। वह भी पोशाक के बारे में बहुत अक्लमंद है। उसका पहला आग्रह यह कि उसे धोबीसे धुलाकर आये हुए कपड़े पहनने को मिले। उसके कपड़े पहनकर तैयार होने तक विवाह-घटिका समीप आ जाती है। हमारी बीबी कम से-कम पौना घंटा सौंदर्य-प्रसाधन के लिए खर्च करती है। सौंदर्य-साधना पर एकाध दुर्बोध ग्रंथ लिख कर अगर कोई प्राध्यापक पी. एच. डी. की उपाधि हासिल करना चाहे तो उसे हमारी बीबीसे ट्यूशन लेनी होगी। बिल्कुल आसानी से वह उपाधि प्राप्त कर सकेगा।

जिस समय ये सब बातें चलती रहती हैं, उसी समय मैं भी कई तरकीबें निकालता रहता हूँ। कभी गुस्सा करता हूँ तो कभी चीजें फेंकना आरंभ करता हूँ और कभी संन्यासी बनने की अंतिम भाषा भी मुँहसे निकालता हूँ। लेकिन गीता में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बतलाये गये हैं वे सब हमारी बीबी को पूर्णतया लागू होते हैं इसलिए उसका कुछ भी असर नहीं होता। ये सारे काम पूर्ण होनेपर, घरके दरवाजे, खिड़कियाँ आदिकी जाँच होती है और फिर गलेको

दीपा. १८

पानीसे तृप्त करके हम आम रास्तेपर आ ही रहे हैं कि हमारी बीबी याद दिलाती हैं कि महत्वकी दो चीजें, रुमाल और भेंट की वस्तु घर ही में रह गई हैं। इन्हें खोजने में और पाँच-दस मिनट गुजर ही जाते हैं।

आखिर हम आम रास्तेपर पहुँचते हैं। टॅक्सी देखते ही मैं अपनी बीबी महाशयसे कहा करता हूँ कि अब समय बहुत कम बचा है और हमें लंबा फासला तय करना है इसलिये हम इस लोकप्रिय 'टॅक्सी' का उपयोग कर लें। पर मेरे इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए वह कहती है 'उसमें भी क्या धरा है? हम बस से ही जाएँगे।' इसपर चुपचाप हम बस-स्टॉपपर आते हैं और वहाँकी गुड्स-ट्रेन की तरह लंबी लाइन देखकर मैं स्थितप्रज्ञ बनता हूँ और इस बातपर अड़ा रहता हूँ कि हम अब बस से ही जाएँ। क्यों कि मैं भली भाँति जानता हूँ कि हमेशा मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध क्रिया हुआ करती है। आखिर में मेरी बीबी की तरफसे ही टॅक्सी बुलानेका प्रस्ताव पेश होता है और हम बी. एम. आर. से ही सुप्रसिद्ध हॉलतक की मंजिल तय कर लेते हैं।

बम्बई की आज-कल की हालत यह बनी है कि हॉल संख्यामें कम हैं और शादियाँ ज्यादा हुआ करती हैं। इसलिये एक ही हॉलमें एक ही समय में दो-दो, तीन-तीन शादियाँ संपन्न हुआ करती हैं। इसके कारण पहले हम भूलसे दूसरे किसी समारोहके मेहमान बन जाते हैं। 'वर' के पक्ष के लोग समझते हैं कि हम वधू के पक्ष के लोग होंगे और 'वधु' के पक्ष के लोग समझते हैं कि हम 'वर' के पक्ष के होंगे। कुछ दस-पंद्रह मिनटोंके बाद हमारे ध्यान में अपनी भूल आ जाती है जब कि एक-भी परिचित व्यक्ति से भेंट नहीं होती। आजकल हॉल के प्रवेश द्वारके पास स्वागत-समिति के सदस्य मानों अपने कर्तव्य को पालने के लिए खड़े रहा करते हैं। आप पूछेंगे कि इनके 'क्वालिफिकेशन्स' क्या होते हैं? कुछ नहीं। केवल नये कपड़े और गँवार चेहरे। तिसपर उन्हें किसी भी पक्ष के लोगोंसे परिचय नहीं रहता है अतः उनका गँवारूपन और भी खिलकर दिखता है। हमने यह भी सुना है कि शादी के ठेकेदार स्वागताध्यक्ष भी किरायेपर दिया करते हैं। आज की शादियाँ 'संगीत-शादियाँ' हुआ करती हैं। बैंडवाले 'अर्रम्-टर्रम्' की आवाज निकाला करते हैं और इसकी साथ देने के लिए हॉलमें भीतर लगभग सभी सिनेमा के गीत बरबस सुनवाये जाते हैं। इन दोनों की आवाज में मानों कुछ कमी महसूस करने के कारण ही कुछ शादियों में नगाड़ा लाकर 'संगीत के त्रिवेणी-संगम' में सब मेहमानोंको डुबा देनेका पुण्य लूटते हैं।

हॉलकी बात तो पूछिये नहीं। गड़बड़, कोलाहल के बिना और कुछ सुनाई नहीं देता। वहाँ के उस कोलाहलमय राज्य की सूत्रधार होती हैं वहाँ की उपस्थित स्त्रियाँ। स्टेजपर वधु-वर की चारों ओर स्त्रियोंका बड़ा-सा जमघट हुआ करता है। कुछ स्त्रियाँ अपनी शादियोंके दुष्परिणाम-याने संतानका प्रदर्शन कराते, उन्हें अपनी गोद में लिये घूमा करती हैं। हॉल में क्रमवार रखी खुर्सियोंपर सभी आमंत्रित मेहमान नाटक के प्रेक्षकों की तरह अपनी गर्दनों को ऊपर उठा कर वधु का दर्शन लेने के लिए प्रयत्नशील रहा करते हैं। कुर्सियों की बिलकुल पहली पंक्ति 'वर' के कुछ मूर्ख दोस्त, उसके दफ्तरके अफ़सर और श्वसुर के हेडक्लार्क के लिए नियत हुआ करती है। पुरोहित के मंगलाष्टक शुरू होनेपर, पीछे की तरफ़ बैठे हुए लोग जो अक्षत 'वर-वधु' पर फेंका करते हैं वे इन्हीं अफ़सर-लोगों के सरोंपर गिरा करते हैं। 'वर' के बेकार दोस्त अपने कॅमेरोंसे 'ऍंगल' साधते हुए, हॉलमें उपस्थित युवतियोंपर अपना प्रभाव डालनेका भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। आजकल वधु की मूर्ख सहेलियाँ भी इन शादियोंमें 'ऍक्टिव पार्ट' लेने लगी हैं। इन सहेलियों का 'पार्ट' भयंकर हुआ करता है। वे स्वरचित मंगलाष्टक गाया करती हैं। लाउडस्पीकर की मदद से तो यह भयंकरता रौद्रता का रूप धारण करती है और सारा आमंत्रित प्रेक्षकवर्ग हैरान हो जाता है।

वर-वधु का एक दूसरेको मालाएँ पहनानेका कार्यक्रम पूरा होते ही पुरोहितजी का अपना खास संगीत कार्यक्रम आरंभ होता है। माला पहनाने पर सतपदी के अतिरिक्त और कौन-सा कार्यक्रम शादी में होता है यह शायद ही कोई बता सकेगा। फिर स्टेजपर भीड़ करनेवाली स्त्रियोंको वहाँसे हटनेको मजबूर किया जाता है और वर-वधुको एक कोचपर (दोनोंका कोचपर बैठनेका शायद प्रथम और अंतिम मौका है) बिठाया जाता है। शायद ऐसा कोई संकेत मान्य है कि नव परिणीत व्यक्ति जहाँतक हो सके गँवारू चेहरा बनाकर एक स्थानपर बैठें। श्वसुरका दिया हुआ और ढाई सौ रुपयेमें बनाया हुआ 'गॅबर्डिन' का सूट ही 'वर' की गौरवमय पोशाक है। यही उसकी जिंदगी का एकमेव 'सूट' होता है। बेचारी 'वधु' भारी शाल को संभालते, अपनी काया को सिकोड़कर बैठी रहा करती है। स्टेजपर इन दोनोंकी बगलमें दो कुर्सियोंपर दो तरुण (उनमें एक तरुणी भी हुआ करती है।) बैठे होते हैं। इनका काम भी तो क्या काम है? भेंट देनेवाले लोगोंके नाम दर्ज कर लेना। इस बाबतमें भी दोनोंमें एक होड़-सी लगी रहती है। हमारे, वर-वधु से विदाई लेने और साथ-साथ भेंट प्रदान करने के लिए स्टेजपर चढ़ते ही इन दो महान व्यक्तियोंको अपने नाम बताने पड़ते हैं।

हॉलमें कदम रखतेही मेरा और बीबी का बिछोह हो जाता है। हमारी भेंट फिरसे तबतक नहीं होती है जबतक हमारा 'विजय' बेटा तंग आकर रोने न लगे। तब तक मैं तो सिर्फ़ समय गँवाने के लिए या तो यहाँ-वहाँ देखा करता हूँ या किसीसे बेकार विषयोंपर कुछ बातें किया करता हूँ। विजय जब रोनेके 'मूड' में आ जाता है तब हमारी बीबी महाशया विजय को मेरे जिम्मे करके 'आपके बिना वह रहना नहीं चाहता' ऐसा कहते उससे एकबारगी छुटकारा पा लेती है। मानों किसी महत्व के कार्य में लगी हुई हैं यह रुख दर्शाते हुए वहाँसे तेजीसे चली भी जाती है।

अब पान, बटन होल (फूल), इत्र तथा गुलाबजल का एक साथ हमला-सा हुआ करता है और इसके साथ ठंडा पेय या आइस्क्रीम प्रदान किया जाता है। पेय बाँटनेका काम कुछ विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों, कुछ उत्साही प्रौढ़ वयस्क स्वयंसेवकों के जिम्मे

होता है। इनमें कुछ ऐसे भी स्वयंसेवक हुआ करते हैं जो बड़ी सतर्कतासे यह देखने में प्रयत्नशील रहा करते हैं कि कौन व्यक्ति दो बार 'आइस्क्रीम' लेता है। पर यह बताने की कोई खास जरूरत नहीं कि अफ़सरों के लिए भीतर स्पेशल जलपान का कार्यक्रम किया रहता है।

आजकल, विवाह रजिस्ट्री प्रद्धतिसे हो तो 'रिसिप्शन' नामक एक समारोह सुविधानुसार छुट्टी के दिन मनाया जाता है। मुहूर्त कोई 'वीक डे' को होगा तो खास ऑफिस के लोगों के लिए उनकी सुविधानुसार समय शामको ६ से ८ का नियत किया रहता है। 'गोरज' मुहुर्त हो तो कहने की जरूरत ही नहीं कि 'शादी' और 'रिसिप्शन' दोनों कार्यक्रम एक साथ संपन्न किये जाते हैं। यह एक 'शुभमंगल सावधान' नाटक ही है। इसका अंतिम जाहिर अंक होता है 'भोजन' का। मगर इसके लिए कुछ चुने हुए खास व्यक्ति ही आमंत्रित होते हैं। पहले के अंकों की समाप्ति तक रातके नौ बजे रहते हैं और कुछ ऑफिस 'बाबू' 'रिसिप्शन' के लिए आते ही रहते हैं। भोजन की व्यवस्था ठेकेदार के हाथों सौंपी रहती है इसलिये खाना कब का तैयार किया रहता है जो कि भोजन के आरंभ में ही 'ठंडा' हुआ रहता है। वसई-विरार तक रहनेवाले लोगों की तो जल्दबाजी जारी ही रहती है। अतः 'जल्दी भोजन कर लीजिए' के नारे लगाकर भोजन करने बैठे हुए लोगों को आधापेट ही भोजन समाप्ति के लिए प्रेरित-सा किया जाता है। वर-वधु कब भोजन करने बैठेंगे यह कुछ निश्चित बताया नहीं जा सकता है और इस की खास फिक्र भी किसीको नहीं होती। भोजन नियत लोगों के लिये ही बना रहता है और हमेशाकी तरह मेहमानों की संख्या ज़्यादा होती है। अतः चालाक ठेकेदार कंजूसीसे ही भोजन परोसा करता है और मेजबान भीतर आकर अपनी थोड़ी-सी बची हुई इज्जत को डुबा देना नहीं चाहता। वह बाहर ही कार्य में रत होने का बहाना जरूर करता है। ऐसे समय पर मुझपर बड़ी आपत्ति आती है। वह है हमारे विजय की जिद्द कि वह अपने 'पपा' के साथ ही खाना खाने बैठेगा। फिर उसको खिलाना, उसके जमीन पर गिराये हुए पानीकी तरफ़ ध्यान न देना आदि बातों को बरबस करना पड़ता है और जब इन बातों से छुटकारा मिलता है तब 'गनीमत हुई' ऐसा समझकर ठंडी साँस भरता हूँ।

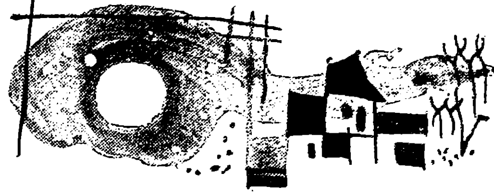
इतने कार्यक्रम तक रात के दस बज जाते हैं। बच्चे ऊंघने लगते हैं। इतनी सारी मेहनत के बाद उन बच्चों को गोद में लेने की हम दोनोंमें से किसी की तैयारी नहीं रहती है और इसलिये लाचार होकर फिर एक बार उसी 'टॅक्सी' की शरण लेनी पड़ती है।

आखिर हम घर पहुँच जाते हैं। रास्ते में भी चैन कहाँ। हमारी बीबी महाशया की शादी-समारोह के कार्यक्रमों पर 'कॉमेंटरी' जारी रहती है। शादी में उपस्थित जनसमूह, उनकी पोशाकें, वधु के गहने, वर की 'पर्सनॅलिटी' (व्यक्तित्व), भेंटों की विविधता, आइस्क्रीम का स्टैंडर्ड, भोजन में बने व्यंजनोंका जायका, वहाँ की स्वागत-पद्धति इन विषयोंपर उसके मत तथा उसकी मत-प्रदर्शन करने की रीति किसी विख्यात समालोचक की अपेक्षा निश्चित उच्च दर्जे की होगी। यह बताने की कोई जरुरत नहीं कि इसकी इस 'कॉमेंटरी' को मैं समर्थन-स्वरूप कुछ न बोलूँ और सिर्फ़ 'हुँ हुँ' करते बैठूं तो छुटकारा नहीं। अतः उसके मतोंकी तरफ़दारी मुझे करनी ही पड़ती है।

इन सारी दिक्कतोंके कारण मैं यह तय कर लेता हूँ कि आइंदा दुनियाकी किसी शादीमें फिर कभी शरीक नहीं होऊँगा।

—पर दुनियामें बीबी के सामने उस महामहिम परमेश्वर का भी बस नहीं चलता। वहाँ मुझ जैसे पौमर की बातें ही क्या?

रूपा : **सौ. लीला लोंड** •••



यह साल भी गुज़र गया

—उदयभान मिश्र

यह साल भी गुज़र गया
और इस गेंदे में
फूल नहीं आये!
इस साल भी
मेरी गदोरी पर
सूरज नहीं उगा!
मेरी बाहों पर
बादलों के दल नहीं उतरे!
सतरंगी इन्द्रधनुषें
मेरी उँगलियों पर
नहीं नाचीं!
इस साल भी
मैं क्वांरी सुबहों की
वेणियों में
चाँद, तारे नहीं गूँथ सका!
उफ़..............
यह साल भी गुज़र
गया।



अपनी आँखों, और कानों सबको बन्द कर ले फिर अगर तुझे ईश्वरका भेद दिखायी न दे तो हमपर हँसना।

('हिन्दोस्ताँ हमारा' पृष्ठ ४७ से आगे)

के बाल छोटे और बिल्कुल सफेद थे। छाती खुली थी और 'हिंदोस्ताँ'की धूप में 'पॅनकेक'की जैसी चटपटी सेंकी हुई थी। आँखें उस दिन के सागर जैसी शांत, प्रसन्न और नीलवर्णी थीं। हम समक्ष चुके थे कि यह कोई अजीब व्यक्ति है, लेकिन हम उस से दूर रहे थे।

हम दूर रहे थे। लेकिन वह बूढ़ा दूर थोड़ा ही रहनेवाला था। आरामकुर्सी हमारी ओर खींचकर वह हमारे समीप आया। सीधे खड़े होकर उस बुजुर्ग ने स्नेह मधुर हँसी के साथ अपना दाहिना हाथ हमारी ओर पसारा और कहा:—

"दोस्तो, मैं कर्नल मार्शल। आपका शुभनाम?"

इस फौजी हमले से बचना मुश्किल था। अंतमें हम दोनों उसकी शरण आ गये।

मैं जरा सकपकाकर उस बुजुर्ग से बोला—

"कर्नल, मुआफ कीजियेगा। सुबह से हम आप को टाल रहे थे, लेकिन उसके लिए एक कारण था। यह मेरे दोस्त राजनीतिज्ञ हैं। आपको भारत से भगानेकी आजकल कोशिश कर रहे हैं। यदि आप से परिचय हो जाए तो शायद इस शांत सागर में तूफान उठेगा, इसलिए हम दूर बैठे थे।"

बाबाजी जोर से हँस पड़े। एकाध मोटा बचा गुदगुदाने पर जिस प्रकार मनचाहा स्वच्छंद हास्य करता है, ठीक वैसा ही उनका हास्य था। बाबाजी खड़े हो गये। मेहरअली का हाथ जोर से हिलाकर बोले—

"कॉमरेड, आपका नाम सुन चुका हूँ। आप से मुलाकात हो गयी, बड़ी खुशी हुई। लेकिन देखिये जनाब, आप मुझे भगा न सकेंगे। मैं तो यहीं मरूँगा। मरने के लिए ही लौटा हूँ यहाँ।"

बाबाजी की आँखें सजल हो गयीं। भावनावेग से होंठों का छोर तनिक फरफरा उठा और वह फौजी बूढ़ा फिर एक बार शांत और गंभीर हो गया। मैं तो अचम्भे में पड़ा। मैं ने पूछा— "कर्नल, आप क्या कह रहे हैं? मैं तो पूछताछ करनेवाला था ही। आप पेन्शनर दिखायी देते हैं। सच कहूँ तो पेन्शन लेने के बाद आप को इंग्लैण्ड जाना चाहिये था। यह तो बताइये आप फिर भारत कैसे पधारें? हमारे इस उष्ण देशका आपको इतना आकर्षण कसे हुआ?"

बाबाजी के मनमें एक पल भावनाएँ उमड़ उठीं, फिर वे शान्त हो गये। हमारी आँखों में न देखते बाबाजी समुद्र की ओर दूरतक देखते शान्त स्वरसे बोले—"यह मेरा देश है, इस देश का। मैं ने दत्तक लिया है। यों, आप कह सकते हैं कि इस देशने मुझे दत्तक लिया है। शायद वही अधिक सत्य होगा। इस देशमें मैं ने मेरी पूरी जिन्दगी बितायी। मूँछें भी न आयी थीं उस जमाने में मैं ने इस देशमें प्रवेश किया। बुढ़ापा भी यहीं आया। अब तो यहीं मरने के लिए मैं लौट आया हूँ।"

मेहरअली ने पूछा,—"लेकिन क्यों? इंग्लैण्ड में आप के रिश्तेदार होंगे, दोस्त होंगे, घरबार भी होगा। क्या इस उम्र में स्वदेश लौट जाने की, अपने संबंधियोंमें चले जाने की इच्छा आप के मनमें पैदा नहीं होती?"

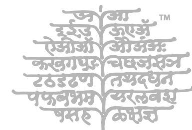
एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कर्नल बोले—"भाई, इंग्लैण्ड अब मेरा देश नहीं रहा। इंग्लैण्ड में मेरे रिश्तेदार नहीं। जो कोई थे, कभी के चल बसे। आजका इंग्लैण्ड मेरे लिए पराया है, अनोखा है! पैन्शन लेने के बाद, औरों के जैसा मैं भी इंग्लैण्ड चला गया। लंदन में रहने लगा शहरमें काफी भटका लेकिन अब वह पुराना इंग्लैण्ड नहीं था, सब चेहरे अजनबी थे। रीतिरिवाज अजनबी और शिष्टाचार भी अजनबी। वह उबाला हुआ फीका अन्न! मैं तो मसाला खाने का आदी था। मुझे रोटी खाने की आदत थी। यहाँ तो हर कोई सिगरेट पीता था। लड़कियाँ भी मर्यादा लाँघ चुकी थीं। वे भी सिगरेट पीती थीं। बाल कटवा लेतीं, अधूरे फ्रॉक पहनतीं, झूटमूठ हंसती थीं। नहीं... नहीं... यह मुझसे सहा नहीं जाता। मेरा पुराना इंग्लैण्ड इससे अनोखा था। छोटे-छोटे गाँव नहीं, पगडंडियाँ, सुंदर बाग, उँचे पेड़, 'हनीसकल' की मजेदार खुशबूवाले खेत... यह सब चला गया था। जहाँ देखूँ वहाँ ईंट के 'इमले' खेत नष्ट हुए, उनपर भटनेवाले पंछी भी गायब हो गये। जिधर देखूँ उधर घर और आदमी, भीड़-भड़क्का। दोस्तो, वर्डस्वर्थ का इंग्लैण्ड—मेरा इंग्लैण्ड अब नहीं रहा। चार महीने मैं कोशिश कर रहा था। लेकिन निभा न सका। और, अंत में भारत लौट आया।"

कर्नल सर झुका कर नीचे देखने लगे। दोनों पंजे एक दूसरे से जुड़ाकर जोर से दबाये, हम दोनों श्रद्धा से, कौतूहल से, खामोश हो चुके थे। कुछ समय के बाद कर्नल बोलने लगे—"कई बरसों की बात है। मैं लगभग पेंतीस-छत्तीस वर्ष का था। उस वक्त मेरी बड़ी बहन इंग्लैण्ड में थी। वह मेरे पीछे पड़कर कहने लगी—'तुम्हारी उमर हो गई, अब शादी मनाओ'।" मैं ने उसे लिखा—"तुम्हारे देश की किसी लड़की के साथ मैं न निभा सकूँगा? मैं हुक्का पीनेवाला, फर्शपर बैठनेवाला, चारपाई पर सोनेवाला, साग—तरकारी खानेवाला हूँ। मेरे रीति-रीवाज अनोखे हैं, मेरी दुनिया अनोखी है। मेहरबानी करके मुझे शादी करने का आग्रह न करना। इंग्लैण्ड को मैं ने 'तुम्हारा देश' कहा इसलिए मेरी बहन गुस्से में आयी। उसने मेरा संबंध तोड़ डाला। शादी के संकट से मैं बच गया।"

मैं ने भावनाओं से दबे हुए स्वर से पूछा—"कर्नल, आप भारत में कहाँ रहते हैं? कैसे रहते हैं?"

कर्नल बोले—"मेरे रहने के लिए कोई एक जगह नहीं है। जहाँ हमारी पलटन अपना अड्डा जमाती है वहाँ मैं ठहरता हूँ।

(कृपया पृष्ठ १६६ पर देखिये)







एक नन्हा सा फूल

सुखवीर

वह कितनी देर तक उस पत्र में की उल्टी-सीधी रेखाओं को देखता रहा जैसे उन्हें पढ़ रहा हो। उसकी उदास आँखें हौले-हौले सजल हो गयीं और फिर.........

डाकिया आकर चला गया था और आज भी कोई पत्र नहीं आया था। आज भी डाकिये को आते हुए देखकर उसकी आँखों में एक आशा चमकी थी और फिर जब पूछने पर भी उसे कोई पत्र नहीं मिला था, तो उसे खाकी वर्दी पहने, अपनी जवानी में ही बूढ़ा लग रहा सरकार का यह आदमी बहुत मनहूस लगा था। उसके कड़वाहट भरे मुँह में डाकिये के लिए एक गाली आई थी और उसने उसकी ओर से आँखें फिरा ली थीं।

कमरे में फ़िर उसे वही अकेलापन अनुभव होने लगा।

पत्रों को यह क्या हो गया था।

यह पिछले पन्द्रह-अठारह दिन वह बड़ी बेसब्री से पत्रों की प्रतीक्षा करता रहा था। यह शहर और यह कमरा और यह अकेलापन और यह बेकारी... वह बड़ी बेसब्री से पत्रों की प्रतीक्षा करता रहा था। परन्तु जिन पत्रों की उसे प्रतीक्षा थी, उसमें से एक भी तो नहीं आया था। क्या उसके पत्र कहीं खो जाते थे? या रास्ते में ही कोई साजशी हाथ उन्हें इधर-उधर कर देता था? परन्तु वह तो स्वयं डाकखाने में जाकर पत्र डालता रहा है। जितने पत्र उसने लिखे थे, उनमें से किसी का भी उत्तर नहीं आया था। हाँ, ये तीन पत्र जरूर आये थे, जो उसके किसी पत्र के उत्तर में नहीं थे और जिनके आने की उसे बिल्कुल ही प्रसन्नता नहीं हुई थी। वह इन पत्रों का किसी प्रकार भी 'स्वागत' नहीं कर सका था। उसका बस चलता तो वह इनके आने पर दर्वाजा ही बन्द कर लेता। पर डाकिया पत्र दे गया था और हर बार डाकिया को देखकर, जो उसकी आँखों में एक आशा चमक उठती थी, वह डाकिये के हाथ में यह पत्र देखकर एकबारगी ही चमक कर बुझ गई थी। और उसने इन पत्रों को आज तक नहीं खोला था! उसे पता था इन पत्रों में क्या लिखा होगा। एक पत्र बीमा कम्पनी की ओर से था। वह जानता था, इसमें प्रीमियम भरने के लिए लिखा






पशु न बोलने से
कष्ट उठाता है
और मनुष्य
बोलने से।

[illegible]गा। ईश्वर की कुछ ऐसी मार है कि बीमे वालों का पत्र बस उस मौके पर आता है जब रुपयों की कमी होती है। हर छः महीने के पश्चात् यह पत्र आता है तो उसे लगता है जैसे किसी ने उसे गले से पकड़ लिया हो। व्यर्थ ही उसने यह आफत मोल ले ली। उसने तो क्या मोल ली थी वह जो हरामी खोसला है, वह जबरदस्ती उसके गले में डाल गया। इन बीमे के एजेंटों से भी ईश्वर ही बचाये। बस मौत की तरह चिपट जाते हैं। कोई छुट्टी का दिन ऐसा नहीं जब यह घर न आ जायें! और फिर पीछा तब छोड़ते हैं जब आप बीमे की पालिसी ले लें। हरामी खोसले का बच्चा!

दूसरा पत्र को-ऑपरेटिव सोयायटी की ओर से था। उसने सोसायटी से जो कर्ज लिया था, उसकी किस्त भरने के बारे में।

और तीसरा पत्र ऊषा कम्पनी की ओर से था। पत्नी के जिद करने पर उसने गत वर्ष किस्तों पर सिलाई की मशीन मोल ली थी। उसी की किस्त भरने के बारे में लिखा होगा।

ये तीनों पत्र उसने खोले नहीं थे। बिना खोले ही उसे इनमें की तल्खी महसूस हो गई थी और उसने इन्हें तकिये के नीचे रख दिया था।

पर उन पत्रों में से कोई पत्र भी नहीं आया था जिनकी उसे प्रतीक्षा थी। परदेस में रहने पर अपने सम्बन्धियों के पत्र कितनी बड़ी सान्त्वना देते हैं। पत्र आने पर लगता है जैसे कोई अपना सम्बन्धी घर आया हो।

न उसकी पत्नी की ओर से कोई पत्र आया था और न ही घर वालों की ओर से। उसकी पत्नी ने पहले तो कभी इस प्रकार सुस्ती नहीं की थी। कुशलता ही सही। वैसे दो अक्षर लिखने में कोई इतनी देर भी तो नहीं लगती। आदमी को चिन्ता तो नहीं रहती! पता नहीं क्या बात है। ईश्वर जाने। और घर वाले भी इतने सुस्त हैं कि कोई क्या कहे। बस उनकी ओर से तो पत्र तब आता है तब उन्हें रुपयों की जरूत हो। और रुपयों की जरुरत पड़ने पर हर बार एक-सा पत्र। हमेशा कार्ड। ऊपर की चार-पांच पक्तियाँ तो कुशलता के बारे में कि वे सब ईश्वर की अपार कृपा से सकुशल हैं और उसकी कुशलता की कामना करते हैं। पत्र उसका मिला था और हाल-चाल का पता लगा। (भले ही उसने उन दिनों पत्र न लिखा हो) फिर तंगी का जिक्र। घर में अनाज नहीं, भैंस के लिए चारा नहीं, दुकान के इतने रुपये उधार देने हैं, अमुक वस्तु चाहिये, अमुक वस्तु चाहिये। सो पत्र को तार समझ कर जल्दी से जल्दी रुपये भेजे।...और अन्त में नाम ले-ले कर एक-एक की ओर उसे नमस्ते। कोई आठ-नौ वाक्य इसी नमस्ते के। भला अगर सीधे ही एक साथ सबकी ओर से नमस्ते लिख दी जाये तो क्या फ़र्क पड़ जायेगा। सचमुच बड़ी पागल है उसकी बहन। सातवीं में पढ़ती है, पर अभी तक पत्र लिखना नहीं आया।...

फिर भी घर से आये ये पत्र बहुत सुख देते हैं। जैसे सभी घरवाले उससे बातें कर रहे हैं।

उसने तीन पत्र अपने मित्रों को लिखे थे। गत वर्षों में उन्होंने उससे दस-दस बीस-बीस करके कुछ रुपये लिये थे। आज उसे रुपयों की जरूरत थी तो उसने मित्रों को लिखा था कि यदि इस अवसर पर वे उसे रुपये भेज सकें तो वह उनका बहुत आभारी होगा। यह रुपयों की कैसी मांग थी कि बस पत्रों के उत्तर ही बन्द हो गये थे। यदि नहीं दे सकते तो लिख दें कि कुछ ठहर कर देंगे। पर उत्तर तो देना चाहियें न। आखिर पत्र न लिखने का क्या मतलब?

...और वह पत्र जो उसने जवाहर लाल नेहरू के नाम लिखा था, उसका भी उत्तर नहीं आया था। उसने पं. जवाहर लाल नेहरू को लिखा था कि वह आजकल बेकार है और उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। गत बैंक हड़ताल के पश्चात् उस पर झूठा इल्जाम लगाकर उसे नौकरी से निकाल दिया गया था। वह तबसे ऐसा उखड़ा है कि आज तक कहीं पांव नहीं जमे, आखिर उसका इसमें क्या दोष था? क्या भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना में उसके लिए कहीं स्थान नहीं? वह कम्युनिस्ट बिल्कुल नहीं है। बहुत समय से उसके कमरे में गांधीजी की फोटो लगी हुई है और स्वतन्त्रता के पश्चात् भी अभी तक लगी हुई है। और पं० नेहरू को वह वर्षों से एक तरह से पूजता आया है। सन् ब्यालीस में उसने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था और पकड़े जाने पर दो महीने के लिए जेल भी गया था। वहीं उसने पहली बार जवाहर लाल नेहरू की आत्मकथा पढ़ी थी।... वह हर जगह भटका है, पर उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। और घर में उसके माता-पिता हैं, जिनके पास मुश्किल से निर्वाह करने योग्य दो-अढ़ाई बीघा जमीन है, और उसकी पत्नी है जिसकी चिन्ता से भरी आँखों में एक गर्व है कि उसका पति सन् ब्यालीस में दो महीने जेल में रहा है, और उसका छोटा बच्चा है जिसे वह किंडर गार्टन स्कूल में भेजना चाहता है। वह बहुत ही होशियार बच्चा है। भविष्य में वह शायद बहुत बड़ा आदमी बन जाये...। पर अपनी इस बेकारी में लगता है कि वह मुश्किल से दसवीं पास करेगा और फिर किस दफ्तर में सारी उम्र के लिए क्लर्क बन जायेगा...। क्या इतने बड़े देश में उसके लिए कहीं नौकरी नहीं? इतनी बड़ी पंचवर्षीय योजना में उसके लिए कहीं कोई स्थान नहीं?...

...और अभी तक पं० नेहरू की ओर से उस पत्र का कोई उत्तर नहीं आया था।

...और उस पत्रिका की ओर से भी कोई पत्र नहीं आया था जिसमें उसके तीन लेख प्रकाशित हो चुके थे पर अभी तक उनका पारिश्रमिक नहीं भेजा गया था।





...और उस कंपनी की ओर से भी कोई पत्र नहीं आया था जिसमें उसने नौकरी के लिए अर्जी दी थी और इण्टव्यू भी हो गया था और उसे कहा गया था कि कुछ दिनों में ही निर्णय के बारे में पत्र दिया जायेगा। उसने सोचा कहीं 'नॉट' ही न हो जाये। कई बार तो यही दिल चाहता है कि डाकिया वहाँ का पत्र ही न लाये। यदि पत्र में नॉट लिखी हुई हो तो वह सहन नहीं कर सकेगा। पत्र के न आने में एक आशा तो है कि नौकरी शायद मिल ही जाये। ... पर फिर भी वहाँ के पत्र की प्रतीक्षा नहीं हटती।

ये कैसे दिन थे। यह शहर, वह कमरा, यह बेकारी, वह अकेलापन...क्या जीवन की अन्तिम मंजिल आत्महत्या ही है?

पत्रों को यह क्या हो गया था!

कभी वे दिन भी थे जब उसे वे पत्र आया करते थे जो उसे न पहले कभी आये थे, न अब भविष्य में कभी आयेंगे। 'मृणाल्नी' के पत्र। उन दिनों उन पत्रों के पंखों पर जीवन उड़ा करता था। वे पत्र बहुत छोटे होते थे। ऐसे प्यार के पत्र लिखते समय मनुष्य थकता नहीं और न ही उन्हें पढ़ते समय मनुष्य थकता है। मृणाल्नी का एक वह पत्र भी था–बिल्कुल खाली कागज पर कितना कुछ पढ़ गया था। वह और मृणाल्नी का वह पत्र जिसके बीच में एक छोटा-सा प्रश्नवाचक चिह्न था। जिसका उत्तर इतन सरल नहीं था। और मृणाल्नी का एक और पत्र था जिस पर दो रेखायें खिंची हुई थीं और फिर कुछ आगे जाकर एक रेखा एक ओर को मुड़ गई थी और दूसरी सीधी ही ऊपर की ओर चली गई थी। वह कौन अपना रास्ता छोड़ कर मुड़ गया था? यह किसने दूसरे का साथ छोड़ दिया था? और यह कौन था जो अभी तक उसी रास्ते पर सीधा चला जा रहा था?

अखिर मृणाल्नी का भी विवाह हो गया था – किसी और जगह। पर दोनों में से कौन था जो आज भी अपने पुराने रास्ते पर चल रहा था और कौन था जो चलते एक ओर को मुड़ गया था?

ये पत्र आज भी उसकी पत्नी के पास पड़े हुए हैं। उसकी पत्नी को इन पत्रों से बहुत सहानुभूति थी। पहली बार इन पत्रों को देख कर और समझ कर उसकी आँखें भर आई थीं। शायद उसने भी कभी किसी को ऐसे पत्र लिखे हों। वह बहुत समजदार पत्नी है। जितनी बड़ी–बड़ी और सुन्दर उसकी आँखें हैं, उतना ही बड़ा और सुन्दर उसका दिल है।

पर इन पत्रों पर मनुष्य कब तक उड़ सकता है कब तक जी सकता है?

ये पत्र अब कब आयेंगे? कौन लिखेगा?

पर इन दिनों तो वे पत्र भी नहीं आये थे जिनको पढ़कर उसकी प्रसन्नता में एक कड़वा स्वाद भर जाया करता था। भद्दी तरह लिखे हुए पत्र। एक मित्र के बेहिसाब लम्बे पत्र जिनमें बिना किसी सलीके की बातें। आपस में उलझी हुई। कोई क्रम नहीं। कोई सिर–पैर नहीं। कोई तरीका नहीं। और यह मित्र बी. ए. है।... एक और मित्र का पत्र जो हिन्दी का एम. ए. है, पर पत्र हमेशा अंग्रेजी में लिखता है और यह भी गलत अंग्रेजी में।... एक और मित्र का



जिंदगी की कठिनाइयों से परित्राण पाने के लिए देवों के पास रोने-गाने से क्या होगा? पहले वे ही अपनी कुशलता मनानेकी चितामें हैं!

पत्र हमेशा ही कार्ड। शुरू में मोटे–मोटे अक्षर। फिर धीरे–धीरे अक्षरों का छोटे होना और अन्त में इतना छोटा होना कि पढ़ा तक न जाये। और फिर इतनी बातें कि कार्ड का हर खाली स्थान उनसे भरा हुआ। इस मित्र का जीवन भी इसी प्रकार का है। उसे पत्नी भी इसी प्रकार की मिली है। उसके बच्चों में से पांच बच्चे भी इसी प्रकार के हैं। ... और एक मित्र का पत्र ...

काश! इन पत्रों में से ही कोई पत्र आ गया होता।

वह अपने कमरे में बैठा सोच रहा था कि एक लम्बा पत्र लिखे– उन सबके नाम एक पत्र, जिनकी ओर से उसे कोई पत्र नहीं आया था। और फिर बड़े से लिफाफे पर सभीके नाम और पते लिख कर पोस्ट कर दे।

वह धीमे-से अपने इस विचार पर मुस्कराया, शायद अपनी मूर्खता पर भी।

इस मुस्कराहट ने उसके चारों ओर निगलने को आ रहा जो एक अकेलापन था, एक घुटन और तलखी थी, उसमें से उसे समय के लिए निकाल दिया।

फिर वह कागज लेकर उस पत्रिका के लिए 'पत्रों की दार्शनिकता' शीर्षक से एक लेख लिखने लगा जिसने अभी उसके तीन लेखों का पारिश्रमिक नहीं भेजा था।

पर कुछ पंक्तियाँ लिख कर ही उसने लेख छोड़ दिया। अभी कुछ समय पहले जो मुस्कराहट उसके होंठों पर आई थी, उसका प्रभाव जैसे जाता रहा था। अब फिर वही अकेलेपन का आभास था अपनी पत्नी, बच्चे और घर वालों की याद थी। एक उदासी थी एवं एक अजीब किस्म का दर्द था... एक घृणा थी...एक कड़वा स्वाद और एक प्रतीक्षा जिसमें किसी आशा का प्रकाश नहीं था, बस अन्धकार ही अन्धकार—जिसमें जीवन का सम्पूर्ण सौंदर्य अपना अस्तित्व गँवा चुका था..

ऐसी उदासी उसने जीवन में पहले कभी अनुभव नहीं की थी।

वह कितनी देर तक इसी प्रकार बैठा, शून्य आँखों से सामने देखता रहा।

अचानक उसने देखा कि डाकिया उसके दर्वाजे पर खड़ा था। उसके हाथ में एक पत्र था।

यह एक्सप्रेस डिलीवरी का पत्र था।

पत्र देखते ही उसका दिल धक्-धक् करने लगा। कुशलता हो सही।

उसने जल्दी-जल्दी डाकिये के हाथ से लिफाफा लिया, फार्म पर हस्ताक्षर किया और फिर लिफाफा फाड़कर उसमें से पत्र वाला कागज निकाला।

यह उसकी पत्नी का छोटा-सा पत्र था। वह हमेशा ही छोटा-सा लिखती थी। बस जरूरी-जरूरी बातें। उसने एक ही साँस में पत्र पढ़ लिया। खैर उसकी पत्नी सकुशल थी। और भी सब सकुशल थे। पत्र को जरा देर हो गई थी क्योंकि 'पाशी' पिछले दिनों बीमार हो गया था। पर अब वह बिल्कुल ठीक है और उसे बहुत याद करता है......

उसके काँपते हुये हाथ पत्र को पकड़े हुए अभी तक हल्का-हल्का कांप रहे थे। उसका धक्-धक् करता हुआ दिल अभी तक हौले-हौले धक्-धक् कर रहा था।

फिर उसने पत्नी के पत्र के साथ वाला कागज देखा. जिस पर और नीली पेन्सिल से बेहिसाब उल्टी-सीधी रेखायें खींची हुई थीं। यह उसके पत्र 'पाशी' का लिखा हुआ पत्र था। वह कितनी देर तक उस पत्र में की उल्टी-सीधी रेखाओं को देखता रहा, जैसे उन्हें पढ़ रहा हो। उसकी उदास आँखें हौले-हौले सजल हो गईं और फिर वे चू पड़ीं। वह अपने तीन वर्ष के पुत्र का उल्टी-सीधी रेखाओं वाला पत्र पढ़ रहा था। उसमें पाशी ने कितना कुछ लिखा था! वह सब कुछ साफ-साफ पढ़ सकता था। हाँ,, पाशी ने उसे टॉफियां लाने के लिए कहा था और एक बाजा और एक गोल-गोल चलने वाली रेलगाड़ी। उसने शिकायत की थी कि अब उसे कोई बाजार ले कर नहीं जाता। वह दिन भर घर में ही खेलता रहता है और उस छोटे से घर में उसका बिल्कुल ही दिल नहीं लगता। उसे अब कोई मोटर में भी नहीं बैठाता। कोई कहानियाँ भी नहीं सुनाता। अम्मी जी तो वही पुरानी कहानियाँ सुनाती हैं।... फिर उसने लिखा था कि जाते समय वह जो मोटर लाने वादा कर के गया था वह जल्दी ही लाये। लाल रंग की। फिर सभी उसमें बैठकर बाजार जाया करेंगे। वह स्वयं मोटर चलाया करेगा और उसके डैडी और अम्मी और सारी 'आंटियाँ' पीछे बैठा करेंगी।...अन्त में उसने उसे अपना छोटा-सा प्यार भेजा था। एक छोटा-सा उड़ता हुआ चुम्बन। एक छोटी-सी टाटा ...

वह उसी प्रकार बैठा अपनी सजल आँखों से अपने पुत्र का उटपटांग रेखाओं वाला पत्र पढ़ता रहा, पढ़ता रहा; और उसे लगा कि उसके चारों ओर जो एक अकेलापन था, वह पहले से कई गुना बढ़ गया है।

•••

(हिंदोस्ताँ हमारा पृष्ठ १६२ से आगे)

कभी महू, तो कभी जालंदर, कभी बंगलोर तो कभी नसीराबाद। मैं बॅरक में जाकर 'मेरे जवानों' की खटिया पर बैठ जाता हूँ। सब इर्द-गिर्द जमा होते हैं। मुझे हुक्का पिलाते हैं। पुराने जमाने की गप्पें शुरू होती हैं। कोई जवान आग्रह करें तो मैं उसके घरकी गरम रोटी और तरकारी खा लेता हूँ। बड़े मजे में समय बीतता है।

मैं ने पूछा-" यह लड़का कौन है ?"

बाबाजी ने बड़े प्यार से उस बच्चेको सहलाया। उसके गले में हाथ डालते बोले-" यह मेरा दत्तक बेटा है, मेरे अर्दली का बेटा उसके पिताजी का देहावसान हुआ। मैंने उसे पाला-पोसा। मैं ही उसकी देखभाल करनेवाला हूँ। अपनी जायदाद उसे दे दूँगा। वह इग्लैंड जायेगा, वहाँ पढ़ेगा, शायद अंग्रेज बन जाय। जिस प्रकार मैं हिन्दुस्तानी बना, ठीक उसी प्रकार" बेटा जिद कर रहा था-" मुझे जहाज में बिठाओ।" मैंने कहा ठीक है, चलो बेटा, हम रत्नागिरी जाएँगे। रत्नागिरी का कलेक्टर साहब बड़ा दिलदार फौजी आदमी है। फौजी पेन्शनर जब पैन्शन लेने रत्नागिरी को आते हैं तब वह सब को अपने बंगलेपर बुलवा लेता है, भोजनालय से खाना मँगवा लेता है और फर्श पर बैठकर सब के साथ खाना खा लेता है। सचमुच वह एक फौजी है !"

कुछ देरतक कोई बोल न उठा। कुछ याद आकर बाबाजी बोले, " मेहरअली, मुझे देखकर आप व्यर्थ चौंक उठे। हम फौजी बड़े खुले मन के होते हैं। आप आजादी चाहते हैं न ? बिल्कुल ठीक। मेरी भी राय वही है। मेरे पहचान के कई अफ़सरों की राय भी वही है। इन सिविलियन अफ़सरों ने सब बात बिगाड़ी है। उनकी पूरी जिंदगी फाइलों के ढेर में बीत गयी। वे हिंदुस्तानियोंसे मिलते-जुलते नहीं, उनसे अलग रहते हैं। फाइलों द्वारा बातचीत करते हैं। हम फौजी जवानों में घुलमिल कर रहते हैं उन्हीं का हुक्का पीते हैं, उन्हीं की रोटी खाते हैं। असली 'हिंदोस्ताँ' हम ही जानते हैं। आपको आजादी अवश्य मिलनी चाहिये। और एक दिन वह जरूर मिलेगी। लेकिन एक बात ध्यान में रखिये, इस बूढ़े को यहाँ से न भगाना।"

रत्नागिरी बंदरगाह में हमारा जहाज जा पहुँचा। मेहरअली उनकी नित्य की मुलायम आवाज से मेरे कान में फुसफुसकर बोले-" यह ठीक हुआ कि कर्नल मार्शल जैसे अंग्रेज अधिक संख्या में नहीं।"

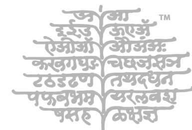
मैंने पूछा-" क्यों जी ?"

मेहरअली हँसकर बोले-" अजी साहब, अगर इस प्रकार के कर्नल मार्शल अधिक संख्या में होते तो आजादी की कल्पना भी हमें न सूझती।"

इस बात को कई वर्ष हो गये। शायद कर्नल मार्शल ने अपनी देह भारत भूमिपर ही कहीं छोड़ी होगी। मेहरअली भी चल बसे। हमने आजादी हासिल की, अंग्रेजोंने हमसे विदा माँगी। लेकिन आज भी मेरी आँखों के सामने, उस पंजाबी लड़के को सहलानेवाला, एक डेरे से दूसरे डेरे में भटकनेवाला वह बूढ़ा अंग्रेज खड़ा हो जाता है और मेरी आँखें सजल हो जाती है, गरदन झुक जाती है

रूपा : नाना वाडेकर

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





वॉईल्स

कॅलिको मिल्स, अहमदाबाद

अनुक्रमणिका



